Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २५; अंक ३७९; १६ से ३० अप्रैल, १९८५

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
सज्जा :
सुमीता

स्त्री-पुरुष संबंध की कहानियां

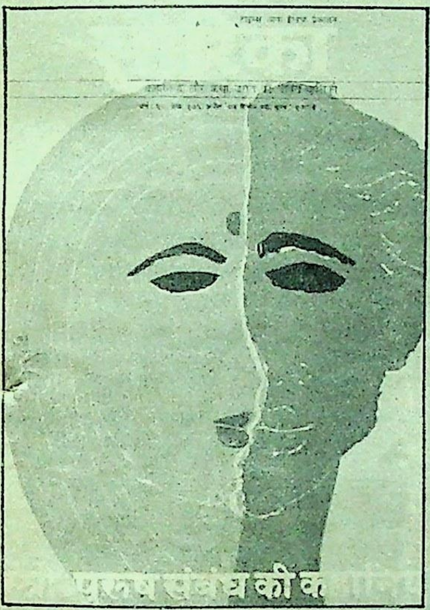

आवरण : सुमीता

कहानियां

8 भविष्य के आसपास मंडराता अतीत : राजेंद्र यादव
12 ममता : मक्सिम गोर्की
20 दमयंती हरण : राजकमल चौधरी
24 वह क्यों चली गयी : अल्बर्तो मोराविया
43 सोने जैसी औरत : नछत्तर
50 तलाक : श्मुईल यूसेफ एग्नान
52 अलिफ लैला : ओ. हेनरी
54 क्षुधा : मोपांसा
60 फातिमा : साद मकावी
66 दरार : प्रदीप कुमार तिवारी
68 उजड़े हुए रिश्ते : देविंदर बिसरा

उपन्यास

15 अमर प्रेम : विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय
30 दूसरी बार : श्रीकांत वर्मा
34 उस रात के बाद : ग्राहम ग्रीन
38 रेखा : भगवती चरण वर्मा
58 पुत्र और प्रेमी : डी. एच. लारेंस
62 बरसात : समरसेट मॉम

कथा-रिपोर्ताज

22 सीने में जैसे कोई दिल को मला करे : अमृतलाल नागर

संस्मरण

56 रूपाजीवा : रामेश्वर शुक्ल अंचल

इतिहास कथा

46 परायी नजर : बाला दुबे

अन्य आकर्षण

11 गुलामी दर गुलामी : अमृता प्रीतम
14 जतिन दास के स्त्री-पुरुष : महेश दर्पण
19 कानून यानी रिश्तों का खून : आशुतोष सिन्हा
26 औरत और मर्द : चंचल
27 स्त्री-पुरुष के सामने खड़े कड़वे-मीठे सच : विनय विश्वास
48 पति-पत्नी का एक-दूसरे पर अधिकार : चंद्रगुप्त विद्यालंकार

परिचर्चा

28 प्रेमी-प्रेमिका संबंधों का सामाजिक संसार : विपिन जैन
64 प्रेमिका जब पत्नी बन जाती है : आ. सि.

लघुकथाएं

10 लगाव : खलील जिब्रान
15 टैम बदल गया : दिनेश त्यागी
41 दादाजी : सुकेश साहनी
45 दिल की बात : अशोक भाटिया

स्थायी स्तंभ

6 आपकी बात
7 अपनी बात
71 पखवारे की पुस्तकें
72 बतंगड़ : शरद जोशी
74 तीसरी नजर : राकेश वत्स

संपादकीय पता : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

औरत और आदमी का रिश्ता दुनिया का सबसे पुराना रिश्ता है. यह आदम और हव्वा के जमाने से चला आ रहा है और जब तक सृष्टि कायम रहेगी, यह रिश्ता भी कायम रहेगा. पारिवारिक स्तर पर, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर तथा सांस्कृतिक स्तर पर इस रिश्ते का स्वरूप बदलता गया है और यह अधिक व्यापक होता गया है. सभ्यता के विकास के साथ ही कुछ अनुशासन, कुछ व्यवस्थाएं और कुछ नियामक रेखाएं स्थापित हुईं, इनका आदमी के रहन-सहन पर तो असर पड़ा ही, सोच पर भी असर पड़ा. इनसे साझेदारी की भावना भी पैदा हुई. चाहे यह साझेदारी सुरक्षा की हो या सुख-दुःख की या आवास, भोजन और परिवार की.

आदमी जैसे-जैसे अपने लिए जीवनोपयोगी नियम बनाता गया, वैसे-वैसे परिवार एक संस्था का रूप ग्रहण करता गया. संभवतः उसी के साथ उत्तराधिकार की भावना ने भी जन्म लिया होगा और उसी भावना के साथ नये-नये रिश्तों की शुरुआत हुई होगी. परिवार के विस्तार के साथ रिश्तों का विस्तार भी जुड़ा हुआ है. माता-पिता, भाई-बहन, बेटा-बेटी. उत्तराधिकार और रक्त के तहत मातृपक्ष और पितृपक्ष के रिश्तों ने भी जन्म लिया और विस्तार पाया.

औरत-आदमी के रिश्ते में सेक्स की भूमिका काफी महत्वपूर्ण भले ही हो, लेकिन वह सब कुछ नहीं है. यह मात्र रिश्ते का एक हिस्सा है. इसके अलावा और भी बहुत से हिस्से हैं, जो इस रिश्ते को सही अस्तित्व और पूर्णता देते हैं. इसमें सबसे बड़ी भूमिका समाज और अर्थ की है. सामाजिकता और आर्थिकता जहां इस रिश्ते को एक मजबूत आधार देते हैं, वहीं इसमें कुछ दायित्वबोध भी पैदा करते हैं. जब हम स्त्री-पुरुष संबंधों की कहानियों की बात करते हैं तो इनके साथ किसी न किसी सीमा तक सामाजिक और आर्थिक दायित्वबोध भी जुड़ा होता है. इस दायित्वबोध का स्वरूप चाहे कुछ भी हो, लेकिन उससे इसकी सार्वकालिकता और सार्वभौमिकता प्रभावित नहीं होती. सही अर्थों में यह एक कालजयी संबंध है. इसके महत्व को ध्यान में रखकर ही हमने इस विशेषांक की योजना बनायी.

स्त्री-पुरुष संबंध एक ऐसा विषय है, जिस पर संभवतः सबसे अधिक लिखा गया है और बहुत अच्छा लिखा गया है, लेकिन संबंधों के विविध रूपों को ध्यान में रखकर रचनाओं का चयन करना हमारे लिए काफी मुश्किल काम रहा. इस विविधता से भी ज्यादा मुश्किल है आयामों की विविधता और काल सत्य की विविधता को ध्यान में रखना. हमने इस संबंध में अपनी पूरी कोशिश की है.

इन रिश्तों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैयक्तिक या शारीरिक आधारों के अलावा एक महत्वपूर्ण तथा मजबूत आधार और भी है, वह है सत्ता या अधिकार पर अपनी पकड़ बनाये रखने का आधार. इस आधार ने अक्सर रिश्तों में टकराव की स्थिति पैदा की है. सास-बहू का रिश्ता एक ऐसे ही आधार पर खड़ा हुआ है, जहां बहू अपने पति पर सत्ता अथवा अधिकार बनाये रखना चाहती है, वहीं सास को बेटे पर से अपनी सत्ता के खिसकने का डर पैदा हो जाता है. इस डर के साथ ही साथ या प्रतिक्रियास्वरूप वह अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए तमाम तरह के अस्त्रों का (पैदा करने, पालने-पोसने, तकलीफें सहने आदि के तानों के रूप में) इस्तेमाल करती है. उसे लगता है कि अपनी सत्ता की लंबी लकीर खींचकर बहू की सत्ता को छोटा भी किया जा सकता है और उसे भी अपनी सत्ता के शिकंजे से कसा जा सकता है. इसी तरह अक्सर पिता भी उत्तराधिकार की दुहाई देकर इन तीनों पर ही अपनी सत्ता कायम करता है. यह एक ऐसी स्थिति है, जो न निगलते बनती है और न उगलते. लेकिन यह एक सच्चाई है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता. अक्सर संबंधों में टकराव और दरार पड़ने की स्थिति इसी सत्ता-अधिकार की भावना से आती है और इसी भावना से असमानता की स्थिति भी पैदा होती है, क्योंकि सत्ताधारी शासित से स्वयं को बड़ा मानकर चलता है.

सबसे बड़ा सवाल सत्ता और अधिकार की भावना का है

स्त्री-पुरुष के बीच इस सत्ताधिकार के कारण पैदा हुई असमानता की आलोचना सही और खुले दिमाग से दो भारतीय चिंतकों ने की है. उनमें से एक हैं राजा राममोहन राय और दूसरे हैं डॉ. राम मनोहर लोहिया. राजा राममोहन राय ने भारतीय विधवाओं के पैरों में जकड़ी गुलामी की जंजीरों को काटा और डॉ. लोहिया ने उन्हें अपना निजी एवं स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा दी. डॉ. लोहिया ने कहा था—स्त्री-पुरुष के बीच बलात्कार और वादाखिलाफी के अलावा सारे रिश्ते जायज हैं.

स्त्री-पुरुष संबंधों को बहुआयामी विचार भूमि साहित्य ने दी है. विश्व की अधिसंख्य कविता इन संबंधों के कोमल और सौंदर्यपूर्ण धागों से बुनी गयी है, लेकिन कहानी ने इन संबंधों के अछूते और कठोर सत्य पर भी अपना ध्यान केंद्रित किया है. यह अंक इस कठोर सत्य के शतांश को भी उजागर कर सके तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

सत्ता संघर्ष कथा अंक

बात, बात में बात

सारिका का 'सत्ता संघर्ष अंक' पढ़कर मुग्ध रह गया. यह अंक कहानियों का एक संग्रहणीय दस्तावेज बन पड़ा है.

चाणक्य सेन के बंगला उपन्यास 'मुख्यमंत्री' में आज की स्थिति का बोलता चलता-सा चित्र है. इकबाल मजीद की 'जंगल कट रहे हैं' कहानी में महीन कशीदेकारी की तरह कथानक चलता है. शिल्प और भाषागत सौंदर्य की दुनिया में सचमुच यह अद्वितीय उर्दू कहानी है. रेणु की कहानी 'संवदिया' गांवों का ऐसा सजीव संस्पर्श लिये है कि मन अपने गांव की याद में डूबने-उतराने लगता है.

शरद जोशी का 'बतगंड़' खूब सधा है. कहते हैं 'ज्योंकेले के पात, पात में पात, त्यों शरद की बात, बात में बात.' व्यंग्य की अपनी पूरी गरिमा के साथ, भोंड़े हास्य से दूर परिष्कृत साहित्यिक विधा देने का श्रेय शरद भाई को जाता है.

● रामनारायण उपाध्याय, खंडवा (म.प्र.)

एक कहानी, जो चिरनूतन है

लगता है, वर्ष : 85 सारिका के सुधी पाठकों का वर्ष है. रजत जयंती वर्ष के सभी अंक पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी हैं. ज्ञानपीठ विशेषांकों के बाद 'सत्ता संघर्ष कथा अंक,' मैं तो फूला नहीं समा रहा हूं. अंतर्राष्ट्रीय युवा वर्ष में युवकों एवं पाठकों को आप का यह अनुपम उपहार है. . . . 'ज्ञानोपहार.' फरवरी, 85 (प्रथम पक्ष) की रेणु की कहानी 'संवदिया' आज भी ताजी एवं नूतन प्रतिबिंबों से युक्त लगी. सचमुच रेणु को अपने धूल-धूसरित अंचल से विशेष स्नेह था. साधुवाद के कुछ श्रद्धा प्रसून उनकी दिव्यात्मा को भी. 'लंदन की एक रात' (निर्मल वर्मा) में खंड़चित्रों की अनूठी वर्षा थी.

● मनोहरलाल विश्वास, बरसौनी (बिहार)

सांप का दंश

अंक आद्योपांत पठनीय रहा. इस अंक में प्रकाशित रामनिवास मानव की लघुकथा 'सांप' सही अर्थों में एक लघुकथा है. इससे यह बात प्रमाणित होती है कि रूप और आकार में छोटी होते हुए भी लघुकथा का प्रभाव कहानी, उपन्यास या किसी अन्य विधा से कम नहीं होता. शर्त यह है कि लघुकथा, लघुकथा हो.

● विजयकुमार सिंघल, कैथल (हरियाणा)

देहयष्टि का प्रभात

मुझे पता नहीं था कि 'सारिका' अपने जीवन के रजत पथ पर अग्रसर है. इसकी साइज देखकर लगा कि 'सारिका' की देहयष्टि काफी प्रगति पर है. अब इसकी सार्थकता का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ है. वैसे, सामग्री गंहरी सूझ और व्यापक संपादकीय अनुभव का परिचय देती है. साथ ही, एक-एक पृष्ठ की भावात्मक एवं सर्जनात्मक चिकनाहट, फिसलाहट किसी का भी मन मोह लेने के लिए पर्याप्त है. इसमें संदेह नहीं कि ज्ञान-पक्ष को विस्तार देने के लिए तथा हिंदी कहानी की संभावनाओं का परिचय देने में 'सारिका' नित-नये रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हो रही है, यह अच्छे लक्षण हैं. 'चंद्रगुप्त' का संक्षिप्त रूपांतरण देकर आपने बड़ी ही स्वस्थ रुचि का परिचय दिया है. रेणु की कहानी गरिमापूर्ण है. एक-एक लघुकथा सोचने-समझने को विवश करती है. 'बतंगड़' तो एक नयी दृष्टि लेकर आया है. शरद जोशी ने कमाल कर दिया है. 'जगंल कट रहे हैं' की मार्मिकता ने मानव मूल्यों के मसलों के खोखलेपन को उजागर किया है.

● रत्नेशकुमार सिन्हा, भागलपुर (बिहार)

पूर्णिया में बहुत से हरगोबिंद जिंदा हैं

सारिका को नये कलेवर में देखकर प्रसन्नता हुई और इस अंक में उच्च-स्तरीय रचनाओं के कुशल संकलन से यह प्रसन्नता दुगनी हो गयी. स्व. फणीश्वरनाथ 'रेणु' की रचना 'संवदिया' ग्राम्यजीवन की मार्मिक वेदनाओं का करुण दृश्य प्रस्तुत करती है. जिसके पात्रों के चेहरे रूपी आइने में एक-एक विवश औरत बड़ी बहुरिया नजर आती है. रमाकांत की टिप्पणी "बीस कोस पैदल चलना. . . अतिशयोक्ति. . ." उनकी अस्वस्थ मानसिकता को स्पष्ट करती है. क्या उन्हीं लोगों को आधार मानकर यह मूल्यांकन किया जा सकता है, जो 'चांदनी चौक' से 'इंडिया गेट' तक बिना स्कूटर या ऑटो-रिक्शा के नहीं जा सकते. वास्तविकता तो यह है कि आज भी पूर्णियांचल में बहुत से हरगोबिंद जिंदा हैं. बहुत से ऐसे लोग जिंदा हैं, जो 20 मील पैदल चलकर पूर्णिया कचहरी करके शाम तक गांव लौट आते हैं.

● हरिकिशोर चतुर्वेदी, अररिया

मुझे नहीं पता

पहली बार कुछ ऐसा लगा कि सारिका दिलों से दूर होती चली जा रही है. उस अपनेपन का अभाव मालूम हुआ, जिसके लिए आपकी पत्रिका प्रसिद्ध हुई. सबसे बड़ा आश्चर्य इस बात का था कि एक ऐसी पत्रिका में, जो आधुनिक हिंदी साहित्य का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है, एक भी कविता नजर नहीं आयी. भला कोई भी साहित्य कविता के बगैर पूर्ण कैसे समझा जायेगा! दूसरी बात जिसने काफी चोट पहुंचायी, वो थी आपकी पत्रिका में राजनैतिक कार्टून (पृष्ठ: 54–55) जिसमें राजीव गांधी विपक्ष की समाधि पर माल्यार्पण करते दिखायी पड़ रहे हैं. इससे सारिका के पाठकों का मनोरंजन कितनी मात्रा में हुआ, ये तो मुझे नहीं पता, मगर इस बात में कोई संदेह नहीं कि ऐसा काम करके आपने हमारी सारिका को अन्य बाजारू पत्रिकाओं की श्रेणी में खड़ा कर दिया है. पर्ल एस. बक की 'चांदी की तितली' काफी मर्मांतक कहानी लगी और साथ ही साथ उन लोगों के प्रति दिल में सहानुभूति उत्पन्न हुई, जो कम्युनिस्ट देशों के बाशिंदे हैं.

● गोपाल खेतान, दुर्गापुर (बंगाल)

नाटक और राष्ट्रीय चेतना

सदा कुर्सी से चिपके रहने की लालसा में सत्ताधारियों द्वारा किये जाने वाले कारनामों का भंडाफोड़ करता हुआ यह अंक अपने उद्देश्य में आंशिक रूप से सफल रहा. 'चंद्रगुप्त' के रूपांतरण में अनेक महत्वपूर्ण अंशों को छोड़ दिया जाना अच्छा नहीं लगा. यदि आप 'चंद्रगुप्त' नाटक धारावाहिक रूप से प्रकाशित करें तो मैं आपका आभारी हूंगा. आज देश की अखंडता डगमगाने लगी है और ऐसी स्थिति में यह नाटक राष्ट्रीय चेतना के विकास में बल प्रदान करेगा. 'संवदिया' और 'चांदी की तितली' की वेदना अंतरमन को स्पर्श कर गयी.

● वेदप्रकाश भोंसले, दुर्ग (मध्यप्रदेश)

प्रामाणिक कालजयता

रेणु की मार्मिक कहानी 'संवदिया' काफी अच्छी लगी. इस तरह की दुर्लभ ग्रामीण कहानी के लिए धन्यवाद. आप हर अंक में ऐसी संग्रहणीय कहानी देते रहिए. पूरी कहानी जिस ताजगी एवं उमंग से बांधे रहती है, वह निश्चय ही इसके कालजयी होने का प्रमाण है.

● सुधीरकुमार यादव, संबलपुर (उड़ीसा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मावलोकन

भविष्य के आसपास मंडराता अतीत

राजेंद्र यादव

सांवले रंग के बावजूद, चेचक के दाग पहले इतने बुरे नहीं लगते थे, लेकिन जबसे आधा मुंह जल गया है, बहुत ही भयानक लगने लगे हैं. उसे पता है, अब उसका चेहरा काफी कुरूप हो गया है और जब-जब वह उसे शीशे में देखने का साहस करता है, भ्रम होता है 'मोम का घर' का शैतान नायक अपना चेहरा उस पर छोड़ गया है. चेहरा ढकने के लिए अपना हैट मुंह आंखों पर झुकाये और ओवरकोट के उठे हुये कालरों से कनपटियां छिपाते हुए उसे सचमुच लगा, जैसे वह नहीं, किसी क्राइम फिल्म का नायक अपनी घात में इस पेड़ के नीचे बैठा है.

लड़कियां आ रही हैं. . .दूर से सफेद फ्राकों और लाल सुर्ख पुल-ओवरों में झुंड की तरह आपस में सटी-सटी वे चली आ रही हैं. पहले भनभनाहट सुनाई दी थी, अब बातें, हंसी खिलखिलाहट, एक दूसरी को छेड़ना दिखाई भी दे रहा है. . .आगे-आगे शायद दो टीचर हैं, चेस्टरों और साड़ियों में. . .उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा. भीतर की अचानक बढ़ आई उत्तेजना से लगा जैसे उससे बैठे नहीं रहा जायेगा, वह खड़ा होकर एक कदम सड़क के किनारे आ जायेगा. लेकिन प्रयत्न करके वह बेंच पर केवल आसन बदल कर रह गया, मुट्ठियां जोरों से जेबों में ठूंस लीं. . .टॉफियों का सख्त डिब्बा फूलकर एक जेब में बाहर की ओर निकल आया. अपने को उसने दूर से देखा, जैसे शैतान ने जेब में पिस्तौल तैयार कर ली हो. . .पिस्तौल नहीं, पुल, सेतु. . .वह औरत कहेगी. नहीं, अभी तो केवल लाल ऊन का लहरें लेता झुंड ही दीखता है और वीर बहूटियों के गुच्छे की तरह पास आएंगी तो अलग-अलग पहचाना जा सकेगा. सामने वाले पेड़ के पीछे छिपकर खड़े होने की कितनी इच्छा होती है, लेकिन इस तरह खड़े होना बहुत ही संदेहास्पद हो जायेगा. यहां वालों ने बेंच को भी इतनी दूर हटाकर रखा है. . .ठीक है. . .ठीक है, एकदम पेड़ से सटाकर रखते, तो ऊपर तो चिड़ियां कव्वे बैठने वालों पर बीट करते, उसने अपने आप को समझा लिया. अड्डे को लक्ष्य बनाकर एक कार पीछे से आकर हार्न देने लगी है, लड़कियां हटती नहीं हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिलखिलाकर आपस में हंसती हैं और कार को रोके रखने का दुष्ट आनंद लेने लगी हैं. कार पर अटैची बिस्तर लदे हैं, क्रीम रंग धूल में मटमैला हो गया है. . . शायद नीचे से चली आ रही है. एक टीचर मुड़कर कुछ कहती है और झुंड बीच से खुलने लगता है—इधर-उधर होता हुआ. लड़कियां शैतानी से खिड़कियों से झांक-झांक कर हंसती हैं, कुछ धूलिया सतह पर उंगलियों से लाइन बनाती हैं और लिखती हैं. बच्चे अपनी अबोध दुष्टताओं पर कैसे खुले दिल से हंस लेते हैं. उसने सोचा. हंसने वालियों में वह भी होगी बुलबुल. . .यहां भी उसे बुलाने का नाम बुलबुल ही होगा क्या? उसका एक हाथ अपने आप जेब से निकलकर छाती की ओर जाता है, फोटो निकाल लिया जाये—चेहरा मिला लेने में आसानी हो जायेगी फिर हाथ लौट आया. . .नहीं, उसे, उस चेहरे को वह भूल ही कैसे सकता है? यहां तो उसने अपना पूरा नाम ही बताया होगा, वंदना. . . वंदना क्या? सहगल या सिंह? नहीं, उसकी मां अब सिंह किसी हालत में नहीं लिखवायेगी, वह फिर उसी सहगल पर लौट गयी होगी. काश, वह भी यों ही छोड़ी हुई भूमियों पर लौट जाने का संतोष पा सकता. . .

अभी-अभी ये सब की सब सामने से गुजर जायेंगी, उन्हीं में से एक लड़की बुलबुल भी होगी. और शायद उसे सपने में भी ख्याल नहीं आयेगा कि बस के अड्डे के ऊपर, भरी-सी बेंच पर सिकुड़ा-सिमटा-सा कोई बैठा था, और उसे वह कभी पापा कहा करती थी. . .पापा. उसके कानों में नहीं, शायद चेतना के गहरे स्तरों में किसी ने निःशब्द कहा और उसका शरीर इस तरह रोमांचित हो आया जैसे पापा कहने वाली अभी उसके कान की लौ को दांतों में दबा लेगी, वह खुशामद करेगा, "बेटे, पापा कान कट जायेगा." और यों ही शैतानी से हंसते हुए

ऐसा क्यों हुआ कि जिस बेटी से मिलने के लिए वह इतनी दूर चलकर आया था. . .वह देखते-देखते उसकी आंखों के सामने से निकल गयी और वह भीतर ही भीतर घुटे स्वर में चिल्लाता खड़ा रह गया. . अलग हुए पिता की एक मार्मिक व्यथा कथा. . .

वह सिर हिलायेगी. नहीं छोड़ेगी. . .उसे यों पापा का कान दांतों में दबाकर परेशान करना बहुत अच्छा लगता है. . ."नहीं अखबार नहीं पढ़ने देंगे हम. हमसे बातें करो. . .कहानी सुनाओ.". . .अब तो वे दांत भी नहीं रह गये होंगे. . . न चाहते हुए भी, उठे हुये कालरों के पीछे अपने कान टटोलकर देखे. . . "पापा, आपके कानों में ये छेद क्यों हैं? आपकी मम्मी ने बनाये हैं. . .बहुत शैतानी करते थे इसलिए रस्सी से बांधने को? आप हमारे कानों में भी छेद बनायेंगे?" वह छिदे हुये कानों वाली लौ को उंगलियों की पोरों से खींचता रहा. . .बुलबुल. . .उसकी आंखों से पानी झूल आया और उसने जोर से उठते आवेग को सटका. . .अभी पांच-छः गज की दूरी से उसकी वंदना गुजर जायेगी, उस समय वह पुकारे बिना कैसे रह पायेगा? नहीं-नहीं, उसे अपने को व्यस्त कर लेना चाहिये, ताकि पुकारने के आवेग को दबाया जा सके. . .उसने पीपरमेंट की दो गोलियां निकालकर मुंह में डाल लीं. पहाड़ी रास्तों की बस सफर के लिये उसने यों ही दो चार गोलियां खरीद ली थीं. टटोलकर सिगरेट निकालते हुये उसने सोचा, इनका भी एक डिब्बा खरीद लेता तो ठीक था. . .हाथों के कांपने से सिगरेट का चमकदार कागज ठीक तरह नहीं खुल रहा था. . .कागज नहीं पन्नी. यह पन्नी और गोलियां बुलबुल को अभी भी उतनी ही पसंद हैं? उसके बस्ते में जाने कितनी पन्नियां और गोलियां भरी रहती थीं और वह नया डिब्बा खुलवाकर उसकी पन्नी ले लेती थी. और दांतों पर चढ़ाकर कहती, "पापा, हमारे दांत कैसे चांदी की तरह चमचम चमकते हैं. आपके तो गंदे हैं, छिः" फाड़ी हुई पन्नियों को उंगलियों पर लेकर वह देर तक उसे धुंधलाई निगाहों से देखता रहा. . .

मान लो, जब ये लोग उसके सामने से गुजरें और वह किसी भी तरह अपने पर जब्त न रख पाये, मेरी बुलबुल कहता हुआ झुंड में झपट पड़े तो वह उसे पहचान लेगी? उसी तरह बांहें फैलाकर उसके गले में झूल जायेगी? पापा नहीं, शायद नहीं पहचानेगी अब. . .

सारी लड़कियां डरी हुई बत्तखों की तरह इधर उधर कैं-कैं करती हुई भागने लगेंगी, टीचरें चीख पड़ेंगी और आस पास के सारे लोग उस पर टूट पड़ेंगे. . . "मारो, मारो, कोई बदमाश है, लड़की को उठाकर भागना चाहता था, रोकते नहीं तो मार ही डालता. . .पागल है, चेहरा तो देखो, कैसा भयानक है. हत्यारा. . . यों ही ये लोग उठाकर ले जाते हैं." और वह कल्पना में अपने को पिटते, लात घूंसे खाते देखता रहा, खूनियों से बचाते सिर पर जूते थप्पड़ पड़ते रहे. ये बीड़ियां पीते कुली ही सबसे पहले उसे दबोचेंगे. . .शायद बुलबुल उसे बिल्कुल भी नहीं पहचान पायेगी. . .सात साल कम नहीं होते. . .पता नहीं, इन दिनों में वह कितना कुछ बदल गया है? पहचाना जाता है या नहीं? और बुलबुल? तब साढ़े चार साल की थी, अब तो बहुत लंबी हो गयी होगी. दुबली पतली लंबी-सी लड़की को ही वह गौर से देखेगा. . . यह लड़कियों के बढ़ने की उम्र होती है, लंबाई में तो वह अपनी मां पर ही गयी होगी. . .

उसकी मां ने उसे जरूर बता दिया होगा, सब कुछ बता दिया होगा. उसके खिलाफ जितना भी जहर उसके मन में है, सब का सब उसने बेटी को सौंप दिया होगा. बुलबुल उसे पहचानकर भी, हो सकता है परिचय का कोई भाव न दिखाये. . .हो सकता है, मां की नाराजी और जहर को उसने वैसा ही अपने में ग्रहण भी कर लिया हो. . .मगर न जाने क्यों उसे लगता है कि बुलबुल कभी भी उससे नाराज नहीं रह पायेगी . . .सब कुछ जानकार भी वह उसे माफ कर देगी. वही तो एक है जो उसे माफ कर सकती है. . . .

खाने की मेज के आसपास वह और 'वह औरत' (अब वह उसकी मां को इसी नाम से याद करता है) बैठे हुए थे—सुबह की चाय पीकर. बर्तन उठा लिये गये थे. मेज पर ठीक उसके सामने बुलबुल भी बैठी थी और बार-बार उसके कान पकड़कर चाई माई करने का आग्रह कर रही थी. आपस के तनाव को भूलने के लिये वह इसी चाई माई में खो गया था . . .दोनों एक दूसरे के कान पकड़ लेते और आपस में नाकें दबाते हुये आगे पीछे झूमते चाई माई बोलते हुये. . .

"अभी छोटी है, कुछ भी नहीं समझती. बड़ी होकर जब बाप की हरकतों को समझेगी तो कहने में शर्माएगी कि ये ही मेरे फादर हैं." इस खेल को विरक्ति से देखती हुई वह औरत कह रही थी.

वह उद्दंड हो आया. बोला, "मैंने एक किस्सा पढ़ा था कहीं—किसी आदमी ने हत्या या बलात्कार का कोई अपराध कर डाला, पकड़कर राजा के सामने लाया गया. जिसने भी सुना, सब थू-थू करने लगे. फांसी की सजा सुना दी गयी. माता पिता, पत्नी को उसकी फांसी का दुख जरूर था लेकिन सभी उसके अपराध से विक्षुब्ध थे और जब आखिरी बार अपने घरवालों से मिलने का समय उसे दिया गया तो सभी उससे मिलने में संकोच कर रहे थे. जल्लाद जब उसे ले जाने लगे तो उसका पांच-छः साल का बेटा आकर उससे लिपट गया, "बापू, तुमने कुछ नहीं किया, तुमने कुछ नहीं किया. . ." उन सब में वही शायद ऐसा प्राणी था जिसने उसे जैसा का तैसा स्वीकार कर लिया था और सच्चे हृदय से क्षमा कर दिया था. . ." कहानी सुनाते-सुनाते पता नहीं क्यों उसका गला भर्रा आया. मन में कहा जब तुम और तुम्हारे सारे ये हिमायती मरने के समय भी मुझे दोषी ही ठहराते रहेंगे, तब शायद बुलबुल के ही हृदय का कोई एक कोना होगा, जो मुझे ज्यों का त्यों स्वीकार कर क्षमा कर देगा. . .तब मुझे अपने जाने का कोई मलाल, किसी मोह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामना नहीं रह जायेगी. . .और उसके आंसू व्यर्थ ही उपहास का लक्ष्य न बनें, इसलिये वह उठकर बाहर चला आया. देर तक रोता रहा, उस समय भी अपनी इस भावुकता के पीछे उसे न तो कोई कारण समझ में आ रहा था, न संगति. तब भी उसने यही कहा था कि शायद यह सेल्फ-पिटी—आत्मकरुणा है और बच्चों को लेकर सभी लोग इसी तरह बेबस हो जाते हैं. . .

आज भी बुलबुल के मन में क्षमा का कोई कोना सुरक्षित नहीं होगा? या वह भी अपनी शर्तें रखेगी कि पापा, पहले अपना चेहरा बदल लो, रंग साफ कराओ, सिगरेट छोड़ दो, ऐसे कपड़े पहनो, तब ही तुम मेरे पापा हो और तुम्हारे लिये मेरे मन में क्षमा ही क्षमा है. . .'वह औरत' पांच साल सिर्फ शर्तें तो रखती रही थी, जिन्हें अपने शब्दों में उसने नाम दिया था, एडजस्टमेंट—समझौता. शहीदाना ढंग से जब वह कहती, "मैं क्या इतना भी नहीं समझती थी कि विवाहित जीवन का दूसरा नाम एडजस्टमेंट है. लेकिन पांच साल मैंने सिर्फ मैंने ही तो एडजस्ट किया है—"खाना, रहना, आदतें. . .तुम्हारे लिये क्या नहीं बदला है? लेकिन तुम. . .तुम? कब तक कोई एडजस्टमेंट ही करता चला जायेगा अकेला?" तब हारकर एक दिन उसने कह दिया था, "नहीं, तुम एडजस्टमेंट नहीं करतीं, सिर्फ अपनी शर्तें रखती हो... वही करती रही हो. सीजफायर की नस तोड़ तनाव भरी स्थिति में दोनों पक्ष केवल अपनी शर्तें और कंडीशंस रखते हैं, अपने अपने प्रैस्टिज प्वाइंट पर निगाहें रखते हुये, जमीनें और सामान देते-लेते रहते हैं. उसे एडजेस्टमेंट और त्याग नहीं सिर्फ अपनी बात मनमाने का दबाव और मोर्चा कहते हैं. . ." सुनकर भन्नाती हुई वह बोली थी, "तब ठीक है. तुम अपनी उसी हूर की परी के साथ रहो. मुझसे और मेरी बेटी से तुम्हें कोई मतलब नहीं है, मैं इसे खुद पढ़ा-लिखा लूंगी. और तुमसे अच्छा पाल लूंगी. . .मैंने तो तुम्हें इतने दिनों निबाह भी दिया, मैं भी देखती हूं वह कितने दिनों निबाहती है. उससे निभे या न निभे फिर मेरे पास आने की जरूरत नहीं है. वह रोने-धोने का सिनेमाई सीन मैं बिलकुल नहीं चाहती. मेरी बेटी पर तुम्हारी छाया भी पड़े, यह मुझे अच्छा नहीं लगेगा. फिर यह न हो कि आज बेटी से मिलने चले आ रहे हैं., कल उसकी 'बर्थ डे' पर उपहार भेज रहे हैं और उसे ही पुल बनाकर मुझे कमजोर बनाने की कोशिश कर रहे हैं. समझ लेना, हम दोनों मर गये. . .मैं भी बुलबुल को समझा दूंगी कि तेरे पापा नहीं रहे. बिना बाप के हजारों बच्चे पलते हैं. ऐसी ही क्या बात है. . ."

रैंसम . . .दर्द से ऐंठते मन में एक शब्द उभरा, इस बार शर्त की दांव पर बेटी लगा दी गयी है. यह सब कहा भी था और लिखा भी था, "मैं नहीं चाहती कि बड़े होकर वह अपने बाप के चरित्र को जाने और हमेशा एक कॉम्प्लेक्स महसूस करती रहे कि उसका बाप ऐसा था. किसी के सामने तुम्हारा नाम लेते भी शरमाये."

काम्प्लेक्स महसूस करे?. . .इसी बात को शायद सबसे अधिक शिद्दत से उसने उस दिन महसूस किया था जिस दिन अस्पताल से डिस्चार्ज होकर पहली बार अपना चेहरा देखा था. . .झुलसने और खाल उधड़ जाने से सारा मुंह दाग-दागीला हो गया था. . .भयानक और कुरूप. . .खुद ही डर लग आया था. आज भी वह देखेगी तो कहेगी—भीतर का पाप फूटकर निकल आया है. . . मेरी आत्मा का अभिशाप आखिर कहीं तो अपना असर दिखायेगा ही. . . इन शब्दों के सामने वह शायद कभी भी किसी को नहीं बता पायेगा कि उसने सिर्फ शराब पीकर अपने को जला देने की कोशिश की थी. . .अभी भी क्या वह पहले की तरह कह पायेगी, "तुम्हारे नाक-नक्श सब सचमुच कितने अच्छे हैं. इस चेचक ने ही सारा काम खराब कर दिया. लगता है, बुरी तरह निकली थी. तो सबसे पहले बुलबुल को चेचक का ही टीका लगवाऊंगी. . . उसने तुम्हारे फीचर्स और मेरी हाइट ली तो देख लेना, सौ में एक होगी. . ." बाद की बात उसने नहीं सुनी थी, सिर्फ पहली सुनी थी और मन में अनुवाद किया था—ये चेचक के दाग मिटवा लो, तभी तुम मेरे पति

लघुकथा

लगाव

■ खलील जिब्रान

"मैं तुम्हें प्रेम करती हूं." लजाते हुए उसने पुरुष से कहा.

"मैं भी बहुत चाहता हूं कि तुम्हारा प्रेम किसी भी तरह मुझे मिल जाये!" पुरुष चिहुंक उठा.

"मुझे लगता है. . . . .तुम प्रेम नहीं करते मुझसे!"

पुरुष, यह सुनकर सकते में आ गया. उसकी आंखें नारी की ओर उठी की उठी रह गईं और जुबान चाहकर भी हिल न सकी.

वह कुछ सोच पाता, इससे पहले ही नारी दुखी मन से लगभग चीत्कार कर उठी, "मुझे तुमसे नफरत है. . . . नफरत!"

पुरुष की आंखें झुकीं और जुबान हौले-से कह गयी, "मेरी दिली इच्छा है कि किसी तरह तुम्हारी नफरत ही पा सकूं." □

और बुलबुल के बाप होने लायक हो सकोगे. . .आज जलने के इन दागों को लेकर भी वह वैसी ही शर्त फिर रखेगी. . .जो कुछ किया है उसे पोंछ दो, तभी मैं तुम्हें. . .

नहीं, आज तो बुलबुल भी उसे ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं कर सकेगी. . ."ये तुम्हारे पापा?" लड़कियों की समवेत हंसी आज तो उसके मन में न जाने कितने कॉम्पलैक्सों का दक्ष छोड़ जायेगी. अगर वह उसकी दोनों बाहों पकड़कर कहेगा कि "बुलबुल, देख, मैं तेरा पापा हूं. सिर्फ तुझसे मिलने, तुझे देखने, तुझसे बातें करने ही हजारों मील चलकर इस पहाड़ी स्कूल के पास आया हूं. सुबह से इस बस स्टैंड के चक्कर काट रहा हूं मुझे मालूम है, हर रविवार को तुम लोग यहां आते हो. . . इस छोटे से हिल स्टेशन के बाजार में घूमने, चीजें खरीदने, सिनेमा देखने. . देख, बुलबुल , तेरे लिये टॉफियां लाया हूं, तुझे किताबें दूंगा. . ."

"नहीं, नहीं मुझे छोड़ दो. . .मुझे छोड़ दो. . .मुझे कहीं कुछ नहीं चाहिये . . .तुम मेरे पापा नहीं हो. . .टॉफियों को उधर फेंक दो. . .मेरे पापा बहुत सुंदर थे. . .बहुत अच्छे थे. . .मर गये. . ." कंधे छुड़ाती लड़की लगातार छूटने की कोशिश करती रहती है, रोने लगती है. . .सबके सामने ऐसे आदमी को वह कैसे पापा मान पायेगी?

पनीले कुहासे के पार, लड़कियों का झुंड सामने में गुजरता रहा और वह सूनी-सूनी आंखों से पहचानने की कोशिश करता रहा. . .शायद वह लंबी-सी लड़की ही बुलबुल है. . .नहीं, वह नहीं, दूसरी, जो मोटी वाली के उस सिरे पर चल रही है. . .नहीं, शायद वह बीच वाली है चॉकलेट खाती हुई. . .वह बढ़कर टीचर से भी तो पूछ सकता है, "मिस , इनमें वो वंदना भी आयी है क्या?"

"कौन सी वंदना?" वंदना शर्मा, संदना सहगल? वंदना बोस, वंदना अइयर. . .?"

"कोई नहीं मिस."

वह बेहोश-सा झुंड के पीछे पांच सात कदम खिंचता चला गया, "अरे मिस सुनिये . . ." उसके भीतर कोई घुटे स्वर से चिल्लाता रहा. . . फिर कंधे ढीले-ढाले खड़ा रहा. शराबी की तरह लौटने लगा तो चॉकलेट का सफेद नीला कागज पैरों से कुचलकर सड़क से चिपका हुआ उसे ही ताक रहा था. . .

नीचे स्टेडियम की तरफ काटकर बनाया गया बस स्टैंड था और सामने खुले पहाड़ों का झकोले लेता सिलसिला. . .हाथ में चॉकलेट का कागज मसलता वह देर तक शायद यही समझने की कोशिश करता रहा कि वह कहां है और उसे किधर जाना है?. . . □

अक्षर प्रकाशन, प्रा. लि., अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलामी दर गुलामी

अमृता प्रीतम

हाल ही की बात है. शहर दिल्ली में एक गरीब मां-बाप की बेटी के रिश्ते के लिए कुछ लोग उनकी लड़की को देखने आये. . . . और बोले, "लड़की हमें पसंद है."

तब मां ने पूछा "आप दहेज में क्या कुछ चाहेंगे?"

"कुछ नहीं." जवाब सुनकर मां चौंक उठी और पूछने लगी, "फिर आप कितने दिन बाद लड़की को जला देंगे?"

हकीकत यह थी कि बिल्कुल पड़ोसी घर की लड़की को कुछ ही दिन पहले सुसराल में जला दिया गया था. दोस्तो, यह कितनी कंटीली दहशत है, जो हर लड़की के मां-बाप की मानो तकदीर ही बन गयी है.

ठीक है—हमारे देश में आबादी का मसला बहुत बड़ा है. बहुत बच्चे पैदा न किये जायें, पर यह बात तो इंसान के इखलाक की है. इस संयम के नाम पर भी कई औरतों पर कैसा जुल्म हो रहा है, इसका एक हवाला आपके सामने रखती हूं—

करीब महीना भर पहले, पटियाला के अस्पताल में एक आदमी अपनी बीवी और दो बच्चों को लेकर आया कि उसकी बीवी का आप्रेशन कर दिया जाये.

औरत का मुआयना करने के लिए जब उसे अंदर डाक्टर के पास ले जाया गया, जाहिर है, तब वह अकेली थी. वहां वह डाक्टर के पांवों पर गिर पड़ी और रोने लगी, "डाक्टरनी साहिबा, मुझ पर तरस करो. मेरा आप्रेशन न करो, मेरा कोई बच्चा नहीं. जो बच्चे, मेरा आदमी आपको दिखाने के लिए लाया है, वे मेरे बच्चे नहीं हैं. मेरे आदमी ने दूसरी औरत रखी हुई है, ये उसके बच्चे हैं. . . . वह मुझे छोड़ना चाहता है. . . . पर आपके अस्पताल में उस आदमी को जो अपनी बीवी का आप्रेशन करवाता है डेढ़ सौ रुपये दिये जाते हैं. . . . और वह मुझे छोड़ने से पहले डेढ़ सौ रुपये कमाना चाहता है. . . . वह मुझे यहां लाने के लिए दो दिन से पीट रहा था. . . . . वह मुझे छोड़ देगा. अगर आपने मेरा आप्रेशन कर दिया तो मैं इस काबिल भी नहीं रहूंगी कि किसी दूसरे मरद के घर बैठ सकूं. . ."

मेरे पास सचमुच अल्फाज नहीं कि मैं उस औरत का दर्द बयान कर सकूं.

'विवाह' शब्द के अर्थ क्या थे?—एक उदाहरण आपके सामने रखती हूं—जिन

क्या दहेज जैसी प्रथा का प्रभाव सिर्फ आर्थिक अभाव के तनाव ही पैदा करता है या स्त्री-पुरुष के सामाजिक संबंधों को भी बदल डालता है?—प्रस्तुत है प्रख्यात कवियत्री का संवेदनशील संभाषण. . .

विदुषी महिलाओं की ऋचाएं ऋग वेद में संकलित हैं, उनमें से एक सूर्य सावित्री के शब्द हैं—'ऊषा सूरज को मिले तो उसकी आंखों में इलम का सुरमा हो. वेद मंत्र यानी शायरी उनके हाथों में एक-दूजे के लिए तोहफा हो. दुनिया के विद्वान उनसे प्रेरित हों और स्वतंत्रता उनका वसल हो. . . .'

औरत और मर्द के वसल का एक ही अर्थ था—स्वतंत्रता. पूर्णता तब इसी में थी, जिसमें दोनों का व्यक्तित्व कायम रहता था. पर पूरी सभ्यता टूट गयी, जब इस अर्थ के 'आठ टुकड़े' कर दिये गये. हमारे प्राचीन ग्रंथों में विवाह की आठ किस्में मानी गयी हैं, जिनमें से यज्ञ करनेवाले पुरोहित को कन्यादान कर देना, या वर से दो बैल लेकर उनके बदले लड़की दे देना, या जंग में जीतकर लड़की को ले आना, या रोती-बिलखती लड़की को जबरदस्ती उठाकर ले जाना, आदि विवाह की किस्में मानी गयी हैं.

आज का विधान इन्हें नहीं मानता, पर ये सारी किस्में आज भी दुनिया की हकीकत हैं. रोज़मर्रा के जिंदगी में क्या यही सब देखने में नहीं आ रहा? . . . .

हैरान हूं, यही देश था, जिसका चिंतन इतना गहरा था कि उसने ईश्वर की भी कल्पना की तो अर्द्धनारीश्वर के रूप में. . . . यानी ईश्वर जो आधा मर्द है आधा औरत. इन दो हिस्सों के मिलन से सृष्टि की रचना हुई.

फिर यह कैसे घटित हुआ कि ईश्वर का आधा हिस्सा लाचार और मजबूर हस्ती बन गया— एक बेआवाज वस्तु, और ईश्वर का दूसरा आधा हिस्सा उसे खरीदने और बेचने लगा. . . .

शिवशक्ति जैसा फलसफा इसी देश में पैदा हुआ. इसी देश का चिंतन था कि 'वाच' सब वेदों की माता मानी गयी. लक्ष्मी धन की और सरस्वती वाणी की देवी के रूप में प्रतिष्ठित हुई. जहां स्त्री के बिना कोई भी यज्ञ पूर्ण नहीं होता था, वहां देवदासियों के रूप में स्त्रियों को मंदिरों की वेश्याएं बनाने की प्रथा चली और विवाह के भुलावे में गरीब लड़कियों को लाकर बाजार में बिठाने का व्यापार चला! और आज वो समाज पैदा हुआ; जिसके घर के चूल्हे की आग सिर्फ घर की बहू को ही लगती है. . . .

यह कैसे हुआ?

यह बहुत बड़ा सवाल है, जिसे उठाने के लिए बहुत बड़ी आवाज की जरूरत है.

आवाज, जो इंसान की इंसानियत तक पहुंचे.
आवाज, जो समाज के जमीर तक पहुंचे.
आवाज, जो वक्त के कानून तक पहुंचे.

मैं यह नहीं मानती कि चिंतनशील और अहसासमंद मर्दों की आवाज इस आवाज में शामिल नहीं, क्योंकि मर्द का औरत से एक सदीव रिश्ता है. खासकर, मां की सूरत में, प्रेमिका की सूरत में और बेटी की सूरत में.

पर हमारे समाज की बुनियाद में एक बहुत बड़ी कमी है कि मर्द के लिए औरत की इज्जत रिश्ते की सूरत में और बेटी की मूरत में हैं, पर रिश्ते से बाहर औरत के लिए नहीं.

दूसरी तरफ औरत अपनी पहचान अपने में से नहीं ढूंढती, वह अपनी पहचान मर्द के माध्यम से खोजती है. इसीलिए, बहू जलती है तो कोई भी सास उसके लिए आवाज नहीं उठाती, वह वह सिर्फ बेटे की हिफाजत के लिए ही आवाज उठाती है.

यह एक बहुत बड़ी गुलामी है—मानसिक गुलामी. . . गुलामी दर गुलामी.

दोस्तो! यह जिंदगी जीने के काबिल तब होगी, जब मर्द अपने अंदर के 'शिव' को पहचानेगा. . . . . और औरत अपने अंदर की 'शक्ति' को. □

(बोट क्लब, नयी दिल्ली, पर दहेज विरोधी रैली में दिया गया भाषण)

प्रस्तुति : रमेश बत्तरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ममता

मक्सिम गोर्की

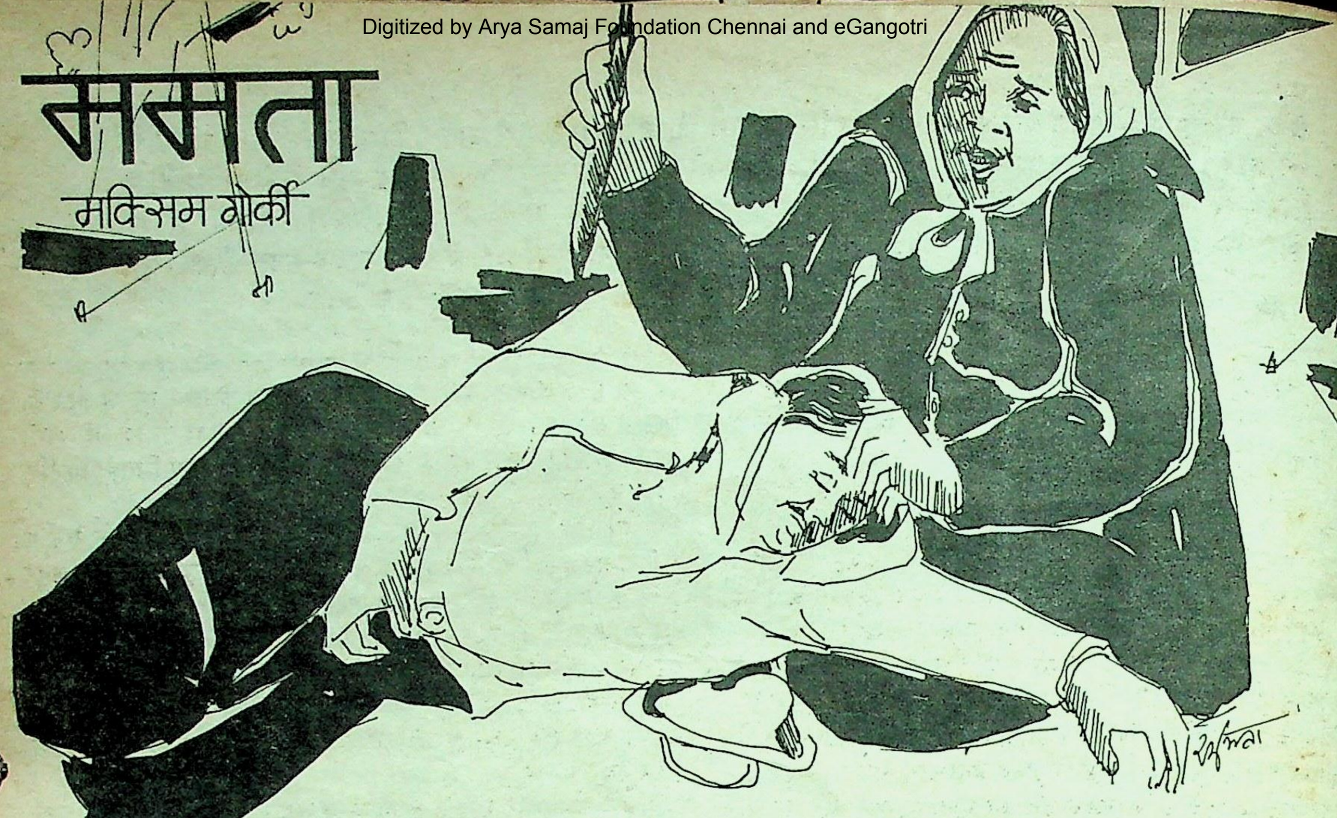

ममता का मर्म अपरमपार है! . . .

कई सप्ताह से शहर को शत्रुसेना ने चारों तरफ से घेरा हुआ था. रात को बड़े-बड़े अलाव जलाये जाते ताकि शहर की दीवारों पर नजर रखी जा सके. परंतु शत्रु का फंदा था कि कसता ही जा रहा था. उनकी संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही थी. उन्होंने शहर की जलपूर्ति करनेवाले तमाम स्रोतों में लाशें डाल दी थीं. चारदीवारी के आसपास स्थित बगीचों को जला दिया था, खेत रौंद डाले थे और अब हर रोज गोलाबारी कर रहे थे.

शहर के लोग डरे हुए थे. सिपाही निराश थे. उन्हें भरपेट भोजन भी नहीं मिल पा रहा था. हर तरफ घायलों की कराहें, बच्चों का रुदन और स्त्रियों की प्रार्थनाएं गूंज रही थीं. लोग आपस में कानाफूसी करते रहते और सहसा चौकस होकर सुनने लगते कि कहीं शत्रु सेना ने आक्रमण तो नहीं कर दिया.

हर चीज उन्हें मौत की याद दिलाती. वे घरों में बत्तियां तक जलाते हुए भी खौफ खाते. इसलिए रात को शहर अंधेरे में ही डूबा रहता. मगर ऐसे में सिर से पांव तक काला लबादा ओढ़े हुए एक महिला अथाह जल में इधर से उधर और उधर से इधर छपकनेवाली मछली की तरह चुपचाप घूमती रहती. लोग उसे देखते और आपस में पूछते, "यही है न वह . . . ?"

"हां." और वे चुपचाप उस महिला से दूर खिसक जाते मानो उसका साया भी मनहूस हो.

गश्ती सिपाही उसे टोकते, "तुम फिर बाहर निकल आयी मरियाना? . . . तुम समझती क्यों नहीं कि मारे गुस्से के कोई तुम्हारी हत्या भी कर सकता है?"

वह खामोश खड़ी रहती और गश्ती सिपाही बड़बड़ाते हुए आगे निकल जाते. उस पर हाथ उठाने का या तो उनमें साहस नहीं था या फिर वे महिला से मारपीट करना उचित नहीं समझते थे.

मरियाना अकेली रह जाती और फिर कुछ सोचती हुई किसी भी तरफ निकल जाती. दरअसल, वह अपने बेटे और अपनी इस मातृभूमि के बारे में सोचती हुई असमंजस में घिरी रहती थी, क्योंकि इस शहर को बरबाद करनेवाले शत्रु सैनिकों का सिपहसालार था—उसका बेटा, खुशदिल, खूबसूरत मगर कठोर और हृदयहीन! कुछ दिन पहले तक उसे अपने जवान और बहादुर बेटे पर गर्व था कि इस शहर की रक्षा के लिए उसने अपने बेटे के रूप में समाज को एक कल्याणकारी शक्ति प्रदान की है. परंतु अब वह अपने सबसे प्रिय व्यक्ति को गवां चुकी थी. इसलिए उसका मन किसी तराजू की तरह डावांडोल हो रहा था, जिसमें पुत्र-प्रेम और जन्मभूमि के प्रति अपने प्रेम को तौलती हुई वह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि कौन-सा पलड़ा भारी है और कौन-सा हल्का.

एक रात नगर की चारदीवारी में बने सुरक्षा द्वार से कुछ दूर उसे एक स्त्री दिखायी दी, जो एक शव के पास निश्चल-सी बैठी थी. उसने उससे पूछा, "कौन . . . पति?"

"नहीं, बेटा. पति तेरह दिन पहले ही मारा गया था." वह स्त्री उठ खड़ी हुई, "खैर, मेरा बेटा जन्मभूमि के लिए शहीद हो गया . . . और अब मैं निश्चिंत हूं."

"क्या मतलब?"

"मेरा बेटा मौज-मस्ती और आरामदेह जीवन का शौकीन था और मुझे डर था कि वह कहीं मरियाना के बेटे की तरह शहर के साथ विश्वासघात न कर बैठे. लानत है उस देशद्रोही पर और उसे जन्म देनेवाली कोख पर."

मरियाना ने अपना चेहरा ढांप लिया और शुकर मनाया कि उस स्त्री ने उसे पहचाना नहीं. उस रात वह सो नहीं पायी. सुबह तड़के ही वह हाल-बेहाल-सी नगर के सुरक्षा द्वार पर पहुंच गयी. वहां तैनात मुखिया से उसने अनुरोध किया, "मेरा बेटा आपका दुश्मन बन गया है. इसलिए या तो मुझे भी मार डालिए या मुझे उस तरफ उसके पास भेज दीजिए."

मुखिया हैरान-सा बोला, "तुम इंसान हो . . . तुम्हारे लिए मातृभूमि ही सर्वोच्च होनी चाहिए. वह मूर्ख तुम्हारा भी उतना ही शत्रु है जितना हम सबका."

"मगर मैं मां हूं . . . उसे प्यार करती हूं और जैसा वह बना है उसके लिए स्वयं को दोषी मानती हूं."

"बेटे के अपराध के लिए तुम्हें दंड नहीं दिया जा सकता. मुझे मालूम है कि तुम उसे ऐसी प्रेरणा नहीं दे सकती. तुम्हारे बेटे को तुम्हारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर भारत के शिक्षित वर्ग में यह सर्वेक्षण किया जाये कि वे अपने देश से बाहर, विश्व के किन-किन लेखकों को जानते हैं, तो शेक्सपीयर के बाद अधिकांश लोग गोर्की का ही नाम लेंगे. यहां प्रस्तुत है बीसवीं सदी के प्रारंभ में 'इटली की कथाएं' शीर्षक से लिखी गयी कहानियों में से गोर्की की एक प्रतिनिधि कहानी जो मां और बेटे के संबंधों के सामाजिक, राजनैतिक और व्यक्तिगत पहलुओं को उजागर करते-करते सिर्फ रूस की ही नहीं रह जाती बल्कि समूचे विश्व की धरोहर बन जाती है. . . .

कोई चिंता नहीं होगी . . . वह शैतान तुम्हें भूल चुका होगा. फिर भी तुम उसके पास जाना चाहती हो तो मैं समझता हूं कि यही तुम्हारी सजा भी है . . . मृत्यु से भी भयंकर."

"हां, मृत्यु से भी भयंकर." मरियाना बोली, "फिर भी मैं जाना चाहती हूं."

फाटक खुल गया और उसे शहर से जाने दिया गया. वह हौले-हौले ऐसे चलने लगी जैसे अपने लबादे में पानी से लबालब प्याला लिये जा रही हो और उसे आशंका हो कि वो कहीं छलक न जाये.

कुछ ही दूरी तय करते न करते शत्रु शिविर की काली-काली आकृतियों ने उसे घेर लिया, "कौन हो? . . . किधर जा रही हो?"

"मैं तुम्हारे सिपाहसालार की मां हूं." उसने जवाब दिया. पहले तो वे सिपाही सकते में आ गये मगर फिर उसे साथ लेकर शिविर की तरफ बढ़ने लगे. रास्ते में वे उसके बेटे का गुणगान गाते रहे कि वह कितना वीर, बलिष्ठ और चतुर है. वह बड़े गर्व से उनकी बातें सुन-सुनकर खुश होती रही कि उसके बेटे को ऐसा ही होना चाहिए! . . . कि हां, वह ऐसा ही तो है! . . .

आखिर वह अपने बेटे के सामने जा खड़ी हुई, जिसे वह अपने दिल से कभी अलग नहीं कर पायी थी. रेशमी और मखमली वस्त्रों और रत्नजड़ित शस्त्रों से सजा हुआ वह बहुत महिमामय प्रतीत हो रहा था. मां ने कई बार सपनों में उसे इसी रूप देखा था—धनवान, प्रसिद्ध और सराहनीय.

"मां!" बेटे ने मां का हाथ चूम लिया, "मुझे खुशी है कि तुम आ गयीं . . . तुमने मुझे समझ लिया. अब मैं उस शापित शहर को चुटकियों में मसल दूंगा."

"वही शापित शहर . . . जहां तुमने जन्म लिया."

"मां, मैं इसलिए पैदा हुआ हूं कि दुनिया को हैरान कर दूं. सिर्फ तुम्हारी वजह से मैंने अब तक आक्रमण नहीं किया. मेरी ख्याति की राह में वह शहर मेरे पांव का कांटा बना हुआ था. मगर कल मैं जिद्दी मूर्खों के उस घोंसले को तहस-नहस कर दूंगा."

"जानते हो, वहां का एक-एक पत्थर तुम्हें एक बच्चे के रूप में जानता है. . . और याद करता है."

"पत्थर तब तक गूंगे रहते हैं जब तक आदमी उन्हें जुबान नहीं देता. मैं चाहता हूं कि पत्थर और पहाड़ मेरी गौरव-गाथा गायें."

"और वहां के लोग?"

"मुझे उनकी भी आवश्यकता है, क्योंकि लोगों की स्मृति में रहकर ही वीर पुरुष अमर और महान होते हैं?"

मां ने कहा, "सच्चा वीर वह होता है जो मृत्यु से लोहा लेकर जीवन का निर्माण करता है."

"नहीं, नष्ट करनेवाला भी उतना ही यशस्वी होता है जितना कि निर्माण करनेवाला. रोम का निर्माण किसने किया, हम नहीं जानते. मगर रोम को वीरान कर देनेवाले बहादुरों को बखूबी जानते हैं."

"परंतु नाम तो रोम का ही चिरस्थायी रहा है." मां ने कहा . . . और इस तरह वे सूर्यास्त होने तक तर्क-वितर्क करते रहे.

मां रचना करती है, रक्षा करती है. उसके समक्ष विनाश की बातें करना, उसके विरुद्ध बोलना होता है, पर जोशीला बेटा था कि मां के जीवन के उद्देश्य पर ही पानी फेरता जा रहा था. वह नहीं जानता था कि जो हाथ आबाद घरों में मौत लाते हैं, मां के लिए घृणित होते हैं. वह तो बस, यश की लिप्सा में लीन था. नहीं जानता था कि मां अपनी रचना के लिए खतरा पैदा होने पर उसकी रक्षा के लिए जितनी निर्भीक होती है, उतनी ही चतुर तथा कठोर भी हो सकती है.

मां सिर झुकाये खामोश बैठी अपने बेटे को शत्रु-नेता के रूप में सैनिक तैयारियां करते देख रही थी . . . और देख रही थी अपने शहर के चप्पे-चप्पे को जहां लोग घरों में बत्तियां जलाने से डर रहे थे . . . सड़कें, जिन पर अंधेरा पसरा हुआ था . . . जहां-तहां लाशों की बदबू फैली हुई थी . . . और थीं मौत की प्रतीक्षा में जीवन की अंतिम घड़ियां गिनते हुए लोगों की फुसफुसाहटें, प्रार्थनाएं, चीखें, रुदन और विलाप! . . . सबको और सभी कुछ देखते हुए सहसा उसने महसूस किया कि वह तो सबकी मां है! . . .

बेटे ने आकर उसकी तन्मयता तोड़ी. बोला, "रात अगर काफी अंधेरी हुई तो हम आज ही आक्रमण कर देंगे. सूरज की चौंध में दुश्मन को मारना आसान नहीं होता . . . कई बार वार बेकार चले जाते हैं."

मां मुस्करा दी, "यहां, मेरे पास आ मेरे बच्चे . . . . मेरी गोद में सिर रखकर जरा आराम कर ले और याद कर कि बचपन में तू कितना प्रसन्नचित्त और दयावान होता था . . . और सब तुम्हें कितना प्यार करते थे."

बेटा बड़े दुलार से मां की गोद में सिर रखकर लेट गया और आंखें मूंदकर बोला, "मुझे केवल दो चीजों से प्यार है. . . अपनी कीर्ति-प्रसिद्धि और तुमसे, जिसने मुझे ऐसा होने के लायक बनाया है."

"और बाकी स्त्रियां?"

"उनकी क्या कमी है . . . उनसे तो आदमी वैसे ही ऊब जाता है है जैसे हर मीठी चीज से."

"और क्या तुम बच्चे भी नहीं चाहते?"

"किसलिए? . . . मेरे ही जैसा कोई उन्हें मार डालेगा जो मेरे लिए घातक होगा."

"तुम सुंदर हो, बहादुर हो." मां ने उसांस छोड़ते हुए कहा, "मगर बंजर जमीन की तरह बांझ."

"हां, बंजर की तरह . . ." और बातें करते-करते बेटे को मां की गोद में ही झपकी आ गयी.

मां ने उसे अपने काले लबादे से ढांप दिया. अपना छुरा निकाला. कुछ पल दुविधा में पड़ी सोचती रही और फिर यकबयक फैसला लेकर, छुरा उसकी छाती में भोंक दिया. वह छटपटाकर उसी क्षण मर गया. वह मां थी और भली-भांति जानती थी कि बेटे का दिल किस जगह धड़कता है. उसने उसके शव को हैरान खड़े सिपाहियों की ओर लुढ़का दिया और अपने शहर की तरफ मुंह करके कहा, "एक नागरिक . . . एक इंसान होने के नाते मैं अपनी मातृभूमि के लिए जो कुछ कर सकती थी, मैंने कर दिया! . . . अब मैं अपने बेटे के साथ हूं."

वह मुड़ी, झुकी और अपने बेटे के खून से, नहीं अपने ही खून से लथ-पथ वह गरम छुरा निकालकर उसने पूरी ताकत से अपनी ही छाती में भोंक लिया! . . . इस बार भी निशाना अचूक बैठा . . . टीसते हुए दिल को ढूंढना मुश्किल नहीं होता. □

रूपांतर : रमेश बतरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जतिन दास के 'स्त्री पुरुष'

महेश दर्पण

जतिन दास, देश के सुपरिचित चित्रकार हैं. लंबे समय तक कैनवस पर एक ही आकृति पर काम करते रहे.....फिर अनायास दो आकृतियां उभरने लगीं. जतिन ने स्त्री-पुरुष आकृतियों को कई प्रकार से संयोजित किया.

पिछले दिनों 'टाइम्स आफ इंडिया' द्वारा त्रिवेणी में श्रीधरानी गैलरी, नयी दिल्ली में आयोजित जतिन दास की प्रदर्शनी में ये चित्र दर्शकों के बीच खासी चर्चा का विषय बने रहे.

स्त्री-पुरुष संबंधों को उनके समूचेपन में पकड़ने की कोशिश करते जतिन कहीं नेरेटिव नहीं हुए हैं. . . वे उस क्षण को पूरी तरह उपस्थित कर देना चाहते हैं जैसे.

जतिन का यह कहना काफी हद तक सही लगता है कि 'किसी कलाकार के काम पर चर्चा करना काफी कठिन काम है . . .' यहां तक कि वे खुद अपनी कला को लेकर भी यह दावा नहीं करते कि वे उसे अच्छी तरह पहचानते हैं. कैनवस पर ऑयल पेंटिंग को एक सशक्त माध्यम मानने वाले जतिन दास स्वभाव से शांत और बहुत कम बोलनेवालों में हैं.

दिल्ली में, जतिन की यह प्रदर्शनी करीब सात साल बाद आयोजित हुई. अपने कुछ चित्र तो जतिन को लोगों से मांगकर प्रदर्शनी में रखने पड़े ताकि लोग उन्हें समूचेपन में देख सकें. बानगी के तौर पर यहां हम जतिन दास की एक कलाकृति का सुपरिचित छायाकार रघुराय द्वारा खींचा छाया चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं. □

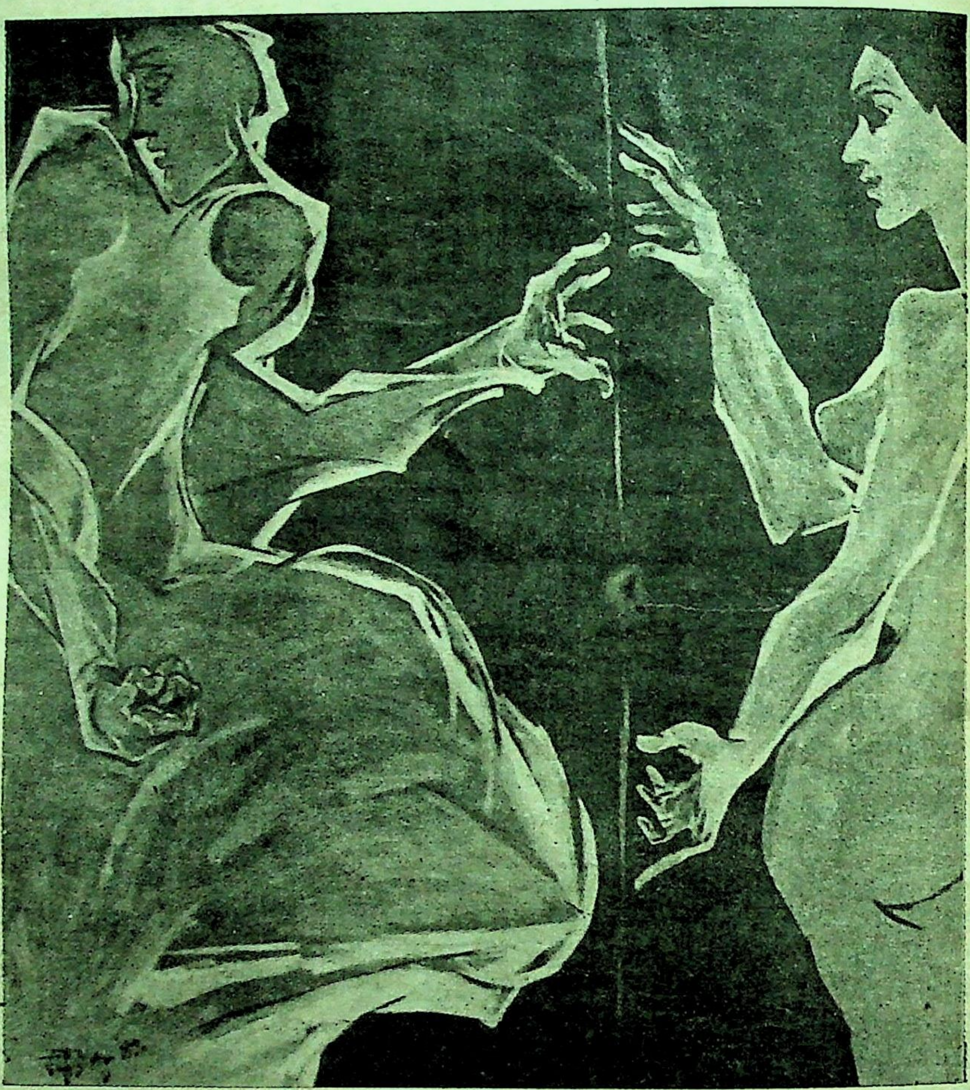

छाया : भवन सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर प्रेम

विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय

औरत का खयाल था कि वह पुरुष को कुछ नहीं दे सकी... पर पुरुष था कि सब कुछ पा गया हो जैसे. जिंदगी के लिए क्या धन दौलत, औरत और शराब ही सब कुछ होती है या कुछ और भी होता है जो इन सबसे अलग सब कुछ खो देने के बाद भी, बहुत कुछ दे जाता है. . . .और लगता है कि समूची दुनिया ही अपनी है?—प्रस्तुत है बहुचर्चित बंगला उपन्यास का संक्षिप्त रूपांतर—

ससुराल से ठुकराई हुई पुष्पा पैदल ही ग्राम-ग्रामांतर पार करती, कोसों दूर निकल आयी. भगवान ने ही उसे बांझ बनाकर औरत की जिंदगी का सबसे बड़ा अभिशाप दे डाला. अपने जीते जी सौतन का वरण करके भी पति के घर में उसके लिए जगह न बची. . .

जाने कित्ती सड़कें, पगडंडियां पार करती पुष्पा कातिक पुर तक आ ही पहुंची. नैपाल बांड़ुज्या और हाराधन मुखर्जी ने उसे गांव के बाहर ही देख लिया था. घर पहुंचकर, बाहर खड़े हो मां को आवाज दी तो भौंचक-सी मां बाहर आयी, "अरे पुष्पा, तू अचानक कैसे चली आयी?"

पुष्पा का गला भर आया, "तुम्हारे दामाद की मार खाते-खाते मेरी देह नीली पड़ गयी है. . . !"

बुढ़िया थोड़ी देर खामोश रही, फिर बोली, "तू यहां आ तो गयी. . . पर खायेगी क्या? अपने ही पेट के लिए नहीं जुटा पाती तुझे कहां से. . .!" उसकी बात पूरी होने से पहले ही पुष्पा बोल पड़ी, "मैं दरवाजे-दरवाजे गोपाकर भिक्षा मांगूंगी! . . हम लोग कीर्तनियां हैं. कुछ न होगा तो नौकरानी ही बन जाऊंगी. . . पर लौटने को मत कहना मां!",

अगले ही दिन से दो मुट्ठी अन्न जुटाने की कोशिशें शुरू हो गयीं.

बहुत कोशिशों के बाद भी जब कोई काम न मिला तो. . . अब पुष्पा के पास आत्महत्या के सिवाय और चारा ही क्या था! गले में गगरी बांधकर वह डूब ही जाती अगर नैपाल बांड़ुज्या उसे बचा न लेता.रस्सी खोल, कलसी पानी में फेंक बांड़ुज्या उसे वापस ले आया.

दूर कहीं कौआ चीख रहा था. . . कांव! कांव कांव!

एक-एक करके कई साल बीतते चले गये. . . पर पुष्पा किसी को कहीं नजर न आयी.

हाराधन मुखर्जी कमला को ब्याह लाये थे. पहली पत्नी का बेटा भूतू दस-बारह साल का हो गया. कमला के भी एक लड़का और एक लड़की हो गये. अब कमला की जिद पर उन्हें कलकत्ता में मकान लेना पड़ रहा था. इसी सिलसिले में जब वे मदन बाबू से रसीद लिखवाकर लौट रहे थे. . . कि तेज बारिश शुरू हो गयी. बचने के लिए, दौड़कर वे एक मकान के बरामदे में जा खड़े हुए.

खिड़की से झांकती पुष्पा ने हाराधन को खड़े देखा तो दौड़ी चली आयी और आग्रहपूर्वक भीतर लिवा गयी. भीतर की स्थिति देखकर हाराधन स्तब्ध रह गये.

पुष्पा ने बताया कि किस तरह नैपाल ने उसकी जिंदगी को गर्क करके रख दिया. . .और जो गांव के लोग बुरे बखत पर मुंह मोड़ लेते थे. . . अब किस तरह रात बिताने यहां चले आते हैं.

हाराधन ने लौटने की जिद की, तो पुष्पा ने पूछा, "आप क्या आज ही गांव लौट रहे हैं?"

"हां, क्यों?"

"मेरा एक काम कर दीजिएगा! मैंने मां के लिए बीस रुपये निकालकर रखे हैं. . . मां तक पहुंचा दीजिएगा. मां को जरूरत होगी! जब जितना हो पाता है, मैं भेजती रहती हूं."

"किसके हाथ भेजती हो?" हाराधन हैरान थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किसी भी आते-जाते के साथ भेज देती हूं! ज्यादातर तो नैपाल ही ले जाता है!" नोटों को तश्तरी के नीचे दबाकर वह चाय का पानी रखने के लिए जा ही रही थी कि हाराधन ने उसे वापस बुलाया, "ये रुपये तुम रख लो!"

पुष्पा कुछ कहती, तभी अनंगदत्त ने कमरे में प्रवेश किया. पुष्पा ने सहज भाव से चकित होते हुए हाराधन से पूछा, "क्यों?"

"क्योंकि अब इसकी जरूरत ही नहीं है. तुम्हारी मां तो कब की नहीं रही!"

हाराधन तो चले गये पर पुष्पा देर तक मूर्ति बनी खड़ी रही.

अनंग अजीब उलझन में फंसे थे. बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही थी और भीतर पुष्पा रोये चले जा रही थी. साहस करके आहिस्ते से अनंग पुष्पा के करीब पहुंचे, "मेरे लिए आज तुम्हें कुछ भी नहीं करना होगा. तुम बस, बैठी रहो. रोना मत. आंसू मुझे नहीं भाते पुष्पा!',

अनंग ने सिगरेट जलाकर गिलास भर लिया और पुष्पा उदास-मना-सी बैठी अपनी मां के बारे में सोचती रही.

कई दिनों बाद हाराधन से मिलना हुआ तो उन्होंने साफ-साफ कह दिया, "देखो पुष्पा, मैं समाज में रहता हूं. तुम ठहरी नितांत असामाजिक. तुमसे बात करने में मेरी इज्जत खाक में मिल जाएगी.

पुष्पा फिर पत्थर के बुत की तरह खड़ी रह गयी. हाराधन कलकत्ता आकर रहने लगे थे. जिस रोज यह घटना हुई भूतू भी उनके साथ था. भूतू, हाराधन की पहली पत्नी का लड़का, जिसे पुष्पा ने छोटे-से बच्चे के रूप में बरसों पहले देखा था. 'कित्ता बड़ा हो गया!' पुष्पा ने सोचा...

फिर यही भूतू एक दिन जब क्रिकेट खेलते हुए बॉल लेने पुष्पा की गली में जा पहुंचा तो उसे पुष्पा के यहां से घुंघरुओं की रुन-झुन सुनायी पड़ी. बस, फिर क्या था! परदे के नीचे से झांक कर देखता रहा. झरना नृत्य का अभ्यास कर रही थी. पुष्पा के बाहर आने की आहट सुनी तो भूतू सर पर पैर रखकर भागा.

* *

अजीत सिंह ने दुर्गा को लेकर जो तुफैल मचायी उसे देखकर सारी लड़कियां भागकर पुष्पा के कमरे में ही चली आयीं. अनंग न होता तो जाने क्या हो जाता! अजीत को समझा-बुझाकर अनंग और पुष्पा लौट आये. बातचीत के बीच यह खयाल ही न रहा कि दरवाजा खुला ही रह गया है. अचानक नैपाल बांड्ज्या कमरे में घुस आये. अनंग को देख कुछ सकपकाये हुए बोले, "... मैं गलत समय पर चला गया. पुष्पा, मैं ज्यादा देर नहीं रुकूंगा. तेरी मां ने बीस रुपये मंगाये थे... देगी?"

"मांऽऽ!" पुष्पा के विस्मय की कोई सीमा न थी. वह अवाक-सी पहले नैपाल की ओर देखती रही फिर अनंग की ओर देखने लगी.

बाहर ले जाकर अनंग ने नैपाल को समझाया कि पुष्पा ही नहीं, अब सभी लोग असलियत जान गये हैं. फिर जबर्दस्ती तीस रुपये उसके हाथ में रख दिये, "अरे जनाब, रख लीजिए, इतनी दूर से आये हैं आप!"

* *

हाराधन भूतू के बारे में सोच रहे थे. दूसरी मां के रूप में कमला उसे जिस तरह पाल रही थी वह हाराधन के हृदय को सहन नहीं हो पाता था... पर करते भी क्या!

तालाब के पक्के घाट पर भूतू को गुमसुम बैठा देख देवी के मंदिर से पूजा करके लौटी पुष्पा ने उसे प्रसाद की मिठाई खाने को दी. भूतू से नयी मां की करतूत सुनकर तो उसका कलेजा ही मुंह को आ गया... और फिर बच्चे के लिए ललकती हुई बांझ पुष्पा भूतू को अपने से कसकर चिपकाए मन ही-मन धन्य हो उठी.

इधर हाराधन बाबू के भूतू को नई किताब क्या लाकर दी, कमला का मूड ही चौपट हो गया. पाटू, लक्ष्मी और मब्बू सभी को बेबात ही पीटने लगी. कमला का यह रूप देखकर भूतू डर गया. मौका पाकर दबे पांव वह बाहर निकल आया.

पुष्पा घर के कामों में व्यस्त थी. भूतू को दरवाजे के परदे से झांकते देखा तो हंसती हुई उसकी तरफ बढ़ी, "आओ आओ!" कहते हुए उसका हाथ पकड़ अंदर ले आयी.

बिस्कुट खाते हुए भूतू प्रश्नभरी निगाहों से पुष्पा की ओर देखता रहा. पुष्पा ने, जाते-जाते भूतू से रोज एक बार आने का वादा करा लिया.

* *

शाम हो आयी तो पुष्पा की घबराहट बढ़ गयी, "भूतू, अब तुम घर जाओ!" उसने भूतू को समझाते हुए कहा. भूतू रुकना चाहता था... पर पुष्पा ने उसे जबरन भेज ही दिया.

अब पुष्पा खिड़की पर खड़ी अनंग का इंतजार कर रही थी.

काफी देर बाद अनंग पहुंचे, "तुम मेरा इंतजार कर रही थीं?"

"इतनी देर क्यों हो गयी?" पुष्पा ने प्रतिप्रश्न जड़ दिया.

"जितना विरह सहोगी, मिलन उतना ही मधुर होगा. कहते हुए अनंग पलंग पर जा लेटे.

अनंग को अपने मित्र सुधांशु की बातें याद आ रही थीं... कि जब वह लौटता है तो उसकी पत्नी उसका इंतजार करती मिलती है. दुलराते हुए उसे पूरी-सब्जी खिलाती है... पर अपनी किस्मत कितनी विपरीत है! अति मॉडर्न पत्नी को लेकर रचे गये संसार में अनंग की जिंदगी खाक हो चली है. आज भी जब वे घर पहुंचे तो पत्नी सैलून में बाल सेट करवाने गयी हुई थी और फिर फोन आ गया था कि रात को पार्टी से लौटने में देर हो जायेगी.

"एक चीज खिला सकती हो?" अनंग ने पूछा तो पुष्पा ने साग्रह पूछा, "क्या चीज?"

"गरम-गरम पूरी और आलू की सब्जी." अनंग ने उत्साह से बताया.

पुष्पा ने जल्दी-जल्दी पूरी और सब्जी बना डाली. अनंग ने तृप्त होकर खाया और बोले, "अच्छा तो अब मैं चलूं!"

इतने दिनों के साहचर्य से पुष्पा और अनंग के बीच मधुर प्यार-सा पनपने लगा है.

* *

अगले दिन शाम होते ही इधर तो भूतू पुष्पा के यहां जाने को छटपटा रहा था उधर पुष्पा के इंतजार में बरामदे में खड़ी थी. दाहिनी गली की तरफ देखती पुष्पा रह-रहकर सोच रही थी कि अनंग अभी तक नहीं आये... भूतू के लिए समोसे लायेंगे या नहीं... और बायीं गली की तरफ देखती तो भूतू के मकान तक जाकर उसके नजर ठहर जातीं.

कुछ देर बाद अनंद समोसे का दोना लेकर हाजिर हो गये, "लो पुष्पा, समोसे के साथ गजा भी लाया हूं... तुम्हारा ग्रेटा किधर है?"

"मेरा मजाक उड़ा रहे हैं न आप?" पुष्पा संजीदा हो आई थी.

"मजाक मैं नहीं तुम कर रही हो पुष्पा! एक बुद्धू-सा लड़का हमारी जिंदगी चौपट कर गया." अनंग अब बोर हो उठे. थे... पर पुष्पा का ध्यान भूतू के घर की ओर ही लगा था.

* *

अनंग को कोई खबर तो थी नहीं. वे रोज की तरह दोना लेकर दरवाजे पर जा पहुंचे. कई बार आवाज लगायी और दस्तक दी पर पुष्पा ने नहीं खोला तो नहीं ही खोला, "आप अपनी पत्नी के पास लौट जाइए अनंग बाबू!"

अनंग बाबू ने फिर एक बार पुकारा... पर पुष्पा की ओर से कोई जबाब न मिला. नीचे उतरकर अनंग ने दोना सड़क पर फेंक दिया. कुत्तों ने झपटकर दावत उड़ानी शुरू कर दी.

भूतू जब पुष्पा के यहां पहुंचा तो वह कहीं गयी थी. एक-एक कमरा देखते हुए वह झरना के यहां पहुंचा तो झरना तैयार हो रही थी. उसने भूतू को पकड़कर सजा ही डाला. छोटी-छोटी मूंछें भी बना दीं, "आओ तुम्हें भी सजा दूं छोटे नागर!"

पुष्पा झरना के कमरे में आयी तो भूतू को देख गंभीर हो गयी, "यह सब क्या बंदर बना हुआ है!... और झरना तू किसी शरीफ आदमी के बेटे को क्यों असभ्य बनाने पर उतारू है?" फिर वह भूतू को अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमरे में ले गयी और धो-पोंछ कर उसे ठीक किया, "अब कभी उन कमरों में कदम मत रखना!"

मूतू को लगा कि नयी मां की अपेक्षा पुष्पा की यह डांट कितनी मधुर है! नयी मां तो बिल्कुल राक्षसी है. . . और पुष्पा. . . वह देवी है देवी!

लखाई पूजा की मिट्टी मांग रहा था और लड़कियां उसे मिट्टी देने को राजी नहीं थीं. अंत में पुष्पा ने कहा, "उफ, क्या कर रही हो तुम लोग! ले लो भैया, मेरे दरवाजे से खोद लो!"

मूतू हाथ में हरसिंगार का पौधा लिए पीछे ही खड़ा था उसने लखाई से पूछा, "तुम इस मिट्टी का क्या करोगे?"

"इसके बिना मां दुर्गा की मूर्ति नहीं गढ़ी जायेगी, भैया!" लखाई ने बताया और चला गया.

दरवाजे के पास मूतू हरसिंगार का पौधा लगा रहा था. पुष्पा ने पूछा, "यह क्या कर रहे हो तुम?"

"जब यह खूब बड़ा हो जायेगा तो खूब फूल खिलेंगे इस पर. . . फिर एक चिड़िया का घोंसला बनाऊंगा. शारदीया की आखिरी रात को चिड़िया उस पर अंडे रख जायेगी. . . !" भोलेपन से मूतू ने बताया.

पुष्पा चकित थी, "पर यह सब तुम्हें बताया किसने?"

"हमारे कातिकपुर के नंदू को नहीं जानतीं? मेरा दोस्त. . ."

पुष्पा अनमनी हो आयी. उसे याद हो आया वह दिन जब वह कातिकपुर के तालाब पर आत्महत्या के लिए जा पहुंची थी पर नेपाल ने उसे बचा लिया था. उस के बाद से तो वह मौत ही तो जी रही है. . .

मूतू उठकर जाने लगा, "मेरे हरसिंगार पर पानी जरूर डाल देना!"

"अच्छा डाल दूंगी!" पुष्पा उदास आंखों से उसे जाते हुए देखती रही. . . फिर वह पौधे को सींचने लगी.

* *

"अरे आप!" पुष्पा चौंक उठी.

"हां पुष्पा, मैं सिर्फ वजह जानने आया हूं. . . आखिर क्यों तुम मुझसे मिलना नहीं चाहतीं?" अनंग ने गंभीर होकर पूछा.

"आपकी पत्नी नहीं चाहती कि आप यहां आयें."

"दुनिया की कोई पत्नी नहीं चाहती. . ."

"आप यह क्यों भूलते हैं कि वह आपकी पत्नी है, आपका घर है. . . परिवार है. . . हम जैसी लड़कियां आपको सुख नहीं दे सकतीं."

पुष्पा कुछ कहती, इससे पहले ही मूतू कमरे में चला आया, "मेरे हरसिंगार को पानी दिया था. . . ?"

"हां बेटे, दिया था!" पुष्पा की ममता उमड़ आयी.

अनंग के होठों पर एक उदासी छा गयी, "समझ गया. पुष्पा, मेरे आने से हरसिंगार जो मुझे जायेगा. . ."

"नहीं, नहीं, ऐसा न करिए!" पुष्पा संजीदा हो आयी . .

अनंग मूतू के लिए समोसा लाने चले गये और पुष्पा को कुछ अवांछित सवालों के जवाब देने पड़े. मूतू पूछ रहा था, "वो तुम्हारे क्या लगते हैं. . . ?" और पुष्पा सोचती रही. . . फिर बोली, "कोई नहीं." और भीतर ही भीतर सिसक पड़ी.

अनंग ने मूतू को समोसे, गिजा और संदेश लाकर दिये, "जा रहा हूं मूतू बाबा! जाने से पहले तुम्हें आशीष दिये जाता हूं कि तुम्हारे हरसिंगार में ढेर सारे फूल खिलें. . ." और वे चले गये.

पुष्पा की आंखों से आंसू बह चले. . .

* *

मूतू बुखार से तप रहा था और कमला उसकी ओर से लापरवाह थी. हाराधन ने होमियोपैथिक की दवा लाकर दी पर कोई असर न हुआ.

दो दिन तक मूतू नहीं पहुंचा तो पुष्पा को चिंता हुई. वह चुपके-से मूतू के घर की बाहरी खिड़की से मूतू को देखती रही. कमला का व्यवहार देखकर तो उसे मूतू के प्रति और प्यार उमड़ आया.

"पुष्पा,
हालांकि तुम्हारे घर के दरवाजे मेरे लिए हमेशा के लिए बंद हो चुके हैं. . .फिर भी तुम्हारे रुपये भेज रहा हूं. उम्मीद है, तुम सुखी होगी. प्यार!
तुम्हारा ही,
अनंगदत्त"

अनंग के सेक्रेटरी बंकिम खत लेकर आये थे. पुष्पा ने उनसे कहा कि अनंग से मिलने को कह दें. . .और खत अपने सीने से लगा लिया.

अनंग आये तो पुष्पा ने मूतू का सारा हाल बता दिया. अनंग ने डा. घोष से इलाज करवा देने का वादा करते हुए एक कप चाय पुष्पा के हाथ की बनी पीने का आग्रह किया. चाय पिलाते हुए पुष्पा ने आग्रह किया कि डाक्टर घोष से इलाज तो करवा दिया जाये पर मूतू के मां-बाप को यह पता न चले कि इलाज करवाया किसने है.

. . .और उस रोज जब हाराधन बाबू कमला के लिए कीमती साड़ी लेकर लौटे तो यह पहेली भी हल हो ही गयी. डाक्टर घोष का दवाखाना करीब न होता तो राज राज ही रह जाता.

मूतू की दवा के लिए डा. घोष का इंतजाम चुपके-से पुष्पा ने किया है, यह हाराधन को उसी रोज पता लगा. हुआ यह कि डा. घोष और पुष्पा की बातचीत अनायास ही उनके कानों में पड़ गयी. फिर लौटती हुई पुष्पा नजर आयी तो हाराधन आवाज देते हुए उसके पीछे हो लिए. पहले तो पुष्पा अनसुनी करती रही. . .पर हारकर रुक ही गयी.

"पुष्पी, तूने मेरे मूतू को बचा लिया. तेरा यह अहसान मैं कभी नहीं भूलूंगा. . .बहन!" हाराधन भावुक हो उठे थे. कमला के लिए लायी गयी साड़ी उसे देते हुए बोले, "भैयादूज के दिन इस अभागे भाई को याद करके पहन लेना." फिर वे नहीं रुके. पुष्पा ने साड़ी को सीने से लगा लिया.

पुष्पा ने मूतू को देखा तो गले से लगा लिया. जाते-जाते ताबीज बांधा तो मूतू खुश-खुश घर लौट गया. पर कमला को वह ताबीज क्यों रुचता! उसने ताबीज उतारकर नाकू की मां के हाथ वापस पुष्पा के पास भिजवा दिया. इधर मूतू बेचैन था तो उधर पुष्पा. मौका पाकर एक दिन फिर मूतू पुष्पा के यहां जा पहुंचा और खबर दी कि दो दिन बाद सब लोग कातिकपुर वापस जा रहे हैं. पुष्पा को काटो तो खून नहीं.

दोनों देर तक एक-दूसरे के प्रेम में भीगते खड़े रहे. फिर वह दिन भी आ गया जब सचमुच हाराधन बाबू पूरे परिवार के साथ लौट ही गये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

टैम बदल गया

दिनेश त्यागी

अपने ट्यूबवैल पर खड़ा-खड़ा वह मटरू की लड़की को घास की गठरी और खुरपा लिये अपनी ईख में घुसता देखता रहा. जब उसे यकीन हो गया कि अब वह दीन-दुनिया से बेखबर अपनी भैंस के लिए घास खोद रही होगी तो वह भी चुपचाप ईख में घुसा और उसे दबोचकर जोर जबरदस्ती करने लगा.

पर मटरू की तगड़ी-तंदरूस्त लड़की के आगे उस पचास पार अधेड़ का जोर नहीं चल पाया और वह अपना हाथ भी लड़की के खुरपे से जख्मी करवा बैठा.

वह अपने जख्मी हाथ को दूसरे हाथ से दबाकर खून रोकने की कोशिश में लग गया और लड़की भाग निकली. वह गांव का पुराना जमींदार था. ऐसा उसके साथ पहली बार हुआ था, वरना आज तक किसी चमार-चट्टी की इतनी मजाल कहां हुई थी कि वह उसकी पकड़ से निकलने की कोशिश भी करती.

वह ईख में से निकलकर ट्यूबवैल पर आया और जख्म पर कपड़े की एक गीली पट्टी बांधकर घर की तरफ चल दिया. अभी वह गांव के मुहाने पर बसी चमारों की पट्टी पर पहुंचा ही था कि उसे मटरू की बहू अपने सूअर चराती मिल गयी. वह उसी की तरफ बढ़ गया. पास जाते ही उसे दिखाते हुए बोला, "देख री, आज तेरी लौंडिया मेरे चक में घास खोद रई थी. मैंन्ने मने करा तो उसने मेरे हाथ मैं खुरपा मार दिया. अपनी औकात भूलते जा रये दीखें चमट्टे भी. लौंडिया कू समझा दिये अपनी औकात में रये करै. ना तो पूरी पट्टी गांव सै खदेड़ बाहर करूंगा."

मटरू की बहू हंसते हुए बोली, "टैम बदल गया चौधरी. . . तुम जैसों ने हमारी नसल भी बदल दी. जब मैं ब्याहली आयी थी और तू मुझे घसीट कै ईख में ले गया तब बात और थी. चौधरी, यो लौंडिया खालिस तेरी नसल की है. तेरी ईख की ई पैदाइश. . .उसे चमारी न समझिए. ☐

बंकिम बाबू लिफाफा लेकर आये तो पुष्पा ने वापस करवा दिया, "अब मेरे लिए रुपयों की जरूरत खत्म हो गयी है."

**

दिन, महीनों और सालों के अंतराल को पार करते हुए पूरे तीस साल गुजर गये. भूतू अब कलकत्ता कारपोरेशन में डाक्टर बन गया है. हाराधान बाबू नहीं रहे. कमला भी चल बसीं. . .और विवाह के बाद भूतू पिता भी बन गया. भूतू जिम्मेदार भाइयों की तरह दोनों भाइयों को पढ़ा रहा है. . .पर एक चीज है जिसे वह खो बैठा है. . .जहां-तहां कलकत्ते की बस्तियों में खोजता रहता है. . . और वह है—पुष्पा.

उधर भूतू के जाते ही पुष्पा ने अपनी जिंदगी की राह बदल डाली. वह घर-घर बरतन मांजने का काम करती रही. . .फिर एक होस्टल में आकर काम करने लगी. यह जगह उसे इसलिए पसंद आयी कि गंगा बिल्कुल करीब ही थी और वह जब चाहे स्नान कर सकती थी.

अनंग बाबू ने भतेरी कोशिश कर ली पर वे पुष्पा का पता न लगा सके. . .फिर एक रोज नाटकीय ढंग से उसी होस्टल में मुलाकात हुई तो दोनों एक-दूसरे को देखकर चौंक गये.

अनंग से तो जो मुलाकात हुई सो हुई. . .पर अपने पति धरणी जो मुलाकात हुई तो पुष्पा सन्न रह गयी. हुआ यह कि धरणी वहीं एक किरायेदार विजय के साथ रहता था. धरणी की हालत देख पुष्पा करुणा से भर उठी. बिस्तर से लगी देह. . .आंखों की रौशनी भी जाती रही.

"यह लीजिए, मैं पानी लायी हूं!"

"कौन?" धरणी चौंक गया.

"मैं, यहां की नयी नौकरानी!" पुष्पा ने बताया.

पुष्पा का मन मुद्दतों पहले की स्मृतियों में डूब गया. . .जब धरणी नयी बहू को लेकर आ गया था, "पुष्पा, इसे अपनी सौत नहीं, छोटी बहन समझना. . .

पुष्पा धरणी की पत्नी है, यह बात पुष्पा के सिवा और कोई नहीं जानता था वहां. वह जब तब उसकी सेवा में जा पहुंचती. जिस रोज वह ज्यादा बीमार था. और विजय ने डाक्टर बुलवा लिया था. . . तब पुष्पा ने ही पैसे निकालकर दिये. . .विजय चकित रह गया था. . .कि यह सब क्या है!

**

भूतू पुष्पा की खोज में अपने पुराने मकान गया. . .पुष्पा के उस मकान में भी गया जहां उसने हरसिंगार रोपा था. पर वहां सभी कुछ बदल चुका था. सामने की पान की दूकान के सिवाय. क्योंकि पुष्पा के मकान की जगह अब एक खूबसूरत मकान बना था जो किराये के लिए खाली था. हरसिंगार अब काफी बड़ा हो गया था और फूल खिलाये खड़ा था. भूतू देर तक उसके नीचे खड़ा रहा और पुष्पा की यादों में खो गया. . .और एक दिन वही मकान किराये पर ले लिया.

उधर पुष्पा पर पहाड़ टूट पड़ा. धरणी की मृत्यु हो गयी और पुष्पा का सिंदूर पुंछा देखकर लोग उसके दर्द को समझ ही गये. वह भूतू के साथ उतरवायी तस्वीर और ताबीज को अब तक सीने से लगा प्यार कर लेती थी.

**

भूतू अपने बेटे का इलाज डा. घोष से करवा रहा था. वह डा. घोष के पास पहुंचा तो अनंग बाबू से मुलाकात हो गयी जो अब उम्र के कई कदम आगे बढ़ चुके थे. उन्हीं से पुष्पा का ठिकाना पता लगा तो मिलने की बेचैनी और बढ़ गयी.

अनंग बाबू के साथ जब भूतू पुष्पा के सामने पहुंचा तो वह बर्तनों का ढेर साफ करने के लिए बैठी थी. भूतू और पुष्पा ने एक-दूसरे को देखते ही पहचान लिया. दोनों एक-दूसरे की तरफ बस देखते ही रहे, दोनों की आंखें छलछला उठीं खुशी के आंसुओं से. अनंग वहां खड़े न रह सके बाहर निकल गये.

पुष्पा और भूतू एक-दूसरे को अपनी रामकहानी सुना ही रहे थे कि अनंग दोने में समोसे ले आये. बहुत पुराना दृश्य फिर आंखों के सामने हो आया. . .पर भूतू तो पुष्पा की यह हालत देखकर सिहर उठा था. उसने सोचा था पुष्पा जैसी औरत जीवन के उत्तरार्द्ध में संन्यासिनी बन गयी होगी. . .

"सुनो, तुम्हें जीवन में कुछ नहीं मिला. मैं भी तुम्हें कुछ नहीं दे सकी." पुष्पा अनंग के पैरों पर झुक गयी थी.

"ऐसा मत सोचो पुष्पा. तुमने मुझे ढेर-ढेर दिया है. . .धन-दौलत, औरत और शराब से सुख नहीं मिलता, तुम्हीं ने मुझे बताया था. अब मेरे पास अपना कुछ नहीं है. . .पर लगता है सारी दुनिया मेरी ही है. . ." अनंग भावुक हो उठे थे.

फिर रिक्शा में बैठकर भूतू और पुष्पा जाते हुए जब तक नजर आते रहे. . .अनंग अपलक देखते रहे. . .

लोग अपनी-अपनी देवी-मूर्तियां कंधों पर रखे आ-जा रहे थे. भूतू भी अपनी मां को घर ले जा रहा था.

घर के बाहर पहुंचकर पुष्पा हारसिंगार के पेड़ के नीचे जा खड़ी हुई और देर तक उसके माथे पर फूल झरते रहे. . .टप! टप! टप! ☐

(संपूर्ण उपन्यास नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली से प्रकाशित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानून यानी रिश्तों का खून

आशुतोष सिन्हा

आज के भौतिकवादी युग में रिश्तों की परिभाषाएं और रूपरेखाएं बदल रही हैं. पति-पत्नी के संबंधों का आधार कभी प्रेम होता था. पर आज तो इनका आधार वैवाहिक कानूनों की धाराएं और उपधाराएं रह गयी हैं. प्रस्तुत है इसी समस्या का एक विश्लेषण——

स्त्री पुरूष के बीच जो नाजुक रिश्ता सृष्टि के जन्म से चला आ रहा है उसमें समय-समय पर परिवर्तन तो होते रहे हैं लेकिन यह परिवर्तन आपसी सामंजस्य, अपनी-अपनी वैयक्तिक जिम्मेदारियों के साथ-साथ सामाजिक परिवेश की भावना का सम्मान करते हुए, भविष्य के लिए क्या नैतिक मूल्यों की स्थापना करनी है, को दृष्टिकोण में रखकर ही हुए हैं. लेकिन आज आधुनिक मूल्यों, पुरानी परंपराओं, यांत्रिक होते स्त्री-पुरुष संबंधों, यौन के नये पर्याय, अपनी पहचान बनाने की कोशिश और उसके खो जाने का डर इन संबंधों को नया आयाम दे रहा है.

आपसी रिश्तों की भावना और स्नेह की भाषा अब खोती जा रही है. तर्कों की भाषा का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, तभी तो हमारी संसद कानून बनाकर हमारे रिश्तों की व्याख्या, उनकी सीमाएं तथा जिम्मेदारियां तय करती हैं.

आज हमारे आपसी रिश्तों की व्याख्या अदालतें कर रही हैं और हम मूक दर्शक की तरह कानून के प्रति सम्मान के कर्तव्य से दबे हुए सारे तमाशे देख रहे हैं. अमरीकी कानून-वेत्ता जी. डब्ल्यू. पेटन ने अपनी विधि विज्ञान की पुस्तक में कहा है कि "जब प्यार और स्नेह कमरे के मुख्य द्वार से निकल जाता है तो पिछली खिड़की से कानून का प्रवेश होता है."

यह बात पूरी तरह सत्य है कि आज स्त्री-पुरुष के संबंधों ने जो नया आयाम लिया है, वहां पर एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना, नैतिक मूल्यों के प्रति हमारी आस्था तथा आपसी प्रेम की भावना लुप्त हो गयी है. केवल शारीरिक भूख की संतुष्टि के लिए दोनों करीब आते हैं. शारीरिक सुख भोगते हैं जिसमें भावना का कोई स्थान नहीं होता. ऐसे में मूल्यों और कर्तव्यों की बात ही कहां उठती है.

हमारे दांपत्य जीवन की आधारशिला प्रेम रही है और यदि वहां कानून की आवश्यकता पड़े तो इसका अर्थ यही होगा कि प्रेम ने, भावना ने अपना स्थान खो दिया है.

विशेष रूप से हिंदू कानून में सुधार की बात इसी शताब्दी में शुरू हुई. हिंदू कानून में तलाक, कानूनी तौर पर अलगाव, दांपत्य जीवन का दूसरे पक्ष से अधिकार आदि समस्याओं का जन्म अभी स्वतंत्रता के बाद ही हुआ. इन कानूनों के बनने से कुछ सुधार भी हुए. पुनः विवाह, विधवा विवाह, दहेज संबंधी कानून ने एक सार्थक भूमिका भी निभायी. लेकिन कानून के बीच में आ जाने से स्त्री-पुरुष के संबंधों में प्रेम कम और कानून अधिक महत्वपूर्ण हो गया.

कुछ अच्छे कानून भी बने लेकिन अपनी अव्यावहारिकता के कारण असफल रहे, जैसे शारदा एक्ट.

स्त्री को कानून के माध्यम से संपत्ति में अधिकार मिल गया. कानूनन गुजारा पाने का अधिकार भी मिला लेकिन यदि हम देखें तो पहले भी नैतिक आधार पर स्त्री को ये अधिकार प्राप्त थे, उनका स्वरूप अवश्य अलग था, लेकिन जब कानून का सहारा लिया जाता है तो नैतिकता की भूमिका समाप्त हो जाती है.

अभी हाल में उच्चतम न्यायालय ने 'स्त्री धन' के संबंध में जो निर्णय दिया, वह कोई नयी बात नहीं है. यह कानून तो हिंदू कानून में पहले से ही है.

हिंदू कानून में कानून के प्रकांड पंडित तथा विधिआचार्य संत विज्ञानेश्वर की मीताक्षरा को देखें तो पता चलेगा कि यह कानून पहले भी था. स्त्री धन को कोई भी हाथ नहीं लगाता था.

स्त्री-पुरुष संबंधों में बीच में जितना ही कानून का स्थान बढ़ता जायेगा उतना ही आपसी रिश्तों में तनाव बढ़ेंगे.

यदि प्रश्न हमारे हैं, समस्याएं हमारी हैं तो स्वाभाविक है कि उनके हल व समीकरण भी स्वयं हमें ही खोजने होंगे. कानून की भूमिका सर्जनात्मक न होकर ध्वंसात्मक ही होगी क्योंकि स्त्री-पुरुष का परस्पर जो रिश्ता है वह बहुत ही नाजुक होता है.

यदि हमें पाश्चात्य देशों में व्याप्त मानसिक तनाव को निमंत्रण देना है तो स्त्री-पुरुष के बीच के रिश्तों में कानून का हस्तक्षेप बढ़ने देने में कोई आपत्ति नहीं है लेकिन यदि हमें अपनी संस्कृति की मूल भावना की रक्षा करनी है, मानवीय मूल्य, जो हमारे धर्म, देश व संस्कृति की पूंजी है, की रक्षा करनी है, सामाजिक विकृतियों को बढ़ने से रोकना है तो हमें सामाजिक धरातल पर मानवीय संबंधों को ध्यान में रखकर स्त्री-पुरुष संबंधों के मध्य से कानून का हस्तक्षेप कम करना होगा और आपसी सूझ-बूझ और सामंजस्य से, मन की भाषा से समस्याओं का अध्ययन करके रिश्तों के समीकरण खोजने होंगे. □

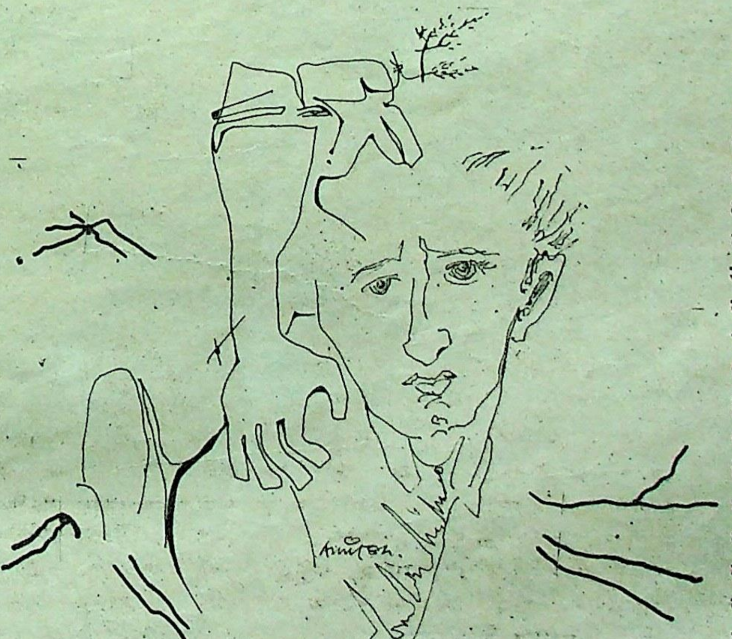

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दमयंती हरण

राजकमल चौधरी

समाज के ठेकेदार कुछ कामों को अपना अधिकार ही समझ बैठते हैं, जैसे असहाय अबला की रक्षा करना, यह बात अलग है कि उनकी यह रक्षा राक्षसी वृत्ति पर ही आधारित होती है. प्रस्तुत है ऐसे ही समाज के ठेकेदारों के बीच फंसी युवती की पीड़ा को उकेरती एक मैथिली कहानी

चाय की दूकान में बैठकर सिगरेट के छल्लों के बीच जैसे पात्रों का सृजन किया जाता है—वैसा मेरा पात्र नहीं है.

मेरा विषय है बसंतगंज स्टेशन से चार कोस पर बसा गांव—रामपुर और पात्र है बंगाल के अकाल, कलकत्ता के दंगे, देश के बंटवारे, कोशी की बाढ़ और चिरसंगी मलेरिया की सतायी—दमयंती, दम्मो अथवा दमिआ.

नयी मामी को तीन लिफाफे और दो जोड़े पोस्टकार्ड भेजने के बाद रामपुर आया था. बी.ए. की परीक्षा समाप्त हो गयी थी. मस्त सांड की तरह पूरे रामपुर में महकता रहता था, पर एक दिन शाम को खुद-ब-खुद पांव रुक गये.

शाम का समय, धार का किनारा, छह-छह करता, घाट पर लगी नाव और नाव में बैठी तेईस-चौबीस वर्ष की एक युवती. सूर्य की अंतिम किरणें वातावरण में सिंदूर बिखेर रही थीं.

"फूल भैया, उस पार चलोगे?" वेदव्यास की मत्स्यगंधा ने मटकते हुए मुझसे प्रश्न किया.

कौन है यह, ऐसा गांव और मर्यादाहीन युवती?

"मैं सौतारों के टीले पर जा रही हूं. दूध लाना है. रास्ता ही देख रही थी कि कोई आये तो उस पार जाऊं. लौटते वक्त अंधेरा हो जायेगा."

"अंधेरे में मेरे साथ लौटने में तुम्हें डर नहीं होगा." धृष्टता के साथ मैंने पूछा.

"पुरुष से मुझे डर नहीं लगता." इतना कह वह रेलगाड़ी में भीख मांगनेवाली लड़कियों की तरह निर्लज्जतापूर्वक हंसने लगी. मेरी जैसे एकबारगी नींद खुल गयी हो. अब एक पल भी यहां ठहरना उचित नहीं होगा, यह सोच उलटे पांव गांव की तरफ भागा.

गांव से थोड़ा हटकर एक शिव मंदिर है, उधर ही विदा हुआ. मंदिर के ओसारे पर ही था कि अंदर से किसी स्त्री का स्वर...

अंदर आया, अंजुलि में ताजे तोड़े हुए कनैल के फूल और बेलपत्र लिये वही नाववाली अप्सरा पूजा कर रही थी. मुझे देखते ही लज्जा, वेदना से कुंठित हो वह पूजागृह से बाहर निकल गयी. इस बार उसे नजदीक से देखा, श्याम वर्ण, पीठ पर झूलते बाल, पतली देह. साथ में लाह की तीन-चार चूड़ियां. कोई गहना नहीं, पर माटी दीप-सा आभामय रूप... मुझे देखते ही उसके भाग जाने का एक और कारण था—मैंने जब मंदिर में प्रवेश किया तो वह विह्वल स्वर में महादेव से प्रार्थना कर रही थी—'हे महादेव, चार दिन से मेरे घर चूल्हा नहीं जला है. आज मुझ पर और मेरी मां पर दया करो हे भगवन!' और

"क्या कहते हैं?"

बहुत निहोरा करने के बाद जयभद्र ने जो बात बतायी, उसका आशय था—पचास वर्ष की उम्र में गांव के स्कूल के शिक्षक रघुनंदन पाठक का स्वर्गवास हुआ, तब रह गयी उनकी प्रौढ़ा पत्नी, कुंआरी कन्या और उस पर से सर पर आठ-नौ सौ रुपये का कर्ज. पाठक जी की पत्नी तो उनके जीवनकाल में ही कटिहार और पूर्णिया की हवा खाने लगी थीं, पर मरने के बाद बेटी रात-बिरात घर से बाहर रहने लगी. यही बेटी है—दम्मो अथवा दमयंती अथवा गिरती हुई शाम को उस पार जाने वाली.

दमयंती पहले बड़ी सुशील लड़की थी. पर मां ने इसे भी चौपट कर दिया. और मां का भी क्या दोष? न जमीन-जायदाद, न खेत-पथार, न गहना-गरिया और न घर परिवार में कोई पुरुष! गांव के किसी व्यक्ति के हृदय में दया-माया का लेशमात्र नहीं. तब पेट कैसे भरा जाये?

जयभद्र की बात से मन और व्यथित हो गया. दमयंती की कथा से हृदय पर दुख का आकाश गिर पड़ा. तीन-चार दिन बाद, कुछ सोच-विचार कर दमयंती के घर की तरफ चला. आंगन में अकेले बैठी दमयंती धूप ताप रही थी.

मुझे देखकर उठी नहीं, उसी मुद्रा में बैठी रही. बात मुझे ही आरंभ करनी पड़ेगी, यह सोचकर पूछा, "मां कहां गयी हैं?" तड़ाक से बिजली की तरह घूमकर दमयंती खड़ी हो गयी. फिर मेरे पास आकर बोली, "मां से क्या काम है? मां रामबाबू के दालान पर गयी हैं, उन्हें निमंत्रण देने के लिए. रात में रामबाबू यहीं भोजन करेंगे, यहीं रात भर रहेंगे. आपको मां से क्या..." फिर मेरी तरफ देख दमयंती चुप हो गयी.

सारी बात मेरी समझ में आ गयी. रामबाबू गांव के जमींदार थे. अब कांग्रेस के वयोवृद्ध नेता हैं. दमयंती-सी असहाय, दुखित, पतिता की रक्षा करना तो उनका धर्म है...

फिर अपनी मैली, फटी साड़ी से आंखों के किनारों को पोंछते हुए दमयंती ने पूछा, "उस दिन मंदिर में आपने मेरी प्रार्थना सुनी थी न फूल भैया? आपको भी क्या महादेव ने हमें भोजन देने के लिए, पैसे देने के लिए भेजा है?"

मैं क्या उत्तर देता? स्तब्ध उसकी तरफ देखता रहा.

वह आगे बोली, "आप लोग पुरुष हैं न. निसहाय नारी जाति पर दया करने में आप लोगों को बड़ा गर्व अनुभव होता है. पर मैं स्त्री नहीं हूं फूल भैया. मैं तो मिट्टी की फूटी हांडी हूं, मुझ पर दया करने

इतना कहने के बाद मुझे देखते ही वह कांप गयी. एक ही बार में अंजुलि के सारे फूल-पत्र शिवलिंग पर डाल, निकल गयी.

एकबारगी मन में बड़ा क्रोध हुआ. पर यह नहीं समझ पाया कि किस पर क्रोध किया जाये? क्यों किया जाये? नतीजतन पूरी रात जगा ही रह गया. नींद नहीं आयी. रह-रहकर स्मरण होता—उस पार चलने का आतुर निमंत्रण, बिखरे बाल, अंजुलि भर कनैल के फूल और 'हे महादेव! भूख-प्यास नहीं सही जाती.'

दूसरे दिन, सुबह, बचपन के दोस्त, जयभद्र के दालान पर चाय और शतरंज का दौर चल रहा था. बड़ी देर के बाद कुएं की तरफ ध्यान गया. वही अपरिचिता पानी भर रही थी. जयभद्र से पूछा, "यह कौन है?"

"कोई हो! तुम्हें क्या मतलब?" अन्यमनस्क भाव से वह बोला, "गांव के लोग विचित्र-विचित्र बातें बताते हैं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जरूरत नहीं. आप जाइए . . ." बोलते-बोलते अचानक दमयंती रसोईघर में चली गयी.

चुपचाप अपने घर लौट आया.

शाम को फिर उसी मंदिर के पास गया. शायद दमयंती से भेंट हो जाये. . फिर अनुमान सही निकला. रास्ते में वह मिल गयी.

वह मुझे देखकर पास आते हुए बोली, "आजकल बड़े शिवभक्त हो गये हैं, फूल बाबू!"

इस अचानक स्नेह प्रदर्शन से बड़ी खुशी हुई. बोला, "भक्ति तो एक तरह का संक्रामक रोग है. आप लोगों की भक्ति देखकर मुझे भी भोलाबाबा से आकर्षण हो गया है."

फिर वही खिल-खिल हंसी, वही अपराजित मुस्कान . . .

कुछ दूर पर गांव के कुछ परिचित लोग आ रहे थे. उनकी तरफ इशारा करके दमयंती ने कहा, "अब आप जाइए, वो लोग देखेंगे तो झूठ-मूठ कुछ की कुछ बात बनायेंगे."

बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये वह मंदिर में चली गयी. मैं भी जयभद्र के घर आ गया. जयभद्र की पत्नी चाय दे गयी और हम दोनों मित्र शतरंज की तैयारी करने लगे तो जयभद्र ने हंसते हुए पूछा, "मित्र, दमयंती बहुत पसंद आ गयी?"

"नहीं! सो क्या?" मैंने लजाते हुए जवाब दिया.

शतरंज की बिसात बिछाते हुए उसने कहा, "रात के अंधेरे में कहीं जाना, कुछ करना पाप नहीं, पर दिन-दहाड़े आप दमिया से बात करेंगे तो लोग अवश्य ही पाप कहेंगे . . ."

इतने में जयभद्र का नौकर कुंजा धानुक दौड़ा आया. हांफते-हांफते उसने कहा, "मालिक, जल्दी चलिए. महादेव स्थान पर बड़ा तमाशा हो गया है. दम्मो दीदी पकड़ी गयी है, मंदिर के पिछवाड़े."

रामबाबू के दरवाजे पर सूई रखने तक की जगह नहीं थी. मंदिर से पकड़े जाने के बाद दमयंती को यहीं लाया गया था. गांव के प्रतिष्ठित व्यक्ति बीच में बैठे हुए थे. सरपंच मंहगू बाबू, प्रधानाध्यापक जादवजी, ग्राम सेवक बोकाई झा, वैद्यराज मतिराम झा, पूरब टोले के संत चौधरी, पश्चिमी टोले के रामजी मिश्र और ऐसे ही बहुत सारे व्यक्ति. छप्पर से लटके पांच-छह लालटेन और उसके नीचे बेहोश-सी पड़ी दमयंती! खून से लथपथ, बाल मुंह पर बिखरे हुए, बंद सी आंख, केहुनी, घुटने और कई जगह से रिसता खून . . .

हम दोनों मित्र जाकर राम बाबू के पास बैठ गये. रामबाबू बोले, "फूल भैया, यह तो सबको मालूम ही है कि दमिया का कैसा चरित्र है, अभी मंदिर के पिछवाड़े में पकड़ी गयी. इतनी मार पड़ी तब भी नहीं बताती कि साथ में कौन पुरुष था."

बोकाई झा बोले, "हुंह यह भी नहीं सोचा कि धर्मस्थान है. धन्य है महारानी." वैद्यराज बोले, "तुम भी खूब बोलते हो, वेश्या के लिए धर्मस्थल ही तो असली कर्मस्थल है." चौधरी जी बोले, "घोर कलयुग आ गया है. तुलसीदास ने ठीक ही लिखा है . . ."

तुलसीदास की चौपाई से धर्मसभा की कार्यवाही शुरू हुई. मुखिया जी बोले, "प्रश्न यह है कि दमिया के बारे में क्या किया जाये. ऐसी पापिष्ठा को गांव में रहने का कोई अधिकार नहीं है, मेरे विचार से . . ." बीच में ही बात को लपकते हुए जयभद्र ने पूछा, "पर दमिआ के साथ था कौन?" मंहगू बाबू बोले, "हां, यह भी विचारणीय है. जब तक यह मालूम नहीं होता तब तक कुछ होना कठिन है."

अंत में यह निश्चित हुआ कि कल दिन में पूरे गांव के लोग जमा होंगे और तब दमयंती के बारे में फैसला लिया जायेगा.

एतद्धि रामायणम्!

रात भर नींद नहीं आयी. चार बजे सुबह ही घाट के किनारे गया. चारों तरफ अंधेरा था. घाट पर नाव थी, उस पर जाकर बैठ गया, सिगरेट जला ही रहा था कि कोई बोला, "उस पार जा रहे हैं, फूल बाबू?"

अचानक डर से देह कांप गयी, पर फिर, वही खिल-खिल हंसी, वही अपराजित मुस्कान, वही सुमधुर स्वर लहरी. यह तो अपरिचिता नहीं चिरपरिचिता है . . .

दो महीने से पटना में हूं. सेक्रेटेरिएट में नौकरी लग गयी है. नया टोला में पच्चीस रुपये में मकान ले रखा है. रोज सोचता हूं कि जयभद्र को चिट्ठी लिख दूंगा कि. . .पर, वेदव्यास की मत्स्यगंधा के जीवन, हंसी और संगीतमय स्वर में सारे काम भूल जाता हूं.

मत्स्यगंधा अब पुष्पगंधा हो गयी है. □

अनुवाद : अजय ब्रह्मात्मज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कई कोठेवालियों से बातचीत करने के बाद इनकी कथाओं का दूसरा पक्ष जानने-सुनने के लिए मैं स्वाभाविक रूप से उत्कंठित था. अपने वर्षों पहले के कुछेक वेश्या-विलासी मित्रों से मैंने संपर्क स्थापित किया.

एक पुराने घाघ मित्र बोले, "तुम भी यार, किनकी इस्टोरियों के फेर में पड़े हो. ये लोग खाली एक्टिंग ही नहीं करतीं, ऐक्टिंग का बाप भी करती हैं. और फिर भी सच्ची मानो, इनकी अब वैसी आमदनी नहीं रही जैसी पहले थी. अरे अब तो हमारे तुम्हारे जमाने की नामी रंडियों के यहां भी वो बात नहीं रही, उनके यहां भी नयी लौंडियों में वो यहां लाकर ससुरी लौंडिया पर भी हाथ साफ कर दिया. उनके एक-दो बच्चे मां से थे और एक इससे भी हो गया. मां-बेटी में झगड़ा करा दिया और दोनों को ऐसा काबू में रखा कि न बुढ़िया ही इनके पंजे से छूट पायी और न न यह. अब साले पैसेवाले बनते हैं. यह तो हाल हैं जमाने के."

मैंने पूछा, "फिर उस लड़की को पढ़ाया?"

"हां, पढ़ाया तो जरूर, अब तो मास्टरनी है. न अपनी मां से मेल-जोल रखती है और न इनसे. मगर ये उनकी जान सांसत में किये रहते हैं. मेरा उस औरत के यहां आना-जाना है. इन्हीं वकील साहब के कारण मेल-जोल हमारा भया रहा, सो हम जानते हैं. तो वकील साहब

"तुम उससे शादी क्यों नहीं कर लेते? तुम्हारी पत्नी तो शायद. . ."

"हां, मर चुकी. मगर भैया, शादी से मामला कुछ और ही हो जाता है. बाल-बच्चे हों तो फिर रिश्तेदारी भी होगी."

"मगर तवायफों से भी तो शरीफों के बच्चे होते हैं?"

"वो दूसरी बात है. उसमें मरद से जो फरज बन पड़ा वो अदा किया, नहीं तो नहीं. उसमें रिश्तेदारी के झगड़े-टंटे तो नहीं खड़े होते, मन से साफ रहता है."

मैं उस स्पष्टवादी मित्र का दृष्टिकोण समझ रहा था. यह औसत दुनियादारी बुद्धि थी.

सीने में जैसे कोई दिल को मला करे!

अमृतलाल नागर

वेश्या उसी को कहा जाता है न जो धन के लिए अपना शरीर बेचती है. पर वेश्या के उस स्वरूप को आप क्या कहेंगे जो अपने बच्चों के लिए ब्रह्मचारिणी के रूप में जी रही हो! प्रस्तुत है नागर जी की बहुचर्चित पुस्तक 'ये कोठेवालियां' का एक अंश—

तमीज, वो बात नहीं. अब तो सबके यहां पेशा होता है. न सालियों में गाने का सहूर रहा है, न नाचने का, और न बात करने का."

मैंने पूछा, "अच्छा दोस्त, इन तवायफों के लुटेरेपन के किस्से तो बहुत सुने, मगर यह बतलाओ कि तुमने कभी इन्हें लूटनेवाले भी देखे हैं?"

"अमा लुटती ही नहीं, तबाह भी हो जाती हैं. अरे लाख रंडियां हों, बुरी हों, सब कुछ हों, पर हैं तो आखिर को औरत ही न. मर्दों से भला जीत सकती हैं! हम तुमको बतलाते हैं, आजकल जो हमारा फेर चल रहा है, उसी की बात सुनाते हैं. फैजाबाद की एक रंडी रही. भली थी, चार पैसे वाली थी. एक वकील साहब से उसका पुराना मेल-जोल रहा. यह कोई दस-बारह बरस पहले की बात सुनाता हूं तुम्हें. वह रंडी बेचारी अपनी लड़की को पढ़ा-लिखा के उसकी शादी करना चाहती थी. वकील साहब ने पढ़ाने-लिखाने की बात कहकर उस लड़की को लखनऊ में लाकर रखा, घसियारी मंडी में मकान लेकर रहे. उनका अक्सर आना-जाना होता था, उसी लड़की के पास रहते थे.

"जरा सोचने की बात है नागर कि वो वकील साहब की लड़की के बराबर थी. उसकी मां से उनकी भी दो औलादें थीं और उससे कहते हैं कि इस्कूल में रपोट कर देंगे कि ये मास्टरनी अच्छे खानदान की नहीं बल्कि रंडी है. मैंने भी कह दिया कि अगर वो बुढ्ढा तीन-पांच करेगा तो उसकी और इनकी फोटू दाखिल करके कहूंगा कि साहब इन्होंने लड़की भगायी थी, यह फोटू उसका सबूत है. ससुरा इसी वजे से बोल नहीं पाता."

मैंने पूछा, "उस औरत के बच्चे कितने बड़े हैं?"

"दो लड़के हैं—एक दस-बारह बरस का होगा, एक आठ-दस बरस का."

"तुम्हारा उस औरत से संबंध है?"

मित्रवर हंसने लगे, बोले, "झूठ कहें कि सच?"

मैंने कहा कि सचाई ही जानना चाहता हूं. वे बोले कि "अभी तक दांव पर नहीं चढ़ी. कहती है ब्याह कर लो. अब ब्याह रंडी साली से कौन करे. हां, बचन मैंने जरूर दिया कि जिंदगी भर का ठेका लेता हूं. जो अपनी बात से निकल जाऊं तो अस्ल बाप का नहीं. वो कहती है कि इससे बदनामी होगी, नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा. बच्चे भी जान जायेंगे कि रंडी की औलाद हैं?"

मैंने पूछा, "उस औरत की क्या उम्र है?"

"अरे यही सत्ताईस-अट्ठाइस बरस की है."

वे उस औरत का जीवन-भर भार उठाने के लिए तैयार थे, पर विवाह की वैधानिकता से बंधना नहीं चाहते थे. उधर वह वेश्या-पुत्री मास्टरनी भी अपनी नयी सामाजिक स्थिति से गिरने के लिए तैयार न थी. वकील साहब पिछले पांच-छह वर्ष से नहीं आते, जब-तब धमकियां भिजवाते रहते हैं.

"तुम कितने बरस से उस औरत के यहां जाते हो?" मैंने पूछा.

"मेरी जान में यही छै-सात बरस भई. माल ले के बेचने गया था. वकील साहब उन दिनों हम पर निहाल थे, सो धीरे-धीरे इनकी जरूरत की सारी चीजें ला देना, इनकी तकलीफ-आराम का खयाल रखना, उन्होंने हमारे जिम्मे कर दिया. वो तो यहां रहते नहीं, आते-जाते रहते थे, सो हमारा आना-जाना बढ़ गया."

"फिर वकील साहब ने मास्टरनी की तरफ से किनाराकशी क्यों कर ली?"

"बुढ़ापे की सफेदी की लाज बचाने के लिए. उस हरामजादे ने मां-बेटी में सौत का रिश्ता बांध दिया. वो पहले तो बड़ी अम्मा को धोखे में रखे रहा, फिर जब प्रेम, इनका पहला लड़का भया, तब बड़ी अम्मा ने बड़ा बावेला मचाया, मगर उस दम वकील साहब से उसकी कोर दबा भयी रही. अपनी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी बहन से उसका जैजाद का मुकद्दमा चलता रहा. बुढ़िया कड़वा घूंट बना के बात को पी गयी. उसमें भी वकील साहब उनकी मनमानी रकम खाय गये. वह कुछ न बोली. इधर यह भी अपने सहारे स्वारथ के लिए वकील साहब को साधे भये, पर ज्योंही तीन-चार बरस में अम्मा मुकद्दमा जीत-जात के पीढ़ी मयीं, त्योंही वकील बुढ़ऊ की गर्दन दबायी जो कुछ कहा-सुना होगा. इनके सुनने में तो यह आया रहा कि अम्मा ने यह धमकी वकील साहब को दी कि तुम्हारी नीची

करतूत शहर भर के रईसों से कहूंगी. वकील साहब और अम्मा का रिश्ता सबको उजागर था. जो कुछ भी होय, राम जाने करने वाले जानें, बाकी पांच-छह बरस से वकील साहब एक धेला खर्चा नहीं देते, कभी-कभी दिन में आ जाते हैं, उनकी एक फोटू इनके साथ पहले बच्चे को गोदी में लिये भर खिंची रही सो उसे ही मांगने आते हैं. वो इन्होंने मेरे पास रखवा दी है, इसलिए मुझसे भी तपते हैं."

"अच्छा, यह बतलाओ दोस्त कि तुम अब तक उस पर कितना खर्च कर चुके हो?" मैंने उनकी बात का पुछल्ला काटकर प्रश्न किया.

पुराने मित्र हैं, हंसने लगे. बोले, "अरे भैया, हः हः हः . .बाकी कोई लालच तो है नहीं हमारा, फिर भी मुसीबत में इनसान-से-इनसान की जो मदद हो जाती है, वही हम भी करते रहते हैं. बाकी एक सौ पचीस तो वह आप कमाती है. बी.ए., बी.टी. है. बड़े कायदे से आप रहती है, अपने बच्चों को रखती है. पास-पड़ोस में, स्कूल में कोई यह नहीं कह सकता कि रंडी की औलाद है. बड़ी सरीफ औरत है."

"अच्छा, तुम्हारे खर्च करने का वह एहसान मानती है?"

"एहसान भी न मानेगी?"

"तुम अपना एहसान जताते जरूर होगे. आखिर हो तो सौदागर ही. . . "

"देखो यार नागर, हम तुमसे झूठ नहीं कहेंगे. हमने सब ऐश कर लिये. ठोकरें खायीं. अपना कारोबार भी घर से अलग करके सम्हाला, सब मजे ले लिए इतनी ही उमर में ब्याही लड़की हमारी मरी. एक-ही-एक लड़की, धमधाम से ब्याह किया और ब्याह के दस दिन बाद बीमार पड़ी, म्यादी बुखार बिगड़ा, सो डेढ़ महीने में चल बसी. उसके साल-सवा साल में वाइफ हमारी हार्ट फेल में चल बसी. फिर लोगों ने बहुत घेरा कि ब्याह कर लो मगर हमने कहा, अब ये सब झंझट नहीं पालेंगे. भाई के बच्चे हैं तो हमारे ही हैं और अब इधर हमसे जो कुछ बन पड़ता है, देते हैं. अब रही स्वारथ की बात, सो भाई साब, दिल तो हमारा उन पर फिदा है और वो भी हमें बहुत मानती हैं. . . "

"तो क्या तुम दोनों आजकल ब्रह्मचारी हो?" मैंने पूछा.

"तुमने तो यार बड़ा बल्लमनोक सवाल पूछा. जान पड़ता है हमारी भी स्टोरी बनाओगे, क्यों?"

"हां, मगर तुम्हारा या किसी का नाम तक नहीं दूंगा जब तक कि तुम उसके लिए राजी न होगे," मैंने उत्तर दिया.

"हां, नाम न लिखना, बाकी बात ये है, साफ-साफ कि वो इस्तरी तो साक्षात ब्रह्मचारनी है. मैं उसके मुकाबले की तपस्या नहीं कर सकता. कहती है कि जी तो हमारा भी चाहता है, पर हमें बच्चों का खयाल है, हां, किसी से शादी हो जाये तो मैं बच्चों को समझा सकूंगी."

मुझे उस अनदेखी स्त्री के प्रति आदर हुआ. सहसा मैंने पूछा, "क्योंजी, वह तुम्हारी मदद क्या समझकर स्वीकार करती है?"

"अरे क्या बोलेंगी बिचारी. इनकी नौकरी तो ढाई-तीन बरस से है. हमारा साथ तो तब से है, जबसे निराधार हो गयी. फिर अपने गहने हमें बेचने को धीरे-धीरे दिये. मैंने अपने पास रख लिये और खर्चा देता रहा. बाद में मैंने कहा, भगवान हमें सब कुछ दे रहा है. उन्होंने कहा कि शादी से पहले आप मुझसे कोई लालच न रखें. मैंने कहा मुझे कोई लालच नहीं, बाकी अपनी तरफ से अब हम तुम्हारा साथ नहीं छोड़ सकते. हां, आप चाहें निकाल सकती हैं.

"उसके बाद हमारे दिल साफ हैं. अब हमारे लिए भैया नागर, सच मानो, उनसे उनके बच्चों से मोह-ममता का रिश्ता हो गया है, जो अब टूट नहीं सकता. हमें कोई लालच न हो, पर वहां जाना अच्छा लगता है. यही क्या कम बड़ा लालच है?"

अपने मित्रों के प्रति मेरे मन में आदर-भाव जागा. अपने पुत्रों के प्रति चिंता करने वाली मास्टरनी वेश्या-पुत्री की कथा सुनकर मुझे लूलू की मां की याद आयी. अबी से लूलू का क्या होगा?" यह प्रश्न मां की दृष्टि से देखिए, कितना गंभीर है.

बच्चों का भविष्य सुधारने के लिए वेश्या भी संयम साध सकती है. मां बनकर उसका व्यक्तित्व अपने उत्तरदायित्व से यों निखर उठा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह क्यों चली गयी...

अल्बर्तो मोराविया

एग्निस इस तरह चुपचाप चले जाने की बजाय मुझे कुछ इशारा भी तो कर सकती थी. मैं हालांकि सर्वगुण संपन्न होने का दावा नहीं करता, पर वह अपनी शिकायत या नाराजगी मुझ पर जाहिर करती तो हम दोनों मिल-बैठकर जरूर उस पर विचार-विमर्श करते, मगर उसने ऐसा नहीं किया, जबकि सच तो यह है कि हमारे दो वर्ष के वैवाहिक जीवन में वह कुछ भी नहीं बोली और अब चुपचाप मेरी गैरहाजिरी का फायदा उठाकर चोरों की तरह खिसक गयी मानो कोई नौकरानी बेहतर काम पाकर बिना बताये गायब हो गयी हो.

वह चली गयी और इस दुर्घटना को छह महीने बीत गये, लेकिन मैं आज तक उसके चले जाने का कारण नहीं समझ पाया.

वह दिन मुझे भुलाये नहीं भूलता.. उस दिन मैं रोज की तरह पास के बाजार से घर की कुछ चीजें खरीदने गया था. वास्तव में सारी खरीदारी मैं स्वयं करता हूं. मुझे सब चीजों की कीमतें मालूम हैं. अपनी जरूरतों की जानकारी है. सौदेबाजी में मुझे बड़ा मजा आता है. तरह-तरह की चीजें देखना एवं मोलभाव करते रहना मुझे पसंद है.

बाजार जाकर एक बार मैं लौट आया, मगर झालर खरीदने मुझे दुबारा जाना पड़ा, क्योंकि झालर मुझे रसोईघर के पर्दों में लगानी थी.

अपनी पसंद के मुताबिक झालर खरीदने के लिए मुझे कई दूकानों के चक्कर लगाने पड़े. अंत में जाकर यह एक छोटी-सी दूकान में मिली. घर पहुंचकर मैं सीधा झालर को पर्दे के रंग से मिलाने के लिए रसोई में घुस गया कि मेरी नजर मेज पर पड़े कलमदान, पेन व कागज पर पड़ी. सच कहूं तो सबसे अधिक मेरा ध्यान बिखरी स्याही पर पड़ा. मैं सोचने लगा—'आखिर मेजपोश पर स्याही का धब्बा लगा ही दिया ! . . . . जाने यह औरत इतनी फूहड़ क्यों है?'

मैंने मेजपोश उठाया और नींबू से उसके दाग छुड़ाने लगा. बड़ी मुश्किल से दाग छूटे. मेज पर मैंने दूसरा मेजपोश बिछा दिया. तभी मुझे सामने पड़े उस कागज के टुकड़े का ध्यान आया. मैंने देखा तो वो मेरे नाम ही लिखा था: 'चौका बर्तन साफ कर दिया है. अपना खाना पका लेना, खाना बनाने का तो तुम्हें खूब अभ्यास है. मैं मां के पास जा रही हूं. मेरी प्रतीक्षा अब मत करना. अलविदा!'

पलभर तो मैं स्तब्ध रह गया. फिर मैंने पत्र को दुबारा पढ़ा. तब मेरी समझ में आया कि एग्निस चली गयी, दो वर्ष के विवाहित जीवन के बाद. अपनी आदत के अनुसार मैंने वह पत्र संभालकर साइड बोर्ड के दराज में रख दिया, जहां मैं रसीदी टिकट व चिट्ठी-पत्री रखा करता हूं. फिर कुर्सी सरकाकर खिड़की के पास बैठ गया. मुझे कुछ नहीं सूझ रहा था. इस स्थिति के लिए मैं बिल्कुल तैयार नहीं था. शायद इसीलिए मुझ विश्वास भी नहीं हो रहा था.

सबसे पहले मैंने अपने अंदर झांका कि मुझमें ऐसी क्या कमी थी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर दंपती चाहता है कि उसका जीवन सहज, सरल और निर्बाध हो. इसके लिए समाज-शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने तरह-तरह के नुस्खे बताये हैं, गोया वे कोई पदार्थ हों, जिनके सेवन से दांपत्य जीवन निर्बाध चलता रह सकता हो, पर इनका असर प्रायः होता नहीं है और इसके बरक्स जो कुछ घट जाता है, उसकी कोई वजह तक भी हम नहीं जान पाते. आखिर क्यों? स्त्री-पुरुष के मिलने और अलग होने के सूत्रों की खोजबीन के लिए आमंत्रण देती इटली के कथाकार की संवेदनशील कहानी—

लेकिन कोई कमी मुझे नजर नहीं आयी. औरतों के पीछे मैं कभी दीवाना नहीं रहा. दरअसल न तो औरतों को मैं समझ पाता हूं और न वो मुझे समझ पाती हैं. . . .और जब से मेरी शादी हुई थी, उस दिन से तो अन्य औरतों का अस्तित्व ही मेरे लिए खत्म हो गया था. कभी-कभी एग्निस खुद ही चुटकियां लेकर मुझे तंग करने पर तुली रहती थी.

"अगर तुम्हें किसी और महिला से प्यार हो जाये तो क्या करोगे?"

"यह हो ही नहीं सकता," मैं जवाब देता, "मैं तो तुम्हें प्यार करता हूं और जीवनभर करता रहूंगा."

मेरे व्यवहार में कहीं कोई कमी नहीं थी.

अब आप स्वयं निर्णय कर लें—हफ्ते में दो बार सिनेमा. दो बार कैफे, जहां वह चाहे आइसक्रीम ले, चाहे काफी, रोजाना एक अखबार और हर महीने दो सचित्र पत्रिकाएं. इसके अलावा जाड़ों में आपेरा और गर्मियों में पिता के घर मेरिनो में अवकाश!

मुझे इस बात से इंकार नहीं कि मुझे बोलना और खुद को बोलते हुए सुनना बड़ा अच्छा लगता है. खासकर उस समय जब मेरा कोई अंतरंग मित्र पास बैठा हो.

मेरी रुचि घरेलू विषयों में है. चीजों के दाम, फर्नीचर की साफ-सफाई, खाना पकाना, कमरा गरम करना आदि विषयों पर भी मुझे बोलना पसंद है. सच पूछिए तो इन पर बोलते-बोलते मैं कभी थकता नहीं. इन बातों में मेरी इतनी अधिक दिलचस्पी है कि कई बार तो मैं उसी विषय के उन्हीं तर्कों को दोहराते हुए पकड़ा जा सकता हूं.

पति लोग प्रायः दफ्तर जाते हैं या दूकान पर या फिर अपनी मित्र-मंडली में बैठकर मौज-मस्ती उड़ाते हैं, मगर मेरे लिए तो दफ्तर, दूकान, मित्र सब कुछ एग्निस ही थी. एक क्षण के लिए मैंने उसे कभी अकेला नहीं छोड़ा. आपको जानकर आश्चर्य होगा कि जब वह कभी खाना पकाने बैठती, तब भी मैं रसोई में उसके पास जा बैठता और सारा खाना खुद पकवा देता. समय-समय पर पाक शास्त्र की सहायता से नये-नये पदार्थों पर भी खूब हाथ आजमाता, लेकिन अफसोस कि एग्निस को खाने-पीने का शौक नहीं था, बल्कि कुछ दिनों से तो उसकी भूख बिलकुल जाती रही. कई बार तो वह खाना छूती तक न थी. एक बार वह मुझसे बोली, "ईश्वर ने आपको पुरुष बनाकर बड़ी गलती की. . . . .आप तो बिल्कुल औरत हैं, औरत और आदर्श गृहणी."

मेरा उस पर इतना प्रबल मोह था कि कभी-कभी मुझे उपहास का पात्र भी बनना पड़ जाता जैसा कि एक बार जब हम कैफे में बैठे थे, उसने धीमे से कोई बात कही, जिसे मैं ठीक से सुन नहीं पाया. अतः जब वह उठकर शौचालय की तरफ जाने लगी तो मैं भी उसके पीछे हो लिया. वह तो सामने खड़े बैरे ने मुझे रोक लिया और कहा कि वह जनाना शौचालय है, मैं उसमें नहीं जा सकता.

जी हां, मुझ जैसा पति दिन में चिराग लेकर ढूंढ़ने से भी नहीं मिल सकता. वह अपनी इच्छा जाहिर करती कि "मुझे फलां-फलां जगह जाना है या फलां-फलां लोगों से मिलना है, जिनमें तुम जरा भी दिलचस्पी नहीं ले पाओगे." पर मैं जवाब देता, "मैं जरूर चलूंगा. चाहे कुछ भी हो और फिर मैं अकेला बैठकर करूंगा भी क्या ?"

तब वह कहती, "मेरी ओर से तो तुम बेशक चलो, मगर कहे देती हूं कि बोर जरूर हो जाओगे."

हम दोनों सचमुच ही अभिन्न थे.

इन सब बातों को सोचते हुए और भी आश्चर्य होता है कि आखिर एग्निस मुझे क्यों छोड़ गयी.

मैं पिताजी की दूकान पर गया. वह हमेशा की तरह बैठे हिसाब लिख रहे थे, हांफते हुए मैंने कहा.

"पिताजी, एग्निस चली गयी."

उन्होंने सिर उठाया. मुझे लगा कि मूंछों के नीचे वह मुस्करा रहे हैं, पर शायद यह मेरा भ्रम था. उन्होंने कहा, "बहुत अफसोस है. . . . लेकिन यह हुआ कैसे?"

मैंने सारी कहानी सुना डाली और अंत में कहा, "मैं बहुत परेशान हूं पिताजी, बस मुझे यही जानने की उत्सुकता है कि वह मुझे छोड़कर क्यों गयी?"

"यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आयी?" उन्होंने पूछा.

"नहीं."

"एल्फेडो, मुझे दुख है. . . .और खेद कि तुम अभी तक नहीं समझे. समझ नहीं आता कि तुम्हें कैसे समझाऊं?"

"आप समझा दीजिए न. . ."

"तुम मेरे बेटे हो, तुम्हारा सारा खर्च मैं उठाता हूं. तुम्हें चाहता भी बहुत हूं. . . परंतु तुम्हारी पत्नी. . . यह तुम्हारा व्यक्तिगत मामला है." उन्होंने लंबी सांस खींचकर कहा.

"यह तो ठीक है, पर वह मुझे छोड़ क्यों गयी?"

उन्होंने अपना सिर हिलाया, "यदि तुम्हारी जगह मैं होता तो इतनी गहराई में जाने की कोशिश कभी न करता. खैर छोड़ो, अब कारण जानकर भी क्या मिलेगा तुम्हें?"

"नहीं, इसका मेरे लिए बड़ा महत्व है, दुनिया में सबसे अधिक."

उस दिन से आज तक मैंने अपनी पत्नी को नहीं देखा. फिर भी उम्मीद है कि मुझ जैसे पति सप्ताह के सातों दिन नहीं मिला करते, वह शायद कभी लौट आये, लेकिन मैं उसे तब तक अपने घर में पांव नहीं रखने दूंगा, जब तक वह यह न बता दे कि वह मुझे छोड़कर क्यों चली गयी थी ! □

अनुवाद : शैलेंद्रप्रताप सिंह

एक अच्छा काम

आपने चाहा और हमने किया

सारिका के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक पाठकों को इतने रोचक, ज्ञानवर्धक लगे कि वे इन्हें संभालकर रखना चाहते हैं. आपकी सुविधा के लिए हमने ये दोनों विशेषांक एक साथ जिल्द करवा लिये हैं, मूल्य वही 8 रुपये. डाक से मंगवाने पर 10 रुपये. मनीआर्डर/पोस्टल आर्डर/ड्राफ्ट कृपया इस पते पर भेजें—प्रसार मैनेजर, टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

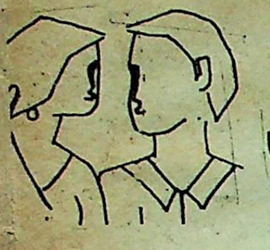

औरत और मर्द

चंचल

ब्रिटेन की एक महिला मित्र ने एक बार छेड़खानी की गरज से पूछा था—"तुम्हारे देश में इतिहास के सारे पात्र जिंदा हैं. किसी भी गांव में, या कहीं भी जाओ वहां, सीता, उर्मिला, सावित्री, राम, कृष्ण, सब घूमते-टहलते मिल जायेंगे, लेकिन द्रौपदी या कैकेयी का नहीं."

उस समय मैंने गोल-मटोल जवाब दे दिया था—"हमारे देश का इतिहास लंबी गुलामी का इतिहास है. सामाजिक परिवर्तन की नये सिरे से व्याख्या ही नहीं हो पायी. विशेषकर औरत-मर्द के रिश्ते को लेकर; थोड़ी-बहुत शुरुआत राजाराम मोहन राय ने की, लेकिन मामला आगे नहीं पढ़ पाया. राजनीतिक आजादी के सामने यह सवाल वहीं का वहीं धरा रह गया. गांधी अगर कुछ दिन और जिंदा रह जाते तो शायद यह सवाल हल हो जाता. इस समाज पर अंग्रेजियत का असर इस कदर छाया कि वह चकाचौंध में फंस गया और समूची संस्कृति ही दोगली हो गयी. गुलामी की भावना जो अंदर तक घर कर गयी थी, अंदर ही रह गयी है. . . आज यह स्थिति ही हमारे देश की नियति बन चुकी है, गर्ज कि **वह या तो गुलाम बनाना पसंद करता है या गुलाम बनना. बराबरी का भी कोई रिश्ता होता है, यह बात उसके दिमाग से ही गायब हो चुकी है!**

औरत और मर्द के रिश्ते पर आजादी के बाद केवल एक व्यक्ति हमला करता है—डा. राम मनोहर लोहिया. उनका विद्रोही तेवर सब कुछ उलटकर नये समाज का सपना देखता है. बहुत हद तक मुक्त यौन-संबंध की वकालत करते हुए डा. लोहिया दलील देते हैं कि एक औरत का मात्र एक पुरुष से संबंध आदर्श संबंध है. लेकिन इसमें आपसी सहमति और समता का बोध जरूरी है. अगर किन्हीं कारणों से यह रिश्ता नहीं चल पाता तो उस औरत को अधिकार है कि वह अपनी इच्छा से दूसरे रिश्ते को जी सके. रिश्ते के टूटने और नये सिरे से बनने में औरत के लिए यौन शुचिता का तर्क गढ़ा जाता है. मजे की बात यह कि यह सवाल केवल महिलाओं के लिए उठाये जाते हैं, पुरुषों के लिए नहीं.

अतः इस पर बहस की नहीं, विद्रोह की जरूरत है. गर्ज यह कि यौन शुचिता के मुद्दे पर भारतीय शास्त्रों में स्पष्ट रूप से लिखा गया है—'औरत हर माह में एक बार पवित्र होकर नये सिरे से उतरती है.'

मगर आज समाज का मिजाज इतना सिकुड़ चुका है कि वह अपने हितों की तरकीबें खोजकर बाकी को खारिज कर देता है. सती सावित्री और द्रौपदी के साथ यही हुआ. औरत, पुरुष की निजी संपत्ति के रूप में उसके अधीन पड़ी रहे, इस बिनाह पर औरत के लिए आदर्श नारी के रूप में सावित्री को प्रस्तुत किया गया, द्रौपदी को नहीं. उसके बारे में महज एक जुमला पेश कर दिया जाता है—'वह पांच पतियों वाली है.' जबकि वह एक साथ पांच पतियों के साथ

'वादाखिलाफी और बलात्कार के अलावा औरत-मर्द के सारे रिश्ते जायज हैं!'—पढ़िए, डा. लोहिया के इस कथन का एक नव मूल्यांकन

सहयोग करती है, और केवल पत्नी के रूप में नहीं, एक दोस्त के भी रूप में. एक आज्ञाकारी के रूप में मात्र आदेश का पालन ही नहीं करती बल्कि उस पर तर्क करती है. कृष्ण के साथ सखा-सखी संबंध का निर्वाह करती है. कर्ण के साथ अंदरूनी रूप से प्यार करती है. भीष्म पितामह को जब वे मृत्युशैया पर पड़े कौरव-पांडवों को नसीहत देते हैं, उनका मुंहतोड़ जवाब देती है. वह दुश्शासन से बदला लेने के लिए प्रतिज्ञा करती है कि चीरहरण करनेवाले की जंघा के खून से ही बाल धोयेगी. यह है द्रौपदी का चरित्र, इसे पुरुष क्यों पसंद करेगा ?

कैकेयी संतति की सत्ता के लिए संस्कारी संस्कृति के खिलाफ खड़ी होती है. पर उसे रामायणकाल की बुरी औरतों में शामिल कर दिया जाता है. लेकिन एक बात हमेशा याद रखनी चाहिए. **धारा के विरुद्ध खड़े होने की तार्किक समझ, इतिहास में दर्ज होती है!**

जिस समाज का मिजाज इतना ज्यादा सड़ा हुआ हो, वह समाज पतन और गुलामी डगर पर ही जा सकता है. . . क्योंकि गुलामी एक मानसिकता है. इससे छुटकारा पाने के लिए जरूरी है कि औरत-मर्द के बीच के रिश्ते तय हो जाने चाहिए.

'वायदा खिलाफी और बलात्कार के अलावा औरत और मर्द के सारे रिश्ते जायज हैं.' यह कहकर डा. लोहिया समाज को गुलामी के कटघरे से निकालकर समता के दर्शन के करीब ले जाने का सपना देखते हैं.

इस रिश्ते में सिर्फ औरत ही आजाद नहीं होती, पुरुष पर भी अंकुश लगता है . . . और इसे माननेवाला समूचा समाज एक-दूसरे के साथ-साथ चलने को बाध्य होता है.

पुरुष की मानसिकता का एक उदाहरण लक्ष्मीबाई की मूर्ति (पूना और झांसी में) पर खुदी हुई लिखावट है. इस पर लिखा हुआ है 'लक्ष्मी बाई की बहादुरी भारतीय नारियों के लिए गौरव है.' यह लिखावट तय करनेवाले को 'समूचे भारत का गौरव' लिखने में शर्म आ रही थी. जबकि भगतसिंह, चंद्रशेखर, शिवाजी की मूर्तियों पर कहीं यह नहीं लिखा गया कि 'ये पुरुष के गौरव हैं.' समझ की यह नादानी जब तक चलती रहेगी, औरत-मर्द का रिश्ता बेमानी और दगाबाजी का रहेगा.

साहित्य में इन रिश्तों पर लंबी बहसें हुईं. जो रचनाकार दिमागी रूप से समता के दर्शन के पक्षधर थे उनके पात्र बराबरी की लड़ाई लड़ते चलते हैं चाहे वह यू. आर. अनंतमूर्ति हों या सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती हों या रघुवीर सहाय अथवा शिवप्रसाद सिंह, इनकी रचनाओं में इस रिश्ते की बारीकियों को समझा गया है. यहां औरत का रिश्ता लेखक से और लेखक के पुरुष पात्र से तर्कों के आधार पर बढ़ता है.

इस रिश्ते को लेकर नयी पीढ़ी में जो खतरा उभरा है वह बहुत हद तक विदेशोन्मुखी है. किस्सा और कहानी में फर्क होता है. . और वह फर्क है 'दृष्टि' का.

एक 'लेखक' अपनी कहानी में लिखता है—'सिर पर पानी का घड़ा रखे, दोनों हाथ ऊपर किये वह कमर लचकाती चली जा रही थी.' परंतु अगर उसके पास 'दृष्टि' होती तो उसकी नजर 'कमर' के बदले उस लंबी यातना पर पहुंचती जहां सैकड़ों साल से औरत पानी ढो रही है और पुरुष काव्यगत सौंदर्य की खोज में कमर पर कलम की नोंक गड़ाये पाठकीय सामग्री देख रहा है. औरत और मर्द के बीच के रिश्ते व्यक्तिगत नहीं, पूरे समाज के हैं. इन्हें गहराई से देखने पर ही अपने सपनों का एक समाज बन सकता है, जहां एक औरत आज़ादी से अपने बारे में फैसला ले सकती हो, चाहे वह जीवनसाथी चुनने का हो या बदलने का. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री-पुरुष के सामने खड़े कड़वे-मीठे सच

विनय विश्वास

'पति-पत्नी में से अगर एक मूर्ख हो तो उनकी खूब निभती है!'.....और किसी ने कहा है—'कंपास यानी परकार की टिकी हुई भुजा स्त्री है और घूमनेवाली भुजा पुरुष. स्त्री जितना ज्यादा झुकेगी, पुरुष उतना ही विस्तृत वृत्त खींच सकेगा!'—ऐसे कथनों के चलते सवाल उठता है कि आखिर किस रसातल को जा पहुंची है हमारी संस्कृति की वह विराट कल्पना, जिसने ईश्वर को भी 'अर्द्धनारीश्वर' माना?—पढ़िए तब से स्थितियों का आकलन करते दो आलेख कि पुरुष खुद हार जाने के बावजूद स्त्री को दांव पर क्यों लगा देता है!

स्त्री-पुरुष संबंधों के उपयुक्त समीकरण की तलाश, समय व स्थिति सापेक्ष तो होती ही है, परिवेश के साथ-साथ गतिशील व परिवर्तनशील भी होती है. लिहाज़ा इन संबंधों का एक सर्वमान्य स्वरूप निर्धारित करना न तो उचित है और न ही सार्थक. देखना यह भी होगा कि इधर-उधर दीख पड़ती आधुनिकता के लगातार ढोल पीटने के बावजूद पुरुष-प्रधान मानसिकता समूचे सामाजिक ढांचे में रच-बस गयी है, जिसका नतीजा समय-समय पर औरत के अस्तित्व पर लगनेवाले सवालिया निशानों के रूप में प्रमाणित होता रहा है. दूसरी तरफ स्त्री के सम्मान की एक समृद्ध परंपरा भी हमारे सामने मौजूद है, जो पुरातन समाज में भी स्त्री को गौरवशाली दर्जा देती रही है. ऋग्वेद की ऋचाओं के रचयिताओं में भी 21 महिला ऋषियों व ब्रह्मवादिनियों ने हिस्सा लिया था और वैदिक काल में पत्नी की उपस्थिति के बिना यज्ञ पूर्ण ही नहीं होते थे. स्त्री ही पुरुष को देवऋण और पितृऋण से मुक्त करानेवाली थी.

सहस्र वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने गर्व के साथ याज्ञवल्क्य का, ब्रह्मज्ञान के शास्त्रार्थ के लिए, आह्वान किया था. कौटिल्य के अर्थशास्त्र में स्त्री-स्वातंत्र्य को ध्यान में रखते हुए यह व्यवस्था दी गयी थी कि उचित आयु में यदि पिता अपनी पुत्री का विवाह नहीं करता है, तो वह उस पर इस संबंध में कड़े प्रतिबंध लगाने का अधिकारी नहीं रहता और गणिका की पुत्री से भी उसकी इच्छा के बिना व्यभिचार नहीं किया जा सकता. अगस्त्य पुराण ने वेश्या से शुभ सगुन कराने का भी उल्लेख किया. इतना ही नहीं, वैदिक काल में तो निःसंतान महिलाओं को 'नियोग प्रथा' द्वारा ऋषियों से श्रेष्ठ संतान उत्पन्न करने की अनुमति और स्वतंत्रता भी रही. पुरुरवा-उर्वशी, नल-दमयंती, दुष्यंत-शकुंतला और सत्यवान-सावित्री के प्रसंगों ने स्त्री-पुरुष संबंधों की सार्थकता के न केवल भिन्न-भिन्न आयाम खोजे, अपितु इन संबंधों की गरिमा को एक मूर्त रूप भी प्रदान किया.

ईसा से 200 वर्ष पूर्व लिखे गये 'काम-सूत्र' में बताया गया है कि विवाह रजोदर्शन से पूर्व भी किया जा सकता है. इतना ही नहीं, स्मृतिकारों ने यहां तक लिखा कि जो पिता अपनी लड़की का दसवें वर्ष में प्रवेश करने से पूर्व विवाह नहीं कर देता है, तो मानो प्रतिमाह वह उसका 'रज' पीता है. याज्ञवल्क्य ने भी यहां तक लिखा है कि जो माता-पिता अपनी लड़की का विवाह रजोदर्शन से पूर्व नहीं करते हैं, वे हर माह एक भ्रूण-हत्या के अपराधी होंगे. ब्रह्म पुराण में तो कन्या का विवाह चार वर्ष की आयु के बाद करने को कहा गया है. संत, बौद्ध व जैन धार्मिक मतों के अनुसार स्त्री; पापों और विषय वासनाओं का मूल है. देवदासियों के रूप में धर्म व ईश्वर के नाम पर बचपन से ही लड़कियों को वेश्या वर्ग में शामिल करने के लिए तैयार किया जाता था. जहां इस तरह की परंपराओं ने पूरी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि निर्मित की हो, वहां अर्द्धनारीश्वर का आदर्श खोखला ही नहीं, संबंधों को लगातार छलनेवाला भी जान पड़ता है.

अपेक्षित प्रत्युत्तर प्राप्त न होने पर खूबसूरत लड़की के चेहरे पर तेजाब फेंक देने जैसी घटनाओं के बीज उपरोक्त मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में आसानी से खोजे और पाये जा सकते हैं. अकारण ही नहीं है कि दहेज प्रथा, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, अनमेल विवाह और वेश्यावृत्ति जैसी प्रक्रियाओं के परिणाम स्त्री को ही भुगतने पड़े हैं. समाज में प्रचलित गालियां और बड़ी-बूढ़ियों द्वारा दिये जानेवाले आशीष स्त्री-पुरुष संबंधों के समीकरण को बखूबी रेखांकित करते हैं. पिता, पति, पुत्र, प्रेमिका, पत्नी, मां, बहन, विधवा, वेश्या आदि गिने-चुने शब्द अब न तो स्त्री के अस्तित्व को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त रह गये हैं और न ही पुरुष की स्थितियों को.

असल में, संबंध शब्दों से नहीं, स्थितियों से तय होते हैं और यही कारण है कि औरत स्वयं को सिर्फ 'स्त्री' के रूप में खोजना चाहे या पुरुष स्वयं को मात्र 'पुरुष' के रूप में, दोनों के हाथ अक्सर निराशा ही लगती है. स्त्री को अब तक या तो 'देवी' के रूप में पूजा गया है, या 'दासी' के रूप में इस्तेमाल किया गया है, उसे 'स्त्री' के रूप में आज तक स्वीकारा नहीं गया. शायद इसीलिए अमृताजी ने कहा है—'अभी साथ कहां देखा है, मर्द ने औरत का? अभी तो उसने दासी देखी है, वेश्या देखी है या देवी देखी है.'

समानता के संबंध और संबंधों की समानता की बातें वहीं सार्थक हो सकती हैं, जहां स्त्री-पुरुष की स्थितियों में फर्क न हो. आंकड़े गवाह हैं कि भारत में स्त्री-शिक्षा स्वतंत्रता पूर्व तक 4, 1952 में 8, 1971 में 18.7 और 1981 में 24.88 प्रतिशत तक ही पहुंच पायी है. यहां की सामाजिक स्थिति को आईना दिखाती प्रतीत होती है अजमेरी गेट, दिल्ली की वह वेश्या, जो 'शायर' तक का मतलब नहीं जानती. यही वजह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में, विशेषकर राजस्थान में अभी हाल तक बहुत-सी गोद की बच्चियों के भी विवाह होते रहे हैं. यकीन नहीं होता कि बूढ़े, बच्चियों से और पिता, पुत्रियों से बलात्कार करने लगे हैं. आज भी 70 वर्ष का बूढ़ा पुत्र-प्राप्ति के उद्देश्य से 16 वर्ष की लड़की को ब्याह कर लाता है. यौन बीमारियों के आंकड़े भी तरक्की कर रहे हैं और हत्याओं-आत्महत्याओं के भी. द्रौपदी का यह सवाल, जो उसने सम्मानित सभा में युधिष्ठिर से पूछा था—"जब खुद को हार चुके तो मुझे दांव पर लगाने का तुम्हें क्या हक था?" आज भी अनुत्तरित है. सभा तब भी खामोश थी और शायद आज भी खामोश है. मां-बाप की संपत्ति में लड़के और लड़कियों को 1955 में बराबरी का हक मिला, जो साफ-साफ बताता है कि इससे पहले कानूनी तौर पर भी स्त्री सिर्फ बच्चे पैदा करने की बिकाऊ मशीन के अलावा कुछ नहीं थी.

प्रेम की सामाजिक संरचना एक ऐसा आधार-बिंदु हो सकता है, जो स्त्री-पुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधों के प्रत्येक स्वरूप में, प्रत्येक स्तर पर, स्वयं को सार्थक कर पाने की संभावनाएं अपने में समेटे है. प्रेम तब तक प्रेम नहीं होता, जब तक उसमें अधिकार की भावना न हो. शायद इसी वजह से जैनेंद्र कुमार ने कहा था, 'पूर्ण देने और पूर्ण लेने में प्रेम है.' यहीं से सवाल पैदा होता है कि 'पूर्ण देने और पूर्ण लेने' की स्थिति में अहम् और उसकी संतुष्टि अंततः कहां है? पूर्णता के क्षण संबंधों में इने-गिने ही होते हैं और इन क्षणों के बीत जाने पर पुरुष फिर 'पुरुष' हो जाता है और स्त्री फिर 'स्त्री'. पूर्णता दोनों के बीच से एकाएक फिसल जाती है. परिणाम यह होता है कि स्त्री को देवी पद की प्रतिष्ठा का लोभ देकर उसकी व्यावहारिक तर्क-बुद्धि को सुलाने के प्रयास शुरू हो जाते हैं और स्त्री अपने 'त्रिया चरित्र' का अधिकतम उपयोग करने की कोशिश करने लगती है. यह अंतहीन जद्दोजहद मां-बेटे, भाई-बहन, प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी और पिता-पुत्री के संबंध-सूत्रों में लगातार गतिशील रहती है, जिसके कारण संबंधों की आधार भूमि यानी स्वाभाविकता किताबी बनकर ही रह जाती है. प्रकरण चाहे सत्यवान सावित्री का हो अथवा विश्वामित्र मेनका का, स्त्री ने ही अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की है और पुरुष ने ही उसे इस श्रेष्ठता का श्रेय बराबर दिया है. ऐसा न होता तो पुरुष, हर आदमी की सफलता के पीछे एक औरत की उपस्थिति को, कदापि रेखांकित न करता. दूसरी ओर स्त्री-पुरुष संबंधों का एक महत्वपूर्ण पहलू शरद जोशी का यह कथन है— 'जिस दिन अकबर ने अनारकली को दीवार में चिनवा दिया था, उस दिन तानसेन ने क्या गाया होगा? तानसेन ने वही गाया होगा, जो अकबर ने गाने के लिए कहा होगा.'

स्त्री-पुरुष संबंधों का स्वरूप स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए कैसे-कैसे द्वार तलाश करने लगा है, इसका अहसास मात्र इसी तथ्य से किया जा सकता है कि एक अमरीकी उद्योगपति, नोबल पुरस्कार विजेता विद्वान पुरुषों का वीर्य एक बैंक में सुरक्षित रखने लगा है, जहां से साक्षात्कार द्वारा चुनी गयी श्रेष्ठ युवतियों को वीर्य दान कर उनसे श्रेष्ठ संतति पाने के प्रयोग शुरू कर दिये गये हैं.

जहां तक सवाल शक्ति और उसके संतुलन का है, महात्मा गांधी ने कहा था—'यदि शक्ति का अर्थ पशुबल से है तो मानना होगा कि पुरुष में यह बल अधिक है. यदि शक्ति का तात्पर्य नैतिक शक्ति से है, सहने की शक्ति से है तो निश्चय ही स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ ठहरती है.' वस्तुतः न तो संबंधों में अधिक लिप्त होने से संबंधों की स्वस्थता बनी रह सकती है और न ही उनसे उदासीन होकर उन्हें अस्वीकार कर देने से. □

प्रेमी-प्रेमिका-संबंधों का सामाजिक संसार

विपिन जैन

प्रेम एक शाश्वत भाव है. सदियों से स्त्री-पुरुष विभिन्न रूपों में एक-दूसरे से प्रेम करते आये हैं. परंतु प्रेमी-प्रेमिका के रूप में समाज की मान्यताओं और धारणाओं से उनका हमेशा टकराव रहा है. प्रेमी युगलों ने जात-पात और धर्म के बंधन तोड़े हैं. आर्थिक असमानता, भौगोलिक सीमा और वर्ग भेद के दायरे लांघे हैं. सामाजिक मर्यादाओं का ढांचा प्रेमियों के विद्रोह से बार-बार चरमराया है. उन्हें सार्वजनिक रूप से दंडित किया जाता रहा है. मगर शमा-परवाने का यह खेल जवान दिनों का जज्बा बना ही रहा. उनके अफसाने बनते ही रहे. कभी कृष्ण को सांवरिया मानकर प्रेम दिवानी मीरा ने जहर का प्याला पी लिया तो कभी वैशाली की नगरवधू अपने देश के दुश्मन अजात शत्रु से प्रेम कर बैठी. रजिया सुलताना, गुलाम हब्शी से प्रेम के कारण सरदारों के राजद्रोह का शिकार बनी तो सलीम, अनारकली के लिए अपने पिता अकबर के सामने मैदाने जंग में जा खड़ा हुआ.

इस तरह समय-समय पर प्रेमी-प्रेमिका संबंधों की अनेक रूप से व्याख्या हुई है. दसियों निष्कर्ष निकाले गये हैं. काव्य, महाकाव्य, कहानियां, उपन्यासों की रचना हुई है. मगर यह प्रेम संबंध है कि आज भी एक रहस्यमयी गुत्थी बना हुआ है. जितना सुलझाने की कोशिश करो यह और उलझ जाती है. उर्दू, फारसी शायरी के लाखों पन्ने इसी संबंध के नग्मों से भरे हुए हैं. गजल जैसी लोकप्रिय विधा का तो जन्म ही प्रेमी-प्रेमिका संवाद को शायरी में ढालने के लिए हुआ था. हिंदी, संस्कृत में भी प्रेम संबंधों पर लिखा गया है. राधा एवं कृष्ण के प्रेम को आधार बनाकर अनेकों ग्रंथों की रचना हुई है. कालिदास ने संस्कृत में प्रकृति के जरिये प्रेम-रहस्यों का मनोरम वर्णन किया है. कबीर ने प्रिय और प्रियतमा से रहस्यवादी दर्शन प्रतिपादित किया.

कबीर ने कहा—ढाई आखर प्रेम का पढ़े तो पंडत होय!

मीरा ने गाया—मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दर्द ना जाने कोय.

जयशंकर प्रसाद ने कहा—इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग झलकता है.

गालिब ने फरमाया—इक आग का दरिया है और डूब के जाना है.

दिनकर ने कहा—कौन कहे यह प्रेम हृदय की बड़ी उलझन है, जो दूर, उसी को चाहता अधिक मन है.

'ताज की छाया' कहानी में अज्ञेय ने लिखा—उसने जाना, जाना नहीं अनुभव किया कि उसका और ज्योति का प्यार इसी में अमर है कि उन दोनों ने इस विराट सौंदर्य को, प्रेम के इस अमर स्मारक को साथ देखा है.

मन्नू मंडारी ने 'यही सच है' में बयान किया—अठारह वर्ष की आयु में किया हुआ प्यार भी भला कुछ होता है. निरा बचपना होता है, महज पागलपन. उसमें आवेश रहता है पर स्थायित्व नहीं, गति रहती है पर गहराई नहीं. जिस वेग से वह आरंभ होता है जरा-सा झटका लगने पर उसी वेग से टूट जाता है. और उसके बाद आहों-सिसकियां का दौर, आत्म-हत्याएं अनेकानेक संकल्प. फिर . . . जैसे ही जीवन का दूसरा आधार मिल जाता है उन सबको भूलने में एक दिन भी नहीं लगता.

प्यार की सामाजिक स्थिति क्या है? इस सवाल पर प्रगतिशील आलोचक **गोपाल कृष्ण कौल** का मत है—'प्रेम की स्वतंत्रता नैसर्गिक है जो सबको मिलनी चाहिए. नर और मादा के रूप में पुरुष और स्त्री का नैसर्गिक आकर्षण आदम के जमाने से है. कई दृष्टियों से मानव समाज पहले की अपेक्षा विकसित हो गया है. फिर भी प्रेम स्वाधीनता को सतर्क दृष्टि से देखता है. स्वाधीनता के अभाव में ही युवक-युवती के प्रेम-संबंध को असाधारण घटना मान लिया जाता है. और वे भी शहादत की मुद्रा में व्यवहार करने लगते हैं. प्रेम के जो विवेकहीन दृष्टांत सामने आते हैं उसमें दोष तरुणाई का नहीं, समाज के पिछड़ेपन का है. अगर उनके प्रेम को सामाजिक सुरक्षा मिले तो उनके प्रेम की परिणति दुखद न होकर सुखद हो सकती है. यह समस्या प्रेम की स्वाधीनता को सामाजिक सुरक्षा देने और प्रेमियों को सामाजिक न्याय दिलाने की है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

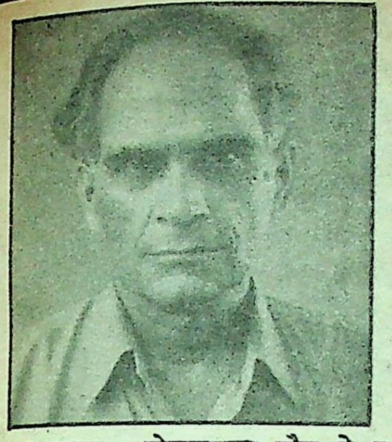

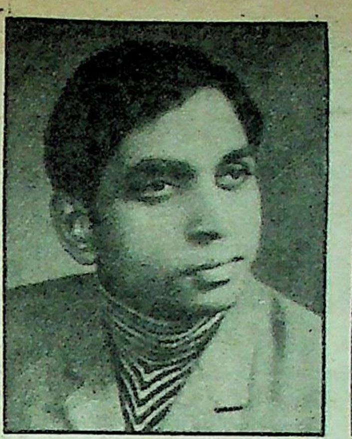

● क्रमशः—गोपालकृष्ण कौल, से. रा. यात्री, अशोक, निर्मला गर्ग

नयी पीढ़ी भी मानसिक पिछड़ेपन को दूर नहीं करती. प्रेम को मनबहलाव का चलतू साधन मानकर उसके प्रति निष्ठावान नहीं रहती. नवधनाढ्य प्रेम के बहाने ऐयाशी करते हैं. इस किस्म की पीढ़ी प्रेम-संबंध को अपराध की शकल देकर 'चोरकृत्य' में बदल देती है. दोस्ती करना एक मानवीय अधिकार है जो सबको मिलना चाहिए. समाज के वे लोग जो पुराने सामंती नैतिक बंधनों की बात करते हैं, नयी पीढ़ी को प्रेम की आजादी नहीं देते, लेकिन घरों के अंधेरे कोने का व्यभिचार सहन कर लेते हैं. नयी पीढ़ी को नये मूल्यों के लिए प्रेम की स्वाधीनता के लिए लड़ना होगा. जो दकियानूसी लोग पुरानी नैतिकता की कसौटी पर प्रेम संबंधों को गलत मानते हैं वे समाज के मानसिक और नैतिक विकास में बाधा डालते हैं.'

कथाकार **से. रा. यात्री** इस संबंध को सामाजिक संरचना के आधार पर परखते हैं. उनका कहना है—'मेरी समझ में प्रेम कोई वायवी चीज नहीं है. यह शुद्ध रूप से दैहिक है. शरीर से अलग कुछ नहीं होता है. समस्त रचना कर्म उष्मा की उपज है. रचना के क्षण कैसे मनुष्य अथवा मानवेतर प्राणियों में अनजाने उत्पन्न होते हैं उसे कोई विश्लेषित नहीं कर पाता. आम को कौन बतला जाता है कि अब बसंत आ रहा है और मंजरी से लद जाओ. हर साल वही दिन होते हैं. हेमंत के पतझर के बाद वृक्षों पर नये पत्ते आ जाते हैं. इसी प्रकार कोई किसी से प्रेम करने को नहीं कहता. प्रेम का अंकुर स्वतः फूट उठता है. प्रेम रचनाधर्म है. युवक-युवतियों की उष्मा उन्हें परस्पर आकर्षित करती है. मैंने इसे किसी युग में खास बदलते नहीं पाया. बाहरी परिवेश और व्यवस्था इसे बुरा-भला, ग्राह्य-अग्राह्य मानती रहे, प्रेम की प्रकृति में कोई अंतर आनेवाला नहीं है. जीवन के बसंत में यह परवान चढ़ता है. जीवन की धूप और लू-लपट इसे पुष्ट करती है. वही इसका चरमक्षण होता है और प्रेम रचनाधर्मी बन जाता है... और इसका प्रतिफलन पूर्ण काम कहा जा सकता है. सारा कुछ इतना सहज और नैसर्गिक है कि इसे धारणाओं और अवधारणाओं की बेड़ियों में नहीं जकड़ा जा सकता.'

युवा उद्यमी **अशोक** प्रेम संबंधों को आधुनिक स्तर पर आंकने का आग्रह करते हुए कहते हैं—'भौतिक संस्कृति के हिसाब से हम चाहे जितना आगे बढ़ गये हों मानसिक रूप से अपेक्षाकृत पीछे हैं. एक सांस्कृतिक पिछड़ाव हमारे समाज में है. एक ओर तो हम प्रगतिशील समाज की बातें करते हैं दूसरी ओर नये मूल्यों को अपनाने से कतराते हैं. अब उच्च शिक्षा के वातावरण में पढ़ते हुए लड़के-लड़कियां इस बात को मानकर चलते हैं कि प्रेम संबंधों के बावजूद उन्हें अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता रहेगी. यों प्रेम का प्रारंभ किसी न किसी तरह भावनात्मक रूप से ही होता है. बाह्य आकर्षण ही आजकल के कथित प्रेम का आधार है. जो युवक-युवती अपने कर्त्तव्यबोध के प्रति सजग हैं वे प्रेम संबंधों के मुकाबले कर्तव्यों, दायित्वों को अधिक महत्व देते हैं. वैसे तो हर व्यक्ति के साफ्ट कार्नर में किसी न किसी की तस्वीर रहती ही है. हम दूसरे की बहन-बेटी के विजातीय प्रेम विवाह की तो प्रशंसा करते हैं, परंतु अपने लिए ऐसा नहीं सोच सकते. युवकों के लिए हमारे मानदंड अलग हैं, युवतियों के लिए अलग. हम प्रेम और सेक्स संबंधों में कहीं आधुनिक बनने का भी ढोंग करते हैं और अपनी पत्नी के विवाहपूर्व संबंधों को भी स्वीकार नहीं कर पाते. लैला-मजनू आदि किस्सों की त्रासदी सिर्फ पढ़ने में ही अच्छी लगती है, व्यवहार में मूर्खता ही नजर आती है.'

युवा कवियत्री **निर्मला गर्ग** प्रेम को ऐसा अहसास मानती हैं जो कुछ मांग नहीं करता. वह प्रेम को विराट भाव मानती हैं. उनका कथन है—'प्रेम के व्यावहारिक रूप से दहेज उन्मूलन, अंतरजातीय विवाहों में मदद मिल सकती है. वैसे आज हमारे प्रेम संबंधों की भावभूमि ही बदल गयी है. हमारी नजर में दुनियादारी आ गयी है. आज युवक-युवतियों में जो प्रेम पनप रहा है विशेषकर कालेज या विश्वविद्यालय के परिवेश में उसका अर्थ मौज-मस्ती करना ही रह गया है. एक साथ दो-दो तीन-तीन लड़कियों से डेटिंग चलती है. शारीरिक गुफ्तगू को प्रेम समझ लिया जाता है. नुकसान अधिकांशतः लड़कियों का होता है. प्रेम की सही कसौटी तो जीवन है. यूं प्रेम को देखें तो प्रेम में पाना कहां होता है? जिद करके, विद्रोह करके किसी को पा भी लो तो विवाह के बाद लगता है—क्या इसी के लिए इतनी विरोध मोल लिया? प्रेमी मन तो रब जाने कहां खो जाता है? दोनों एक दूसरे में पूर्व प्रेमी-प्रेमिका को तलाश करते हैं. मगर वहां अहम आगे आकर खड़े होने लगते हैं. हमारे समाज के युवकों के मुकाबले युवतियों को प्रेम संबंध रखने की स्वतंत्रता नहीं है. सारी नैतिकता उन्हीं के लिए है. प्रेम को मैं मधुर स्मृति या मीठी कसक के रूप में संजोकर रखने की चीज मानती हूं.'

स्पष्ट है कि फिलहाल अब तक हमारे देश में युवक-युवती के सामाजिक मिलन का नाम है—विवाह, जो प्रेम संबंधों का मर्यादित रूप कहा जाता है. विवाह के अलावा अन्य रूप में स्त्री-पुरुष का साथ-साथ रहना अनैतिक माना जाता है. हालांकि महानगरों में बिना विवाह भी कुछ लोगों में साथ रहने की प्रवृत्ति पनप रही है. यह एक ऐसी स्थिति है जो विवाह जैसी पुरातन संस्था के विरुद्ध आवाज बुलंद करती हुई हमारे सामने बहुत से सवाल खड़े कर देती है. इनमें से मुख्य सवाल यह है कि क्या अब प्रेमी-प्रेमिका के सामाजिक संसार का कोई नया स्वरूप निर्धारित होगा या कि यह वक्त की बात है और वक्त के साथ ही खत्म हो जायेगी?... अभी इसका कोई निश्चित उत्तर शायद किसी के पास नहीं है, पर यह निश्चित है कि यह रचनात्मक संबंध अपनी सांस्कृतिक गरिमा को बनाये रखे, इसके लिए हमें सचेत रहना होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेज पर एक अंतर्देशीय लिफाफा पड़ा हुआ था, लिखावट देखकर आश्चर्य और आश्चर्य से अधिक उत्सुकता हुई. अंदर तीन-चार पंक्तियां थीं, जिनमें मिलने के लिए कहा गया था.

सर्दियों के दिन थे और ग्यारह बज रहे थे. उसने उसे यही समय दिया था. मैंने सोचा, मुझे रुक जाना चाहिए. स्त्री के पास समय पर पहुंचना, अगर उसे नहीं तो उस समय को अपनी नियति मान लेना है. मुझे एक बार स्वयं पर अविश्वास हुआ कि मैं उसके घर जा रहा हूं और एक क्षण को लगा, मैं गलती कर रहा हूं. मैं एक पुरानी डायरी खोलने जा रहा हूं जिसमें अपनी इबारत पढ़ने का आत्मविश्वास मैं खो चुका हूं.

मैंने उसे देखा तो मेरा खयाल गलत निकला. उसके मुख पर असंतोष नहीं था. केवल एक कठोरता थी और उसके भीतर क्या है, समझ पाना मुश्किल था! मेरे आने पर एक बार उसने मुझे देखा और अपनी जगह पर बैठी रही. उसने मुझसे बैठने के लिए नहीं कहा. जब मैंने अपने-आपको एक अपरिचित और नवागंतुक की तरह पेश करते हुए कहा, "क्या मैं बैठ सकता हूं?" तो उसने आंखें उठाकर देखा, जिसमें शायद

दूसरी बार

श्रीकांत वर्मा

हिकारत भी थी और तकलीफ भी. उसने कुर्सी मेरी ओर बढ़ा दी थी.

कई साल बाद शेल्फ पर रखे अपने एक पुराने चित्र का दीख पड़ना एक चौंकानेवाला अनुभव है, खासकर किसी ऐसे चित्र का जिसके साथ कई आत्मीय प्रसंग जुड़े हों. चित्र मैंने बिंदो के कहने पर खिंचवाया था.

बिंदो अब भी खाली-खाली आंखों से बाहर की ओर देख रही थी, मानो मेरे और उसके पास बात करने को कुछ भी नहीं है, मैंने आकर गलती की. शायद उसने अपनी सहज बुद्धि से यह भांप लिया था.

"कहां रही?" मैंने धीरे से कहा. चाय डालती हुई वह रुक गयी जैसे उसके कान देर से मेरे प्रश्न का इंतजार कर रहे थे! उत्तर मिला, "पूना, पंचमढ़ी, अमृतसर."

"किस सिलसिले में?" मुझे कुछ उत्सुकता भी हुई.

"रिसर्च."

"मगर रिसर्च तो तुमने छोड़ दी थी."

"जब करने को कुछ न हो तो पुराना ही काम फिर से शुरू किया जा सकता है,"

"इस उम्र में?" मैंने कहा. और अपनी जीभ काट ली. मुझे अफसोस हुआ और अपराधी की तरह मैंने अपना मुंह फेर लिया. मगर, मैंने देखा उसके चेहरे पर विकार नहीं था. शायद वह आहत नहीं हुई.

मैं हमेशा ही यह अनुभव करता आया हूं कि बिंदो की तुलना में मैं ओछा पड़ता हूं. मैं हमेशा ही अपने इस ओछेपन से घबराता भी रहा हूं और अपने को समझाता भी रहा हूं कि मैं ओछा नहीं हूं.

कहीं बाहर लंच लेने की बात पर वह साड़ी बदलकर आ गयी थी और अपना ढीला, रूखा जूड़ा संवार रही थी. मैं जानता था बिंदो जैसी खूबसूरत स्त्री कहीं-ही-कहीं होती है. इतना तराशा और संवारा हुआ शरीर, बिखरता रंग और इतना नुकीलापन! जब मैं बिंदो को छोड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था, तब मुझे गर्व भी हुआ था कि मैं एक इतनी सुंदर स्त्री से भी असंपृक्त हो सकता हूं. अब बिंदो को देखकर मुझे उसके प्रति एक तीखा-आकर्षण हुआ और अंदर-ही-अंदर एक मीठे सुख की अनुभूति भी कि यह शरीर बरसों मेरा रहा है और इसे मैंने नग्न देखा है.

मैं उसे एक अच्छे मगर सादे रेस्तरां में लाया था. मुझमें और बिंदो में एक बात समान थी कि हम कभी पॉश रेस्तरां में नहीं जाते थे. सलाम कर बैरे ने मेज पर मीनू रख दिया था. अनायास मीनू बिंदो की ओर बढ़ा देने के बाद मैंने महसूस किया कि मैंने गलती की है. आखिरी दिनों में मुझे लगने लगा था कि मेरी सबसे बड़ी भूल यह थी कि हर चीज में फैसला करने का अधिकार शुरू में ही मैंने उसे दे दिया था. मगर तब तक बहुत देर हो चुकी थी और जैसे-जैसे मैंने दिये हुए अधिकारों को वापस लेने की कोशिश की, संबंध और भी बिगड़ते गये.

आखिर वह चाहती क्या है? जाहिर है वह मेरे पास फिर से नहीं आयी है. मैंने उसे धकेलकर बाहर नहीं किया था, वह अपनी इच्छा से, अपने संकल्प से गयी थी. वह नहीं, मैं रोया था. उसने नहीं, मैंने मनाने

एक बार संबंधों के विकृति की सीमा तक पहुंचने के बाद दूसरी बार उसी व्यक्ति का सामना कितने प्रकार के भय और आशंकाएं पैदा कर सकता है? और वह भी तब जब वे दोनों परस्पर पति-पत्नी रह चुके हों. ऐसे ही संबंधों का विश्लेषण किया है प्रख्यात कथाकार, कवि, पत्रकार एवं राजनेता श्रीकांत वर्मा ने, अपने उपन्यास 'दूसरी बार' में. प्रस्तुत है उसी उपन्यास का संक्षिप्त रूपांतर

की कोशिश की थी. फिर वह क्यों आयी है? क्या वह अपनी स्त्री-दृष्टि से यह देखने आयी है कि उसके बिना मैं किस तरह रह रहा हूं? मूर्ख!

खाने के बाद मैंने उसे स्टैंड पर पहुंचा दिया था. जब वह टैक्सी में बैठ गयी और मैं बिना कुछ कहे ही जाने को हुआ तो उसने कहा, "सुनिए, आप कुछ देर और नहीं रुक सकते? मुझे कुछ बातें करनी थीं!"

"मैं रुक सकता हूं!" मैंने अपने को रोकते हुए कहा.

जब टैक्सी उसके घर के पास जाकर रुकी तो उसने कहा, "देखिए, मुझे आपसे एक माफी मांगनी थी!"

मैंने उत्सुक आंखों से देखा! मेरे मन में उस समय उसके प्रति कुछ दया उत्पन्न हुई. इसके पहले कि वह दया छलककर बाहर आये, उसने अपनी चतुर आंखों से मेरे अंदर झांक लिया था.

"मेरे कारण आपको आज सारा दिन कष्ट हुआ." वह मुड़कर चली गयी. एक मिनट को उसने मुझे हतप्रभ कर दिया.

घर वापस पहुंचकर मैंने कपड़े बदले, बत्ती बुझा बिस्तर पर लेट गया. अंदर के अंधकार और बाहर के शोर के किनारे पड़ा हुआ मैं बहुत दिनों बाद बेचैनी का अनुभव कर रहा था. एक ऐसी बेचैनी जिसे केवल स्त्रियों का शरीर ही अपने अंदर दुह सकता था. स्त्री का शरीर प्राप्त करना मेरे लिए उस समय ही नहीं, किसी भी समय, आसान था! मगर अपने को दे देने का डर उससे बड़ा था.

सवेरे देर से उठने पर आंखों में कड़वाहट थी. कमरे के बाहर खिड़की से चिड़चिड़ायी हुई नजर डाली और आंखें मूंद लीं. सिर भारी था. चलकर कहीं काफी पीनी चाहिए.

कनाट प्लेस के एक परिचित रेस्तरां में घुस गया. यहां का अंधेरा अच्छा लगता था. यह अंधेरा जरूरत पड़ने पर एक दूसरे को नजदीक ला देता है और मौका पड़ने पर दीवार बनकर खड़ा हो जाता है.

बाहर रोशनी में आते ही, संसार फिर अपनी जगह लौट आया. निरुद्देश्य घूमने के सिवा कोई काम नहीं था. कनाट प्लेस का एक पूरा चक्कर काट लेने के बाद समझ में नहीं आया, कहां जाऊं!

कनाट प्लेस के घेरे में दोबारा फंसकर मैं ठीक उसी जगह पहुंचा जहां पिछली दोपहर, इसी वक्त उसके साथ खाना खाया था. दिल एक बार धड़का. हाथ कोट की जेब में गया और मेरी उंगलियों में फंसा बिंदो का खत निकल आया, जिसके बाद से और जिसकी वजह से यह सारा सिलसिला शुरू हुआ.

मैंने खत को खोलकर एक बार फिर पढ़ा और मुझे उसकी लिखावट बनावटी जान पड़ी. पटरी से उतरकर सड़क पर आते हुए मैंने उसे फाड़ा और उसकी चिंदियां हवा में उड़ने लगीं. काश! ये चिंदियां उसके घर तक उड़ती हुई उसके मुंह पर जा पड़तीं. टुच्ची!

आखिर बिंदो चाहती क्या है?

फैसला करना ही होगा, मगर टैक्सी पर बैठते हुए मैंने खुद से कहा, 'क्या फैसला पहले ही नहीं हो चुका!'

मुझे उससे केवल एक वाक्य कहना था, 'तुम यहां क्यों आयी हो!' मैं बिंदो के घर के अहाते में घुसा. और वहां पहुंचते ही, मुझे यह एकाएक एहसास हुआ, मैं पागलों जैसी हरकत कर रहा हूं. यहां आने की क्या सचमुच ही कोई जरूरत थी? अगर उसने मुझे देखा तो क्या समझेगी? शायद वह सब, जो मैं नहीं चाहता! उसकी आंखें चमक उठेंगी, 'दगाबाज!' मैं बुदबुदाया और जल्दी-जल्दी दूर निकल गया.

घर पहुंचकर बिस्तर में पसरा तो नौकर ने बताया, "आपका फोन था!"

"किसका था?"

"कोई बाई जी थी."

"क्या कहा था, दोबारा फोन करने के लिए कहा था?"

"कुछ कहा नहीं था."

मैं जानता था यह बिंदो का फोन था. उसके फोन करने के खयाल से मुझे खुशी हुई. ऐसा नहीं हो सकता, दोबारा फोन न आये. वह मुझसे क्षमा मांगेगी, यह खयाल मुझे और भी उत्फुल्ल करने लगा. जैसे छुट्टियों में रिजल्ट का इंतजार होता है और छुट्टियां दूभर हो जाती हैं वैसे ही मुझे फोन की घंटी घनघनाने का इंतजार था. फोन नहीं आया. तब अंधे आदमी की तरह मैंने उसका नंबर घुमाया. "फोन तुमने किया था?"

"नहीं," उसने छोटा-सा उत्तर दिया.

"तुम झूठी हो. . . आखिर तुम चाहती क्या हो? जवाब क्यों नहीं देतीं. . . तुम चाहती क्या हो?"

"और कुछ कहना है. . आपने बताया नहीं!"

रिसीवर रखकर मैं बिंदो के लिए तमाम गालियां निकाल रहा था. टुच्ची! धोखेबाज! बेईमान! झूठी!

गालियां दे चुकने के बाद तटस्थ होते हुए मैंने पाया, ये वे गालियां नहीं थीं जो परायी स्त्री को दी जाती हैं बल्कि वे थीं जो अपनी स्त्री को दी जाती हैं.

अजब संयोग है कि जब मैं फूटने को था, वह फूट पड़ी. अगर बिंदो कुछ रोज और रुक गयी होती तो मैंने खुद ही सारी बातें, हम दोनों के ही 'दोस्त' अनिल को खोल दी होतीं. मगर बिंदो ने, जो कभी जल्दबाजी नहीं करती थी, अपनी जल्दबाजी से मुझे बचा लिया. वह अनिल से यह कहने गयी थी कि अब आगे नहीं चल सकता और यह कि वह मुझे खबर कर दे. कहते ही बिंदो ने अपना ओहदा ऊंचा कर लिया था.

अनिल से मिलकर भी तसल्ली हाथ नहीं लगी थी. बारिश में भीग जाने से हरारत-सी हो आयी थी. घर पहुंचते-पहुंचते अजीब-सी व्यर्थता ने घेर लिया था. बाहर बैठा हुआ नौकर मेरी प्रतीक्षा कर रहा था या ऊंघ रहा था, मैं नहीं जानता. उसकी उपेक्षा करता हुआ मैं अंदर आ गया और पाया सोफे पर बैठी हुई बिंदो ताश के पत्ते बिछाये हुए थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिंदो को अपने घर पर पा एक साथ कई अनुभूतियां हुईं. गर्व, घृणा, सुख, प्रतिहिंसा और आश्चर्य. बिंदो ने मुझे देखा और पहले की तरह ताश के पत्ते बिछाती रही.

"कितनी देर हुई?"

"बहुत नहीं."

मैं समझ गया, वह झूठ बोल रही है. वह बारिश में आयी थी. उसकी साड़ी यहां-वहां भीगी हुई थी.

मैंने तय किया कि मैं अपना मौन नहीं तोड़ूंगा. जिस तरह बरसों की चुप्पी मेरा दम घोंटती रही है, उसी तरह उसे भी इस यातना से गुजरना होगा. मगर उसने मेरी मौन प्रतिज्ञा को पढ़ लिया था और शायद वह मेरी प्रतिज्ञा तुड़वाने ही आयी थी. बजाय इसके कि वह विजेता होकर यहां से जाये, मुझे ही अपनी समरनीति बदल देनी चाहिए.

"तुम चाहो तो कपड़े बदल लो—तुम भीग गयी हो."

"अच्छा!" उसकी आंखों में चमक आयी और अंदर कपड़े बदलने वह चली गयी.

"साड़ी कुछ खास नहीं भीगी थी. पुलोवर और ब्लाउज मैंने हीटर के करीब सूखने को रख दिया है. यह शाल मिल गया."

वह शाल अपने सीने और कंधों से लपेटे हुए थी. कसे हुए शाल में वक्ष की गोलाइयां ज्यादा उभर आयी थीं.

"तुम शायद कोई खास बात करना चाहती हो."

"हां, मैं करना चाहती हूं." उसने इतनी दृढ़ता से कहा कि मुझे लगा, मैं अपनी जगह पर लुढ़क गया हूं. मैंने कहा, "कहो."

"मैं अपनी चिट्ठियां वापस लेने आयी हूं."

सहेजकर रखी उन चिट्ठियों से मुझे कोई मोह नहीं था. समय-समय पर उसने यहां-वहां से मुझे लिखा था. उसके खतों को बाद में पढ़ने पर, मैंने पाया था कि उनमें प्रेम नहीं था, चालाकी थी. हर बात सम्हाल-सम्हालकर लिखी गयी थी. वह कुछ भी साफ-साफ नहीं कहना चाहती थी. उसके जाने के बाद मुझे स्वयं हैरानी हुई थी कि मैं उन चिट्ठियों को इतने दिनों तक प्रेम-पत्र कैसे समझता रहा, "क्या है तुम्हारी चिट्ठियों में—हीरा-मोती-जवाहरात!"

"तो वापस कर दो."

इस बीच वह सोफे से उठकर पास पड़ी कुर्सी पर जा बैठी थी और अपना जूड़ा ठीक करने लगी थी. शाल उसके कंधे से गिर गया था और छातियां लगभग नंगी हो गयी थीं. अचानक मेरे मन में बर्बरता उत्पन्न हुई. इच्छा हुई उसे उठाकर सोफे पर पटक दूं और मसल दूं. उसके साथ बलात्कार करने के आवेग को दबाते हुए मैंने कहा, "तुम अपने को क्या समझती हो!"

उसने अनसुना किया, "मेरे कपड़े सूख गये होंगे!" कहती हुई वह उठी और अंदर चली गयी. जरा देर में वापस आने पर उसका शरीर अधिक संवरा हुआ था. शाल उसने भीतर छोड़ ब्लाउज पहन लिया था, मगर ऊपर के दोनों बटन इस तरह खुले थे कि छातियां अब भी नंगी लगती थीं.

"चिट्ठियां मुझसे ही वापस लोगी या औरों से भी."

"और किससे?" वह तमतमायी. वार निशाने पर लगा था, "मुझे बदनाम करना चाहते हो?"

मैंने कमजोर जगह से कुरेद दिया था, "तुम्हें यही शोभा देता है?" उसने वितृष्णा से मुझे देखा.

मुझे अचानक हंसी आ गयी. मेरे हंस पड़ते ही वह बाज की तरह टूट पड़ी—जैसे अवसर की प्रतीक्षा कर रही थी.

"मेरे साथ खेल रहे हो. तुम्हें शर्म आनी चाहिए, एक स्त्री की इज्जत को लेकर इस तरह खिलवाड़ करते. मैं वेश्या हूं? मुझे नहीं पता था तुम यहां तक गिर सकते हो! मेरी चीजें मुझे दे दीजिए."

मैंने चिट्ठियां रूमाल में अच्छी तरह लपेट दी थीं. कहा, "गिन लो सौ से ऊपर हैं."

चिट्ठियां उसने ले लीं. पर्स में उन्हें रखते हुए उसने मेरी ओर देखा. उसकी आंखों में पीड़ा थी.

टैक्सी आ जाने पर मैंने उसे 'तुम जा सकती हो' की मुद्रा में देखा. वह अब भी खड़ी हुई थी. अगर मेरा बस चलता तो मैं उसे निकाल देता. उसने मुझे देखा भी इस तरह जैसे मुझे टटोल रही हो कि, क्या तुम मुझे निकालना चाहते हो? अचानक वह तड़पी, उसका शरीर कौंधा—तेजी से बाहर जाते हुए वह एक बार मुड़ी और तीखे स्वर में कहा, "मैं चिट्ठियां वापस लेने नहीं आयी थी."

छत्तीस घंटे गुजर जाने के बावजूद कुछ भी नहीं बदला था. मौसम साफ हो गया था. धूप खुल गयी थी और वातावरण हल्का हो गया था. अगर मन भी ऐसे हल्का हो सकता, तो क्या था.

अनिल मुझसे मिला और उसने बहुत आत्मीयता के साथ कहा, "बिंदो बहुत दुखी थी." इसका मतलब है, उसे सब मालूम है. "कब मिली थी?" मैंने पूछा.

"परसों. . . तुमसे मिलने के बाद."

"क्या कहा उसने?"

"दुखी थी. मुझसे केवल इतना कह गयी—वह किससे बदला ले रहे हैं, मुझसे या अपने आपसे?. . . तुम जहां उलझन नहीं है, वहां भी उलझन पैदा कर रहे हो." अनिल मुझे नसीहत देकर चला गया था.

घर लौटकर मैंने कपड़े बदले और तैयार होने लगा. मुझे पता नहीं मैं क्या करूंगा. बिंदो के मकान का फासला थोड़ा ही रह जाने पर एक बार हिचक जरूर ही पैदा हुई, मगर फिर मैंने इस हिचक को एक झटके के साथ खत्म कर दिया.

घर पहुंचकर मालूम हुआ, बिंदो वहां नहीं थी, नौकर ने बताया वह सवेरे ही कहीं चली गयी थी. अब क्या करूं? मैं इसी उधेड़बुन में था कि नौकर ने मुझे हिम्मत बंधायी, उसने कहा कि वह लौटती ही होगी.

मुझे लगा मैंने यहां आकर गलती की. शायद मैं जल्दबाजी कर गया. बिंदो के वापस आने के खयाल से सुख भी हुआ और घबराहट भी.

बाहर स्कूटर रुकने की आवाज आयी. बिंदो ही थी. मुझे देखते ही बिंदो ठिठक गयी. उसकी आंखें चमक उठीं. वह मेरे बिल्कुल आगे से निकलकर अपने कमरे में चली गयी थी.

कमरे में जाकर उसने कपड़े नहीं बदले. उसके होंठों पर मुस्कान थी. स्त्रियां कुछ चीजों से सुखी होती हैं, खरीदारी, सिनेमा, फूल, चुंबन,- कोई भी चीज उन्हें सुखी बनाने के लिए काफी है.

"मुझे उस दिन की घटना के लिए अफसोस है." यह सुनते ही बिंदो की आंखें चमकीं.

"आइए, यहां बड़ी सर्दी है, भीतर बैठें!" भीतर से उसका मतलब उसका निजी कमरा था. मुझे कोई आपत्ति नहीं थी—वैसे सर्दी दोनों ही जगह समान थी.

मैं बिस्तरे से जरा नजदीक पड़े सोफे पर बैठ गया था. उसने बे-झिझक सामने रखे एक मोढ़े पर अपने कूल्हे टिका लिये थे. मैंने पाया कि उम्र के साथ बिंदो का शरीर जरा भारी हो गया था—वैसे वह पहली नजर में दुबली नजर आती थी. अचानक उसने कहा, "क्या आप पिछली बातों को भूल नहीं सकते?"

अपनी जगह पर बैठी हुई वह मुझ पर इतनी झुक गयी थी कि उसके चेहरे का अक्स मुझ पर पड़ने लगा था. उसकी पिंडलियां मेरे घुटनों को छूने लगी थीं. मैं अपनी जगह पर कसमसाया नहीं. उसे बरदाश्त करता रहा. तब उसने मेरा हाथ अपने हाथों में ले लिया! "क्या सचमुच तुमने मुझे माफ कर दिया?" वह एकदम अभिनेत्री की तरह अपना डायलाग बोल रही थी. मुझे हंसी आ गयी.

कमरे के बाहर जाकर दो मिनट में वह लौट आयी जैसे कुछ पूछना भूल गयी हो. और सचमुच वह भूल गयी थी. मगर जो कुछ उसने पूछा, वह इतना अटपटा और आकस्मिक था कि पहली बार मैंने महसूस किया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिंदो ने सचमुच अपने को एक दूसरे ही अक्स में डाल लिया है. पहले बिंदो से चिढ़ होती थी, मगर अब डर लगने लगा. स्त्री का प्रस्फुटन परिस्थितियों के साथ किस रूप में होगा, पता नहीं चलता. वह अपनी अचानक सुंदरता, अप्रत्याशित प्रेम में केवल मोहती नहीं, डराती भी है. यह एक छोटे-मोटे विस्फोट की तरह होता है. उसने मुझसे पूछा, "क्या पियेंगे."

शराब ही नहीं, सिगरेट के लिए भी उसने कसमें दिलायी थीं. जब भी मैंने पी होती, लड़ाई होती, जबतक मैं 'हां' या 'न' कहूं, उसका नौकर सारा सामान लाकर रख गया.

"सुनो." मैंने कहा, "तुम अगर समझती हो कि मेल हो सकता है तो तुम्हें वहम है! तुम जैसी औरत से किसी का प्रेम नहीं हो सकता. तुम तोड़ती हो. तुममें घमंड है. तुम अपने दर्प में किसी को नहीं पहचानतीं. तुम्हारे साथ बीता हुआ जीवन नर्क था. मैं एक बार इस नरक से किसी तरह निकल आया. अब तुम दोबारा क्यों आयी हो?"

"खाना ठंडा हो जायेगा. . . "

"मुझे भूख नहीं है." खाने की मेज पर बैठते हुए मैंने कहा.

खाना खाकर खड़ा ही हुआ था कि इच्छा हुई, बैठ जाऊं. किसी तरह कमरे के अंदर जाकर मैं सोफे पर पसर गया. "तुम थोड़ी देर लेट जाओ. आंखें मूंद लो तो अपने आप नींद आ जायेगी." उसने मेरा माथा दबाते हुए कहा.

आखिर विवेक ने धोखा दिया. मुझे जहां नहीं पहुंचना था, मैं वहीं पहुंचा, मुझे जो नहीं होना था, मैं वही हुआ.

रात को लगभग बारह बजे अचानक आंख खुलने पर पाया, मैं बिंदो के पलंग पर, उसके पैरों पर पड़ा हुआ था. मेरे जागने से बिंदो भी हड़बड़ाकर उठ बैठी, "मैं यहां कैसे पहुंचा?" मैंने पूछा.

"तुम बड़ी देर तक माफी मांगते रहे, फिर यहां . . .पैरों पर. . .गिर पड़े."

"तुम्हारे पास सिरदर्द के लिए कुछ है." मैंने कहा और वह उठकर पास पड़ी अटैची खोलने लगी.

वह लगभग नंगी थी. केवल एक पेटीकोट-ब्लाउज उसे ढंके हुए थे. मैंने जुर्म किया है. मैं एक परायी स्त्री के साथ इतनी देर तक सोता रहा और मुझे पता भी नहीं. हद है! आखिर यह हुआ कैसे? जिस स्त्री से मैंने घृणा की जिसे मैंने कुचलना चाहा, जो मेरी निगाह में टुच्ची थी, मैंने उसी के चरण पकड़े, उसी से प्रेम की भीख मांगी.

सिरदर्द की टिकिया देने के बाद वह मेरे नजदीक बैठ गयी, "तुम मुझे पराया क्यों समझते हो?" उसने अपनी बांहें मेरे गले में डाल दी थीं. बिंदो के स्वर में आत्मीयता थी. स्त्री की बांहें बता देती हैं उसका यह आलिंगन झूठ है या सच––आलिंगन का झूठ सबसे पहले पकड़ में आता है.

"आज ठंड ज्यादा है!" यह कहकर वह खिड़की तक गयी, बाहर देखा और खिड़की का पल्ला बंद कर दिया.

बिस्तर पर बिंदो पूरी तरह लेट गयी थी. मैं पलग पर अब भी बैठा हुआ था. बिंदो ने हाथ बढ़ाकर मुझे अपनी ओर खींचा, "ठीक से सो जाओ." वह मुझे बच्चे की तरह दुलार रही थी. यह दुलार बुरा नहीं लगा.

मैं उस पर झुक गया था. . .

सवेरे उठा तो पाया, बिस्तर पर मैं अकेला पड़ा हुआ था. सामने की घड़ी में सवा आठ बजे हुए थे. दूसरे के बिस्तर पर नींद खुलना नया जन्म लेने के बराबर है. मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और सोफे पर आ बैठा. बगल के कमरे में जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी. अगर नौकर ने देख लिया तो? क्या मैं उससे आंखें मिला पाऊंगा. मुझे भय था मगर बिंदो को नहीं. वह दूसरे कमरे में नौकर को कुछ आदेश दे रही थी.

वह चाय लेकर चली आ रही थी. बिल्कुल सहज. उसे देखकर नहीं लगता था कि उसमें कोई विकार आया है. मगर मैं उससे आंख नहीं मिला पाया.

किसी तरह चाय पीकर बाथरूम गया. बाहर निकला तो बिंदो किचन में गयी हुई थी. चोर की तरह मैं चुपचाप कमरे से निकला. शेल्फ पर मेरी तस्वीर अब भी अपना अधिकार जमाये हुए थी.

शर्म और पराजय में बंधा हुआ मैं घर पहुंचा और सीधे बिस्तर पर लेटा ही था कि फोन की घंटी बज उठी. नौकर से कहा, "मत उठाओ." मैं जानता था यह बिंदो होगी.

मैं समझ नहीं पा रहा था क्या करूं. संसार के किस कोने में चला जाऊं. बिंदो, बिंदो नहीं है. अभिशाप है. मैं इस अभिशाप से कैसे मुक्त होऊं. रात फिर दिमाग में उतरने लगी––परीकथा की तरह! मैं जिस-जिस चीज को भूलना चाहता हूं, वही बार-बार याद आती है.

अपने आप से भागता मैं लायब्रेरी पहुंचा. मगर मन वहां भी नहीं लगा. दरवाजे की तरफ बढ़ा तो अचानक अपनी पीठ पर किसी के मुलायम हाथों का स्पर्श अनुभव किया. देखा तो बिंदो थी.

"मैंने कई जगहों पर तुम्हें तलाश किया. आखिर में यहां आयी!" उसने मेरी बांह अपनी बाह में ले ली थी, "तुम सवेरे इस तरह उठकर क्यों चले आये थे. . . फिर मेरा फोन भी रिसीव नहीं किया. . मुझसे नाराज हो?" वह चलती-चलती मुझसे और भी चिपक गयी थी. सड़क पर गुजरनेवाले हमें देखकर सोच रहे होंगे कि कितना सुखी है यह जोड़ा.

टहलता और उसे ढोता हुआ मैं नहर के किनारे तक आया, "उधर चलें." उसका इशारा एकदम अंधेरी तरफ था. वहां पहुंचकर उसने अपना माथा मेरी गोद में रख दिया. ओस की परवाह किये बिना वह लेट गयी थी.

"तुम्हें मुझमें कोई दिलचस्पी नहीं?" उसने आराम से पड़े हुए पूछा.

इस वाक्य से मैं बहुत घबराता हूं. मैंने बात अनसुनी कर दी. उसने अपनी बात दोहरायी. जब मैंने दोबारा भी न सुनने का स्वांग किया तो वह उठ बैठी. उसने घूरकर मुझे देखा. मैंने पाया उसके चेहरे पर चमक और तेजी थी जैसा कि बिफरने के पहले होती थी. क्यों फिर वही होगा? या कि मैं ही गलत नतीजे पर पहुंच रहा हूं. मैं उठा, "कहां जाओगी?" पूछा. उसने 'क्या मतलब' की दृष्टि मुझ पर डाली. "घर नहीं जाना है?" मैंने कहा.

"इतनी जल्दी?" यह कहकर उसने कनखी से मुझे देखा. "शायद तुम्हें जल्दी है." वह मुझे ताड़ना चाहती थी, "तो ठीक है, मैं अकेली ही चल दूंगी." वह विद्रूप हो रही थी. वह अलग हो गयी थी. वह हठी थी, जिद्दी थी. वह जरूर जायेगी. क्षण-भर को वह ठिठकी. फिर उसकी चाल में तेजी आयी और वह दूसरी सड़क की ओर मुड़ने लगी, "ठहरो." मैंने कहा. मैं अंधकार में खड़ा था. अंधकार बाहर भी था, भीतर भी. "मैं भी चलता हूं."

जरा दूर चलकर मैं एक पत्थर पर बैठ गया. वह मुझसे सटकर बैठ गयी, "तुम थक गये हो." और मेरे कंधे पर उसने अपना सिर टिका दिया था, "तुम बिल्कुल थक गये हो." उसने कहा और मुझे जकड़ लिया, अमरबेल की तरह. मैं उसे नहीं देख पा रहा था. और वह मुझे नहीं. □

संक्षिप्त रूपांतर : राजकुमार गौतम

('दूसरी बार' उपन्यास के प्रकाशक हैं : राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस रात के बाद

ग्राहम ग्रीन

कहानी का अपना कोई आरंभ या अंत नहीं होता; लिखने वाला अपने अनुभव का कोई भी एक क्षण चुन लेता है और वहां से आगे या पीछे देखने लगता है. इस कहानी का आरंभ मैं जनवरी, सन छियालीस की एक अंधेरी गीली रात से कर रहा हूं—उस रात से जब कॉमन के रास्तों पर चारों तरफ वर्षा का पानी फैला था और हेनरी माइल्स को मैंने उसमें से लांघकर आते देखा था.

मैंने उसे रोककर कहा, "कहो हेनरी, क्या हाल हैं ? आजकल तो तुम दिखाई ही नहीं देते." और यह सुनते ही उसकी आंखों में एक चमक आ गयी, जैसे वह और मैं एक जमाने के दोस्त हों.

"सैरा ठीक-ठाक हैं?" यह मैंने इसलिए पूछा कि कुछ न कुछ तो पूछना ही चाहिए था.

एक जगह देखकर हम बैठ गये और चुपचाप अपने-अपने गिलास को सहलाने लगे. हेनरी के पास बैठकर मुझे कभी कोई बात नहीं सूझती थी. उससे मैंने परिचय भी एक खास कारण से ही किया था, नहीं तो शायद उसे या उसकी पत्नी सैरा को जानने का मैं कष्ट ही न उठाता. यह उनतालीस की बात है. उन दिनों मैं एक सरकारी कर्मचारी का चरित्र लेकर एक कहानी लिखने की सोच रहा था. पहली रात जब मैं सैरा को खाना खिलाने के लिए ले गया तो मेरा नेक इरादा इतना ही था कि एक सरकारी कर्मचारी की पत्नी के दिमाग को समझा जाये. उस बेचारी को मेरे इरादे का कतई पता नहीं था और शायद यही समझ रही थी कि मुझे उसकी घरेलू जिंदगी में वाकई दिलचस्पी है. इसलिए शायद मैं उसे अच्छा भी लगा.

हेनरी जल्दी-जल्दी रम के घूंट भर रहा था और परेशान-सी नजर से पीले और जामुनी फानूसों को ताक रहा था.

"इस बार क्रिसमस कैसी रही?" मैंने उससे पूछा.

"अच्छी रही." उसने कहा.

शायद रम ने ही उसकी जबान खोल दी या शायद पहले ही उसे कुछ अनुमान था कि मैं उसके बारे में काफी कुछ जानता हूं. सैरा ने तो मुझे ज्यादा नहीं बताया था, मगर मेरे साथ उसका जिस तरह का संबंध था, उसमें आदमी दो-चार बातें जान ही जाता है. मुझे पता था कि हेनरी की नाभि के बायीं तरफ एक कील है, क्योंकि एक बार मेरे पैदायशी निशान को देखकर सैरा को उसकी याद आयी थी.

"मेरी परेशानी सैरा को लेकर है." वह बोला.

"वह बीमार है क्या ? मगर तुमने तो अभी कहा था. . . . ."

"नहीं, यह बात नहीं, वह बीमार नहीं है." वह परेशानी की नजर से इधर-उधर देखने लगा, "बेंड्राक्स, मैं यहां बात नहीं कर सकता." उसने ऐसे कहा, जैसे पहले और कहीं वह मुझसे बात करता ही रहा हो. उसके बाद हम अलग हो गये.

मेरी कामना ने उन दिनों प्रेम से अधिक घृणा का रूप ले लिया था: सैरा ने बताया था कि हेनरी को उससे शारीरिक संबंध की कामना अब नहीं के बराबर ही है. फिर भी उसके मन में भी उन दिनों मेरे जितनी ही ईर्ष्या थी. उसकी कामना थी कि सैरा उसके पास रहे. वह जीवन में पहली बार महसूस कर रहा था कि सैरा के दिल को नहीं जानता, और इसलिए वह चिंतित और परेशान था. क्या हो रहा है, और क्या होने जा रहा है, यह उसे समझ में नहीं आ रहा था. उसे अपने चारों ओर बस अनिश्चितता ही नजर आती थी और इस दृष्टि से उसकी स्थिति मुझसे भी खराब थी. मेरे लिए कोई अनिश्चितता नहीं थी, क्योंकि मेरे पास अब कुछ था ही नहीं. जितना था, वह मैंने खो दिया था. हेनरी के पास अब भी बहुत कुछ था—सैरा उसकी मेज पर खाना खाती थी, सीढ़ियों पर उसे उसके कदमों की और उसके दरवाजा खोलने और बंद करने की आवाज सुनाई देती थी और वह आकर उसके गालों को चूमती थी. उनके बीच इससे अधिक कुछ नहीं रहा था, मगर एक भूखे आदमी के लिए इतना भी बहुत होता है. और इससे भी बड़ी बात यह थी कि कभी तो वह निश्चितता का अनुभव कर ही चुका था, जो मैंने कभी नहीं किया था.

मेडन लेन में घबराहट के साथ सैरा को चूमने के एक सप्ताह बाद मैंने उसे फोन किया.

"तुमसे किसी भी तरह मुलाकात नहीं हो सकती?" मैंने पूछा.

"क्यों नहीं हो सकती?"

क्षण-भर उस तरफ खामोशी रही और मुझे लगा कि लाइन कट गयी है. मैंने कहा, "हलो, हलो!" मगर बात सिर्फ इतनी थी कि वह सब चीजों को नजर में रखकर जल्दी-जल्दी सोच रही थी, जिससे मुझे सीधा और निश्चित उत्तर दे सके, "मैं एक बजे हेनरी को बिस्तर में खाना दूंगी. हम लोग नीचे के कमरे में सैंडविच खा सकते हैं. मैं हेनरी से कह दूंगी कि तुम अपनी कहानी के बारे में कुछ बात करना चाहते हो." और ज्यों ही उसने चोंगा रखा, मेरे विश्वास की लाइन भी साथ ही कट गयी. मैंने सोचा कि पहले भी जाने कितनी बार उसने इसी तरह की व्यवस्था की होगी. जब उसके घर पहुंचकर मैंने घंटी बजायी तो मुझे लग रहा था जैसे मैं उसका कोई दुश्मन हूं या कोई जासूस हूं, जिसे उसके एक-एक शब्द का ध्यान रखना है.

कौन किसे चाहता है, इसका उस समय कोई सवाल नहीं था, क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी एक को प्यार करते हुए किसी दूसरे को प्यार कर पाना संभव है क्या ? कोई एक कह सकता है—'हां,' लेकिन दूसरे का जवाब होगा—'नहीं'. ऐसी हालत में किस जवाब को सही समझा जाये. प्रस्तुत है द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में एक विवाहिता स्त्री और दो पुरुषों के बीच पनपनेवाले प्रेम और घृणा को एक गंभीर प्रयास के रूप में रेखांकित करते विश्वप्रसिद्ध अमरीकी उपन्यास का सार संक्षेप—

हम दोनों की कामना एक-सी ही थी. हेनरी हरा ऊनी ड्रेसिंग गाउन पहने दो तकियों के सहारे बैठा ट्रे में अपना खाना खाता रहा और नीचे के कमरे में दरवाजा खुला रखे और सिर्फ एक गद्दे का सहारा लिये हम लकड़ी के फर्श पर आपस में प्रेम करते रहे. जब चरमोत्कर्ष का क्षण आया तो मैंने उसके मुंह पर हाथ रख दिया.

"फर्ज करो, गुजरते हुए यह आवाज उसके कानों में पड़ जाती?"

"उसे पता ही नहीं चलता कि वह कैसी आवाज थी."

मैं आश्वस्त नहीं हुआ तो उसने कुछ उदास और कोमल स्वर में कहा, "पूरे दस साल में कभी भी तो ऐसा अवसर नहीं आया." मगर उसके बाद हम पूरी तरह सुरक्षित महसूस नहीं कर सके और जब तक सीढ़ी पर फिर आवाज नहीं हुई, चुपचाप बैठे रहे.

उस दोपहर को मेरे बिना पूछे ही अचानक आकर जब सैरा ने मुझसे कहा, "मैंने कभी किसी भी व्यक्ति से इस तरह प्रेम नहीं किया जैसे तुमसे करती हूं," तो सहज ही मुझे उस पर पूरा विश्वास हो गया था. मुझे लगा था कि आधा सैंडविच हाथ में लिये कुर्सी पर बैठी हुई भी वह उसी तरह मेरे सामने आत्मसमर्पण कर रही है जैसे पांच मिनट पहले

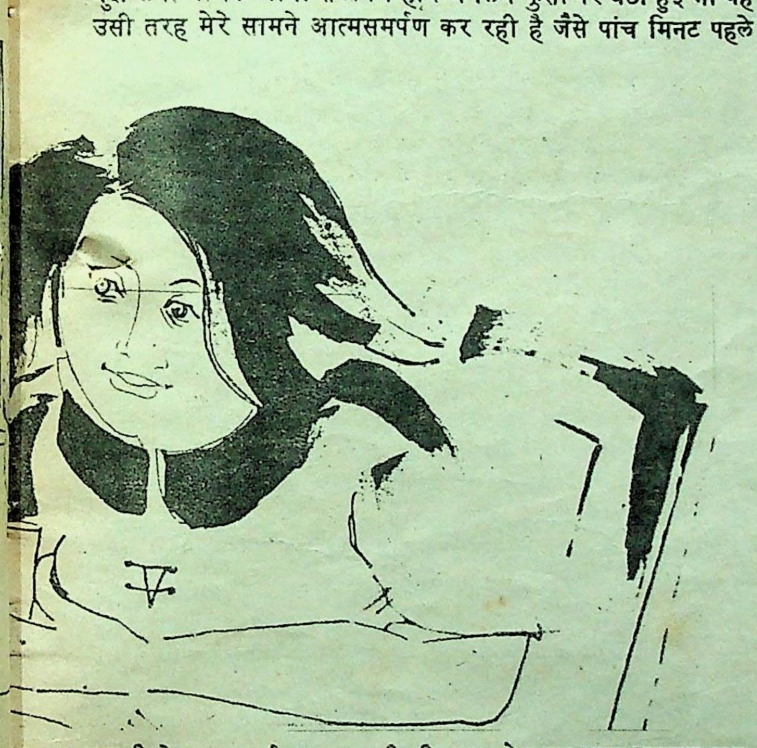

लकड़ी के सख्त फर्श पर कर रही थी. हम लोग इस तरह खुलकर बात कहते संकोच कर जाते हैं, कुछ स्मृतियां कुछ आशाएं और कुछ संदेह उसमें बाधा डाल देते हैं, मगर उसके मन में जैसे कहीं संदेह था ही नहीं. उसके लिए तो बस क्षण का ही महत्व था.

मेरे स्वभाव में ईर्ष्या बहुत है. ईर्ष्या के संबंध में मैं और सैरा काफी बहस किया करते थे. वह कभी-कभी बहुत स्पष्टता के साथ मुझे अपने गुजरे हुए दिनों की बातें बताती थी. . . .ऐसी बातें, जिनका वैसे कोई खास महत्व नहीं था, मगर मुझे उन बातों से भी ईर्ष्या होती थी. वह कहती थी कि वह अपने प्रेम के प्रति उतनी ही सच्ची रह सकती है, जितनी वह हेनरी की है, परंतु बजाय इसके कि यह जानकर मुझे खुशी हो कि मेरे प्रति भी वह उतनी ही सच्ची है, मुझे इस पर गुस्सा हो आता था. वह कई बार मेरे गुस्से पर हंस देती थी. उसे विश्वास ही नहीं होता था कि वह सुंदर है. और मुझे इस बात पर भी गुस्सा आता था कि मैंने क्या-क्या झख मारी है, और आगे क्या-क्या झख मार सकता हूं. यह जानकर भी उसे ईर्ष्या नहीं होती थी. और यह बात मेरी समझ में नहीं आती थी कि प्रेम का जो रूप मैं जानता हूं, उसके अतिरिक्त और भी कोई रूप हो सकता है. ईर्ष्या मेरे लिए प्रेम की एकमात्र कसौटी थी और उस कसौटी से देखने पर वह मुझसे प्रेम करती ही नहीं थी.

"तुम अपनी आंखों से मुझे किसी के साथ सोते देख सकती हो?"

"क्यों नहीं देख सकती?"

प्रेम में अनिश्चितता ही सबसे बुरी चीज है. इससे शायद वह घोटाले का ब्याह ज्यादा अच्छा है, जिसमें कामना नाम की चीज होती ही नहीं. अनिश्चितता बात को कुछ का कुछ रूप दे देती है और विश्वास का गला घोंट देती है.

"तुम्हीं बताओ, तुम्हें क्या अच्छा लगेगा. . . . मुझे खुश देखना या दुखी देखना?" उसने कहा. उसके इस तरह के तर्क मुझसे सहे नहीं जाते.

"मैं तुम्हें किसी और के साथ देखूं, इससे पहले तुम्हारी जान ले लूंगा या अपनी जान दे दूंगा," मैंने उसे कोसते हुए कहा, "यह मेरा पागलपन नहीं है. साधारण आदमी का प्रेम ऐसा ही होता है. तुम किसी से भी पूछ लो. जिसे किसी से प्रेम होगा, वह यही कहेगा. जहां प्रेम हो, वहां ईर्ष्या का होना जरूरी है."

यह बात मेरे कमरे की है. वसंत की दोपहर थी और हमें किसी के आने का खतरा नहीं था. प्रेम करने के लिए घंटों समय हमारे पास था, मगर मैंने वह सारा समय झगड़े में ही गंवा दिया और हम प्रेम नहीं कर सके.

"हेनरी ऐसा करे तो तुम्हें जरूर ईर्ष्या होगी." मैंने कहा.

"कतई नहीं, मुझे तो ऐसी बात ही बचकाना लगती है."

मुझे लगा कि वह मेरा अपमान कर रही है. मैं तुरंत खड़ा हुआ और सीढ़ियों से उतरकर सड़क पर पहुंच गया तो क्या यही अंत था?. . .मैं जैसे अपने से ही नाटक करता हुआ सोचने लगा. मैं अगर अपने को उसके प्रभाव से मुक्त कर लूं तो क्या किसी और के साथ अच्छा विवाहित जीवन व्यतीत नहीं कर सकता? उसमें कम-से कम ऐसा संशय तो न होगा. उस स्थिति में मैं इतना प्रेम करूंगा और न ही मुझे इतनी ईर्ष्या होगी, और मैं अपने मन में आश्वस्त रहूंगा. कॉमन के अंधेरे वातावरण में उस समय मेरी घृणा और करुणा ऐसे हाथ में हाथ डाल रही थीं, जैसे दो पागल बिना रखवाले के चले जा रहे हों.

"तुम इस तरह डरते क्यों हो?" सैरा ने कहा था. मेरे कमरे से निकलकर हॉल में जाने से पहले यही आखिरी शब्द थे, जो उसने मुझसे कहे थे . . . "प्रेम का कभी अंत नहीं होता. हम आपस में नहीं मिलेंगे तो उससे क्या होता है . . . !" वह तब तक अपना निश्चय कर चुकी थी, हालांकि मुझे उसका पता दूसरे दिन ही चला.

"यह तुम कैसी बातें करते हो?" उसने कहा था, "लोग ईश्वर को कभी देखते नहीं, फिर भी जीवन-भर उससे प्रेम नहीं करते?"

"वह प्रेम और तरह का होता है. तुम सोचो सैरा, मैं अब और किसका मुंह देख सकता हूं. तुम्हारे पास तो फिर भी सब कुछ है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम जानते नहीं हो," वह बोली, "इसीलिए ऐसा कह रहे हो."

खिड़कियों के टूटे हुए शीशे हमारे पैरों के पास आ गिरे. सिर्फ दरवाजे के ऊपर लगे हुए विक्टोरिया के जमाने के रंगदार शीशे अपनी असली हालत में रह गये थे.

जून, चवालीस की उस रात को पहली बार उन बमों का आक्रमण हुआ था, जो बाद में 'वी-1' के नाम से जाने गये थे. हम एक तरह से हवाई आक्रमणों की बात भूल ही चुके थे. फरवरी, चवालीस के थोड़े से दिनों को छोड़कर सन् इकतालीस के बड़े आक्रमणों के बाद वह धूम-धड़ाका फिर नहीं हुआ था.

जब आक्रमण आरंभ हुआ, तब हम बिस्तर में लेटे ही थे, मगर आक्रमण से हमें क्या फर्क पड़ता था? उन दिनों मौत का तो कोई अर्थ था ही नहीं. बल्कि पहले दिनों में मैं प्रार्थना किया करता था कि एक धड़ाके में हम दोनों के प्राण निकल जायें.

उस दिन जब तक हम प्रेम करते रहे, तब तक हम पर वी-1 बमों का कोई प्रभाव नहीं हुआ. मैं उस समय अपनी पूरी पूंजी खर्च कर चुकने के बाद लेट गया था. मेरा सिर उसके पेट पर था और मेरे मुंह में अभी उसके शरीर का पानी जैसा तरल और अस्पष्ट जायका बाकी था. तभी एक बम कॉमन में गिरकर फटा.

मैं जल्दी-जल्दी सीढ़ियों से उतरने लगा तो मुझे फिर एक आते हुए बम की आवाज सुनाई दी और फिर इंजन के कट जाने से कुछ देर खामोशी छायी रही. तब हमें यह पता नहीं था कि वही क्षण खतरे का होता है और उस समय शीशे के पास से हटकर जमीन पर लेट जाना चाहिए. धमाके की आवाज मैं नहीं सुन सका. जाने पांच सेकंड या पांच मिनट बाद जब मेरी चेतना लौटी तो मुझे पता चला कि मैं नीचे पीठ के बल पड़ा हूं और जो चीज मेरे ऊपर झुकी है और जिसने उजाले को रोक रखा है, वह सामने का दरवाजा है. कुछ और टूटी-फूटी चीजों ने उसे अटका लिया था और मेरे शरीर से कुछ ही इंच ऊपर झूलकर रह गया था.

दरवाजे के नीचे से निकलकर मैंने अपने को झाड़ लिया. फिर नीचे तहखाने में गया. सैरा को मैंने बाहर से ही देख लिया था. वह बिस्तर से उतरकर जैसे डर के मारे फर्श पर लेटी हुई थी.

"इस बम ने तो बस मार ही दिया था." मैंने कहा

"ओ ईश्वर!" उसने कहा, "तुम जीवित हो?"

"तुम्हारे कहने से तो लगता है जैसे तुम्हें इससे निराशा हुई हो."

उसने फर्श से उठकर अपने कपड़े उठा लिये, "तुम अभी ही क्यों चल दीं?"

"जब तक भोंपू नहीं बजता. तब तक तो ठहर जाओ." मगर वह सिर हिलाकर सीधी कमरे से निकल गयी.

पहले काफी दिन मेरे मन में आशा बनी रही थी. मैं सोचता था कि शायद यह संयोग की ही बात है, जो टेलीफोन पर उससे भेंट नहीं हो पाती. सप्ताह भर बाद उसकी नौकरानी से पता चला कि वह देहात चली गयी है. तब भी मैं सोचता रहा कि लड़ाई के दिन हैं, रास्ते में उसकी चिट्ठियां गुम हो जाती होंगी.

पहले सप्ताहभर मैंने भी अपनी ऐंठ में उसे चिट्ठी नहीं लिखी. फिर एक दिन मैंने अपनी ऐंठ को ताक पर रखा और अपनी सारी उत्सुकता और कड़वाहट एक चिट्ठी में उड़ेल दी.

छह महीने बाद मुझे एक रोज सैरा की डायरी हाथ लग गयी.

12 जून, 1944

कभी-कभी मैं उसे समझाते हुए थक जाती हूं कि मैं उससे कितना प्रेम करती हूं और सदा करती रहूंगी. वह एक वकील की तरह मेरे शब्दों पर झपटकर, उन्हें तोड़ने-मरोड़ने लगता है. शायद उसे लगता है कि हमारा प्रेम यदि समाप्त हो गया तो जीवन एक मरुस्थल की तरह हो जायेगा, मगर यह नहीं समझता कि मुझे भी तो ऐसा ही लगता है.

17 जून, 1944

कल मैं उसके साथ उसके यहां गयी थी और वहां पहले की ही तरह सब कुछ हुआ. वह सब लिखने का साहस नहीं पड़ता, फिर भी लिख लेना चाहती हूं, क्योंकि इस समय तक वह कल बीत चुका है और मैं नहीं चाहती कि अभी उसे बीतने दूं...

आज सब कुछ सदा के लिए समाप्त हो चुका है. मुझे डर लगता है कि शायद यही मरुस्थल है. आसपास मीलों तक कहीं कोई नहीं है, कुछ नहीं है. आज शाम भोंपू बज उठे थे. . . . .आज नहीं कल शाम, परंतु क्या अंतर पड़ता है? मरुस्थल में समय क्या चीज है? मगर मैं चाहूं तो इस मरुस्थल से निकल सकती हूं. कल वापसी गाड़ी पकड़कर चली जाऊं और जाकर उसे फोन कर दूं—बस. हेनरी अभी देहात में ही होगा और हम लोग रातभर साथ रह सकेंगे.

भोंपू बजते रहे और हमने कोई ध्यान नहीं दिया. उनसे कोई अंतर नहीं पड़ता था. उस तरह मरने का हमें डर नहीं था, मगर हवाई आक्रमण चलता ही रहा. मॉरिस देखने गया कि नीचे तहखाने में कोई है या नहीं. वह मेरे लिए डर रहा था और मैं उसके लिए. मुझे पता था कि कुछ न कुछ होने जा रहा है.

उसे गये दो मिनट भी नहीं हुए थे कि सड़क पर एक धमाका हुआ. जीने पर पहुंची तो वहां की रेलिंग टूटी हुई थी और बहुत-सा कूड़ा वहां जमा था. हॉल की तो बुरी हालत थी. पहले मॉरिस मुझे दिखाई नहीं दिया. फिर दरवाजे के नीचे से मुझे उसकी बांह बाहर को फैली हुई दिखाई दी. मैंने उसका हाथ छुआ तो मुझे निश्चित रूप से लगा कि उसमें प्राण नहीं हैं. जो व्यक्ति आपस में प्रेम करते हैं, उन्हें झट पता चल जाता है कि कब उनमें से किसी एक के चुंबन में कम उत्साह रहा है. यदि उस समय मॉरिस में प्राण होते तो क्या उसका हाथ छूते ही मुझे पता न चल जाता? मुझे लगा कि मैं उसका हाथ पकड़कर उसे अपनी तरफ खींचूं तो वह हाथ अलग होकर दरवाजे के नीचे से मेरी तरफ सरक आयेगा. अब मुझे लगता है कि यह शायद मेरा पागलपन ही था. मुझे शायद धोखा हुआ था. उसके प्राण नहीं निकले थे. पागलपन की अवस्था में की गयी प्रतिज्ञा के लिए व्यक्ति कहां तक उत्तरदायी है? और उसी पागलपन में वह उसे तोड़ भी तो सकता है? इस समय यह लिखते हुए भी तो मैं एक पागलपन की स्थिति में ही हूं.

मुझ पर उस समय वह पागलपन पूरी तरह सवार हो गया और मैं घुटनों के बल फर्श पर बैठ गयी. यह काम मैंने बचपन में भी नहीं किया था, क्योंकि मेरे माता-पिता भी मेरी तरह प्रार्थनाओं में विश्वास नहीं करते थे. मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं क्या प्रार्थना करूं, क्योंकि मॉरिस के प्राण तो निकल चुके थे और अब कुछ भी शेष नहीं था. आत्मा की सत्ता में मुझे विश्वास नहीं था. जो थोड़ा-बहुत सुख मॉरिस को मुझसे मिलता था, वह भी अब लहू के साथ ही निचुड़ गया था. मैं सोचने लगी कि अब मॉरिस को कभी किसी के साथ भी कोई सुख नहीं मिल सकेगा. वह जीवित रहता तो संभव था कि कोई और ही उसे मुझसे अधिक सुख दे सकती, मगर अब वैसा अवसर कैसे आयेगा. मैंने अपना सिर बिस्तर पर झुका लिया और कामना करने लगी कि किसी तरह मैं ईश्वर में विश्वास कर सकूं. मैंने कहा कि प्रिय (प्रिय?) ईश्वर, मुझे विश्वास दो. मेरे मन में विश्वास नहीं है, तुम मुझे विश्वास दो. मैंने कहा कि मैं एक कुलटा और विश्वासघातिनी हूं और अपने से घृणा करती हूं. मैं अपने को सुधार नहीं सकती. तुम मुझे विश्वास दो. मैंने आंखें बंद करके अपने नाखून अपनी हथेलियों में गड़ा दिये, यहां तक कि पीड़ा के अतिरिक्त और कोई अनुभव मुझे नहीं रहा. मैंने कहा कि मैं विश्वास करूंगी. तुम मॉरिस को जीवित कर दो तो मैं विश्वास करूंगी. उसे एक अवसर दे दो, सुख पाने का अधिकार दे दो तो मैं विश्वास करूंगी, परंतु इतना पर्याप्त नहीं था. केवल विश्वास करने में त्याग तो कुछ नहीं. मैंने कहा कि तुम उसे जीवित कर दो तो मैं कुछ भी करने को तैयार हूं. और फिर मैंने बहुत धीरे-से कहा कि तुम उसे जीवित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दो, एक अवसर दे दो, तो मैं उसे छोड़कर सदा के लिए हट जाऊंगी. मैंने नाखूनों को इतना दबाया कि मेरा मांस छिल गया. मैंने कहा कि एक-दूसरे को देखे बिना भी तो लोग आपस में प्रेम कर सकते हैं, वैसे ही जैसे तुम्हें देखे बिना तुमसे प्रेम करते हैं. और तभी मॉरिस दरवाजे से अंदर आ गया. वह जीवित था. मुझे लगा कि इसी क्षण से मुझे उससे अलग रहने की पीड़ा सहन करनी होगी और मेरा मन हुआ कि क्यों नहीं वह वहां दरवाजे के नीचे प्राणहीन ही पड़ा रहा?

3 फरवरी, 1946

आज मैंने मॉरिस को देखा, मगर वह मुझे नहीं देख पाया. वह 'पोंट फ्रैक्ट आर्म्ज' की तरफ जा रहा था. मैं उसके पीछे-पीछे चलती रही. मुझे पता था कि वह किस शराबघर में जायेगा और क्या पियेगा. सोचा, मैं भी पीछे जाकर वहां बैठ जाऊं और कुछ पीने के लिए मंगवा लूं ... कैसा रहे. वह मेरी तरफ घूमकर देखेगा और फिर सब कुछ पहले जैसा ही हो जायेगा. और मैंने सोचा कि कितनी आसानी से मैं उसे सुखी बना सकती हूं. मेरा मन होने लगा कि पहले की तरह ही उसे खुशी से ठहाके लगाते देखूं.

मैं घर चली आयी और हेनरी के नाम पत्र लिखने लगी. 'मेरे हेनरी' मैंने लिखा, मगर मुझे लगा, यह केवल दिखावा है. 'मेरे प्रिय' लिखती तो वह भी झूठ होता, इसलिए मैंने साधारण मित्र की तरह लिखा, 'प्रिय हेनरी' और आगे लिखने लगी—'तुम्हारे दिल को यह जान चोट पहुंचेगी कि मैं पिछले पांच साल से मॉरिस से प्रेम करती हूं. दो साल से हमारा मिलना-जुलना और पत्र-व्यवहार बंद है, फिर भी उससे कुछ अंतर नहीं पड़ा. मैं उसके बिना नहीं रह सकती, इसलिए आज तुम्हें छोड़कर जा रही हूं. बहुत दिनों से मैं तुम्हारे प्रति अपना कर्तव्य ठीक से नहीं निभा रही और जून, 1944 से मैंने उसके प्रति भी अपना कर्तव्य नहीं निभाया. इस तरह हम सभी दुखी हैं. मैंने सोचा था कि यह प्रेम मुझे कुछ संतोष देकर धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगा, मगर वैसा नहीं हुआ. मैं मॉरिस को सन् 1938 में जितना चाहती थी, आज उससे कहीं अधिक चाहती हूं. हो सकता है, मुझसे भूल हुई हो, मगर अब भी मैंने निश्चय न किया तो स्थिति और बिगड़ जायेगी. इसलिए विदा. ईश्वर तुम्हें सुखी रखे. हॉल में जाकर मैंने वह चिट्ठी शाम की डाक के ऊपर रख दी. तभी दरवाजा चाबी से खुल गया. मैंने जाने क्यों चिट्ठी जल्दी से उठा ली. हेनरी अंदर आ गया. वह बीमार और दुखी-सा नजर आ रहा था. मैंने उसके पीछे जाकर उसके माथे पर हाथ रख दिया. उसे छोड़कर जाने से पहले ऐसा करना मुझे बहुत विचित्र लगा.

"मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता." उसने कहा. मैंने कहना चाहा कि रह क्यों नहीं सकते, तुम्हें थोड़ी असुविधा ही होगी. बस, जैसे तुम्हें एक बार अखबार बदलने पर हुई थी, मगर शीघ्र ही तुम्हें नये अखबार की आदत पड़ गयी थी.

मैंने उसकी कमर में हाथ डालकर उसके वक्ष को छू लिया, "हम फिर से जीवन आरंभ कर रहे हैं सैरा," मैंने कहा, "संदेह और अविश्वास के कारण आज तक तुमसे प्रेम नहीं कर सका. मैं तुम्हें ठीक से नहीं जानता था. अब मेरे मन में कोई संदेह नहीं है."

उसने कुछ नहीं कहा और उसी तरह मेरे ऊपर झुकी रही जैसे कि मेरी बात उसने मान ली हो. "ऐसे करो," मैंने कहा, "कि घर जाकर दो दिन तुम बिस्तर में आराम कर लो. जुकाम में तुम्हारा सफर करना ठीक नहीं. मैं रोज फोन पर तुम्हारा हाल पूछ लिया करूंगा. जिस दिन तुम ठीक हो जाओगी, उस दिन मैं आकर तुम्हारा सामान बंधवा दूंगा. हम यहां नहीं रहेंगे. डॉरसेट में मेरे एक मित्र का कॉटेज खाली पड़ा है, हम कुछ सप्ताह वहां जाकर आराम करेंगे और मैं अपना उपन्यास भी पूरा कर लूंगा. कानूनी कार्रवाई बाद में होती रहेगी. पहले हम दोनों को आराम की जरूरत है. मैं तुम्हारे बिना अकेला रहते-रहते तंग आ गया हूं और अब बहुत थक गया हूं."

"मैं भी बहुत थक गयी हूं." उसने इतनी धीमी आवाज में कहा कि कोई अपरिचित होता तो शायद सुन ही न पाता.

उस समय उसे और उलझाना और तंग करना मुझे ठीक नहीं लगा. मैंने उसके स्वस्थ घुंघराले बालों को एक बार चूम लिया. वहां से फिसलते हुए मेरे होंठ उसके आंसुओं से भीगे हुए मुंह से छू गये.

"ईश्वर तुम्हें सुखी रखे!" उसने कहा.

आठ दिन से सैरा के घर से फोन नहीं आया और जब आया तो एक ऐसे समय, जब मुझे उसकी जरा भी आशा नहीं थी.

"हलो." मैंने कहा. उधर से हेनरी की आवाज सुनायी दी.

"बैंड्रिक्स, तुम बोल रहे हो?" उसकी आवाज विचित्र-सी थी.

"मैं . . . मैं ही बोल रहा हूं."

"एक बहुत ही भयानक घटना हो गयी है, जो तुम्हें बतानी आवश्यक है. सैरा की मृत्यु हो गयी है."

बिस्तर पर बैठकर मैंने ईश्वर से कहा कि तुमने सैरा को ले लिया है, मगर अभी मुझे नहीं पा सके. मुझे पता है, तुम बहुत धूर्त हो. तुम्हीं हो जो हमें शिखर पर ले जाकर सारी दुनिया दे देने का लोभ दिखाते हो. तुम्हीं शैतान हो जो हमसे कूद जाने को कहते हो! मगर मुझे न तुम्हारी शांति चाहिए और न ही तुम्हारा प्रेम चाहिए. मैं एक छोटी और साधारण सी चीज चाहता था और वह यह कि सैरा जीवनभर के लिए मेरे पास बनी रहे, मगर उसे तुमने मुझसे छीन लिया है. तुम बहुत चालबाज हो. जिस तरह फसल का रखवाला चूहों के बिल नष्ट करता है, उसी तरह तुम हमारा सुख हमसे छीन लेते हो. मुझे तुमसे घृणा है, उतनी ही घृणा, जितनी सचमुच तुम्हारा अस्तित्व होता तो तुमसे होती.

मेरे पास डायरी के सिवा अब और था ही क्या. इसलिए मैंने उसे उठाकर अलमारी में रख दिया. मैं उसे नष्ट कर देता तो क्या वह ईश्वर की ही मेरे ऊपर एक और विजय न होती? क्योंकि तब तो मेरे पास सैरा की कोई भी निशानी न रह जाती. मैंने सैरा से कहा कि अच्छा हो, परंतु तुम्हारी कोई भी प्रार्थना मेरी घृणा को प्रेम में नहीं बदल सकती. ईश्वर ने मुझे वंचित किया है तो मैं भी उस राजा की तरह, जिसके विषय में तुमने डायरी में लिखा था, उसे अपने अंदर की उस चीज से वंचित करूंगा, जिससे उसे प्रेम है.

मैंने आरंभ में लिखा था कि यह घृणा की कहानी है. उस समय बियर का गिलास पीते हुए मैं मन-ही मन एक प्रार्थना करने लगा, जो सदियों की उस शाम के बहुत अनुकूल थी—हे ईश्वर, तुमने मुझे बहुत सता लिया है और मेरा बहुत कुछ मुझसे छीन लिया है. मैं अब इतना थक चुका हूं और इतना थक चुका हूं कि मैं प्रेम करना नहीं सीख सकता. मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो. □

प्रस्तुति : ललिता अस्थाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा

भगवतीचरण वर्मा

ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठी हुई रेखा बाल संवारते-संवारते अपने प्रतिबिंब से उलझ गयी. उसके सामनेवाली दो बड़ी-बड़ी आंखों में एक प्रकार की चमक थी. अलसायी हुई-सी वह ड्रेसिंग टेबल के सामने से हटी. उसने अपने हाथ में बंधी घड़ी देखी, साढ़े-नौ बज रहे थे और दस बजे क्लास था उसका. उसके होस्टल से विश्वविद्यालय में उसके विभाग का रास्ता मुश्किल से दस मिनट का था और रेखा ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठ गयी.

रेखा सुंदर है, रेखा को इसका पता था. मटमैले सोने का-सा रंग, नुकीली और पतली नाक, चौड़ा मत्था. पतले-पतले होंठ, जिनके नीचे चमकते हुए अनार के दानों की तरह के छोटे-छोटे दांत. एक प्रकार का तीखापन था उसके चेहरे पर. यह तीखापन शायद इसलिए और भी स्पष्ट हो गया था कि वह इकहरे बदन की थी. उसका शरीर सुडौल और तना हुआ था, उसकी चाल में एक प्रकार का आत्मविश्वास था. रेखा ने खड़े होकर अपने शरीर को दर्पण में देखा और जैसे वह स्वयं अपनी सुंदरता पर मुग्ध हो गयी.

प्रोफेसर प्रभाशंकर उसके विभाग के अध्यक्ष थे और वह विश्वविख्याति के दार्शनिक माने जाते थे. भारतीय दर्शन के वह दुनिया में सबसे बड़े विद्वान समझे जाते थे. उस दिन एम.ए. फाइनल के क्लास का उनका पहला दिन था.

लाख प्रयत्न करने पर भी रेखा डाक्टर प्रभाशंकर को आकृति के रूप में नहीं देख सकी. प्रोफेसर शंकर की गंभीर वाणी, उनकी पैनी-दृष्टि, उनके मुख पर झलकने वाला आत्मविश्वास—इस सबमें कुछ ऐसा था कि रेखा स्वयं अपने अंदर झुक जाती थी. रेखा को कभी-कभी लगने लगता था कि वह स्वयं डाक्टर प्रभाशंकर के लिए एक आकृति की भांति है, और इस बात पर उसे झुंझलाहट होने लगती थी.

प्रोफेसर शंकर ने अपना लेक्चर जल्दी ही समाप्त कर दिया और वह उठ खड़े हुए. लेकिन जैसे उन्हें कोई बात याद आ गयी हो, उन्होंने अपनी जेब से एक छोटी-सी नोटबुक निकाली, उसे पलटकर उन्होंने देखा, फिर वह बोले, "राजकुमार! तुम एक बजे मुझसे मिलना, और रेखा भारद्वाज, तुम एक बजकर पंद्रह मिनट पर मुझसे मिलना."

कितनी सुंदर मुस्कान थी वह—रेखा ने अनुभव किया: एक आकृतिहीन रंगीन सपने की भांति वह मुस्कराहट आयी और चली गयी.

डाक्टर शंकर ने पैड मेज पर रख दिया, और फिर उन्होंने रेखा की ओर देखा. रेखा को लगा कि वह नजर उस पर जम गयी है. फिर मुस्कराते हुए डॉक्टर शंकर ने कहा, "तुम बड़ी बुद्धिमान लड़की मालूम होती हो, मिस भारद्वाज. एम.ए. प्रीवियस में अभी तक किसी लड़की ने इतने अधिक मार्क्स नहीं पाये. . मैं तुम्हें बधाई देता हूं."

अपने स्वर पर रेखा को स्वयं आश्चर्य हुआ जब उसने कहा, "सर अगर आप नाराज़ न हों तो मैं आपसे प्रार्थना करूंगी कि आप स्वयं अपनी अध्यक्षता में मुझे गाइड करें."

"अच्छी बात है मिस भारद्वाज, मैं अपना नियम तोड़कर तुम्हें गाइड करूंगा."

एकाएक रेखा ने उठकर प्रोफेसर शंकर के चरण छू लिये. कौन-सा आवेश था वह? कौन-सी प्रेरणा थी वह? रेखा में इस पर सोचने-विचारने की सुध-बुध न थी.

रोटरी क्लब की मीटिंग के लिए तैयार होकर प्रभाशंकर निकल ही रहे थे कि उनके बंगले के आगे एक टैक्सी रुकी. उन्होंने बरामदे में आकर देखा और एक हल्की-सी शिकन उनके माथे पर एक क्षण के लिए पड़ी, लेकिन बड़े शांत भाव से उन्होंने अपने को सम्हालकर कहा, "अरे तुम, देवकी."

टैक्सी से उतरते हुए देवकी ने कहा, "मैंने तुम्हें लिख तो दिया कि मैं शाम को पहुंचूंगी. क्या बतलाऊं, गाड़ी दो घंटे लेट थी."

अक्तूबर का प्रथम सप्ताह था, लेकिन उस दिन शाम काफी गर्म थी. बिजली का पंखा खोलते हुए देवकी ने कहा, "उफ, कितनी गर्मी है. बैठो न, खड़े क्यों हो?"

प्रभाशंकर बोले, "देख तो रही हो कि मुझे एक मीटिंग में जाना है, खाना भी वहीं खाना होगा. दस बजे रात तक वापस लौटूंगा. तो तुम खाना खा लेना." और प्रभाशंकर दरवाजे की ओर बढ़े.

देवकी ने प्रभाशंकर का हाथ पकड़ लिया, तनिक बल खाती हुई बोली, "जी हां, ऐसे ही चले जाने दूंगी तुम्हें. एक प्याला चाय तो तुम्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे साथ पीनी पड़ेगी. मैं जानती हूं कि तुम अभी आधा घंटा ठहर सकते हो."

प्रभाशंकर की तबीयत हुई कि वह देवकी का हाथ झटक दें, लेकिन वह यह न कर सके. चालीस साल से ऊपर उम्र की वह औरत, अपनी युवावस्था में अतिशय सुंदर रही थी, लेकिन अब वह कुरूपता की ओर बढ़ने लगी थी—भावनाहीन मुख, भावनाहीन आंखें, समस्त अस्तित्व जिसका निरर्थक-सा हो चुका था. लेकिन प्रभाशंकर उसके हाथ से अपना हाथ नहीं छुड़ा सके. प्रभाशंकर को कुर्सी पर बिठाकर उसने कहा, "जरा मैं हाथ-मुंह तो धो लूं. . .कितनी गंदी दिख रही हूं. उफ! कितनी थकान है सफर की."

इसी समय दरवाजे की घंटी बजी और प्रभाशंकर चौंक कर उठ खड़े हुए, "अरे, आठ बज गये, मैं तो भूल ही गया था!"

"क्यों, कौन आया है इस समय, किसी को समय दिया था क्या?" देवकी ने पूछा.

इसके पहले कि प्रभाशंकर देवकी के प्रश्न का उत्तर देते, बनवारी ने कमरे में आकर कहा, "रेखा मिस साहेब आयी हैं. उन्हें आपकी स्टडी में बिठला दिया है."

बिना इस बात की परवाह किये कि बनवारी उस कमरे में मौजूद है, देवकी बोल उठी, "क्यों, यह रेखा मिस साहेब कौन हैं? वह चुड़ैल श्यामा, क्या वह छोड़कर चल दी तुम्हें?" और प्रभाशंकर ने देखा कि देवकी के मुख पर कुटिल मुस्कराहट आ गयी है.

यह देवकी चार सौ मील का सफर तय करके आयी है अपने को उनके हाथों सौंप देने के लिए, अपने पति, अपने बच्चों को छोड़कर, उनके हाथों में अपने को सौंप देने के लिए या उनसे रुपया वसूल करने के लिए! प्रभाशंकर के मुख पर एक हल्की-सी व्यंग्यात्मक मुस्कराहट आयी देवकी के आर्थिक दृष्टिकोण पर. यह रेखा उस देवकी की तुलना में कितनी महान है. और प्रभाशंकर की आंखें रजिस्टर से उठकर रेखा के मुख पर जम गयीं.

रेखा ने विस्मय के साथ अपने सामने खड़ी हुई स्त्री को देखा—अधेड़-सी औरत जो किसी हद तक सुंदर कही जा सकती थी. रेखा को पता था कि प्रभाशंकर विधुर हैं, फिर इतने अधिकार के साथ बात करनेवाली यह औरत कौन हो सकती है? और देवकी ने जो बात कही थी उसमें सुरुचि की सीमा का अतिक्रमण भी था. वह स्त्री रेखा को अच्छी नहीं लगी. रेखा वहां से चली आयी.

तीसरे परिच्छेद की समरी बनाकर अगले रविवार को जब रेखा डाक्टर प्रभाशंकर के यहां पहुंची, वह अपनी स्टडी में बैठे हुए मानो रेखा की प्रतीक्षा ही कर रहे थे.

रेखा का रजिस्टर खोलते हुए अनायास ही प्रभाशंकर पूछ बैठे, "लेकिन मिस भारद्वाज, तुमने मुझसे यह नहीं पूछा कि वह महिला कौन थी."

प्रभाशंकर को लगा कि रेखा ने जबरदस्ती अपनी खिलखिलाहट रोक दी, पर उन्होंने यह भी देखा कि रेखा के मुख पर वही मुस्कराहट कुछ और अधिक प्रस्फुटित हो गयी है. रेखा बोली, "यह भी कोई पूछने की बात है सर? वह आपकी बहन हो नहीं सकती, वह आपकी कोई निकटस्थ रिश्तेदार भी नहीं हो सकती. अगर वह आपकी कुछ भी हो सकती है तो आपकी कमजोरी."

रेखा की बात सुनकर प्रभाशंकर स्तब्ध रह गये, इतनी खूबसूरती के साथ वह कुरूप सत्य प्रकट किया गया था. इस बात में रेखा की बुद्धिमानी ही नहीं टपकती थी, इसमें प्रभाशंकर के प्रति असीम सहानुभूति भी थी. प्रभाशंकर ने रेखा के रजिस्टर पर अपनी नजर गड़ाते हुए एक ठंडी सांस ली, "सच कहती हो रेखा भारद्वाज, वह मेरी कमजोरी ही है, जिसे मैंने समस्त बल लगाकर उस दिन दूर किया था." और न जाने कैसे प्रभाशंकर के हाथ में रेखा का हाथ आ गया था, उनकी आंखों में पानी भर आया था. रेखा का मुख झुका हुआ था. प्रभाशंकर ने रेखा का सिर ऊपर उठाया, रेखा की आंखों में आनंद के आंसू छलक रहे थे. फिर प्रभाशंकर का मुख झुका, और अचानक प्रभाशंकर के अधर रेखा के अधरों से मिल गये.

रेखा ने अपना मुख हटाया नहीं, उसकी आंखें अवश्य बंद हो गयीं. प्रभाशंकर के दोनों हाथों ने अब रेखा के शरीर को आलिंगन-पाश में कस लिया था. उनके अधरोंवाला दबाव अब प्रबल होता जाता था और रेखा वैसी की वैसी अपने अंदरवाले आनंद में डूबी हुई निश्चेष्ट खड़ी थी. स्निग्ध सांस, शीतल होंठ. जबकि प्रभाशंकर का शरीर जल रहा था, उनके होंठ जल रहे थे, उनकी सांसें जल रही थीं.

और तभी रेखा ने अपने होठों को प्रभाशंकर के होंठों से अलग करते हुए कहा, "सर, आप कितने अच्छे हैं."

एकाएक प्रभाशंकर ने रेखा का हाथ पकड़ लिया और कह उठे, "रेखा, मुझे क्षमा करना. . . पर मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि मैं तुमसे प्रेम करता हूं."

"मैं जानती हूं, प्रोफेसर." और रेखा ने अब अपनी नजर उठाकर प्रभाशंकर को भरपूर देखा, "मेरे ऊपर अपने असीम विश्वास से, मुझ पर अपनी देखभाल का पूरा भार डालकर आप यह स्पष्ट कर चुके हैं. और आपका प्रेम पाकर मैं अपने को धन्य समझती हूं."

प्रभाशंकर ने मौन भाव से कुछ देर तक रेखा को देखा, फिर वह कांपती आवाज में बोल उठे, "रेखा, सच-सच बतलाना क्या तुम भी मुझसे प्रेम करती हो?"

रेखा मुस्करायी, "पता नहीं मैं आपसे प्रेम करती हूं प्रोफेसर या नहीं, लेकिन इतना निश्चित है कि मैं आपका प्रेम पाने की इच्छुक हूं और आपका प्रेम पाकर प्रसन्न हूं. शायद नारी का प्रेम पुरुष का प्रेम पाने की भावना हो, नारी तो अनुगमन करना चाहती है. और प्रोफेसर, मैं तो न जाने कब से आपकी अनुगामिनी बन चुकी हूं."

कुछ रुक कर प्रभाशंकर ने अपनी आखिरी बात कही, "रेखा, मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूं, तुम्हें स्वीकार है?"

और रेखा ने अपना सिर प्रभाशंकर के वक्ष पर रख दिया, "मैं आपकी हूं प्रोफेसर."

शादी की उम्र क्या होनी चाहिए? इस बारे में शास्त्रों का अपना नियम है और कानून का अपना मत. . .फिर भी क्या वजह है कि स्त्री-पुरुष का मानसिक संसार, संसार के हर नियम और कानून को ताक पर रखकर आगे बढ़ जाता है?—प्रस्तुत है प्रख्यात कथाकार के उपन्यास का सार-संक्षेप कि स्त्री-पुरुष के संबंध में उम्र का तकाजा कितना जरूरी है, कितना गैरजरूरी और कि ऐसे संबंध अंततः क्या दे जाते हैं और क्या कुछ ले जाते हैं! . . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमानुसार रेखा की आंख साढ़े-पांच बजे खुल गयी, और उसे लगा कि उसके सिर में हल्का हल्का दर्द हो रहा है. घना अंधेरा छाया हुआ था चारों ओर, रेखा ने लेटे-ही-लेटे बिजली जलायी. बगल में प्रभाशंकर गहरी नींद सो रहे थे, सिर तक रजाई ओढ़े और उनकी नाक हल्के-हल्के बोल रही थी. रात के एक बजे पति-पत्नी एक ड्रामा देखकर लौटे थे और दोनों को जबरदस्ती उस ड्रामे में अंत तक बैठना पड़ा था.

वह मुश्किल से पांच-छ: मिनट बैठी होगी कि उसे बाहर से आवाज सुनायी पड़ी, "तार."

रेखा ने उठकर ड्राइंग रूम का दरवाजा खोला, रात उतनी ही भयावनी और काली थी. हां, अब सड़क पर इक्के-दुक्के आदमी साइकिलों पर या पैदल चल रहे थे. रेखा ने तार के कागज पर दस्तखत करके तार ले लिया. वह अमरीका से आया हुआ केबलग्राम था—प्रभाशंकर के नाम नहीं, रेखा के नाम.

वह अरुण का केबलग्राम था. तीन सप्ताह के लिए वह हिंदुस्तान आ रहा था छुट्टी लेकर अपने माता-पिता से मिलने. उसके साथ उसका एक मित्र भी था.

कस्टम आदि से फुरसत पाकर जब अरुण अपने साथी के साथ रेखा की तरफ बढ़ा, रेखा, दौड़कर अपने भाई के गले से लिपट गयी. अरुण ने हंसते हुए कहा, "कहो रेखा शंकर, तो तुम आ गयीं. मैंने तुम्हें पहचाना ही नहीं दूर से, तुम तो बिल्कुल बदली हुई लगती हो. फिर मैं समझता था तुम्हारे साथ वह खूबसूरत-सा प्रोफेसर भी होगा, लेकिन तुम यहां अकेली एक तरफ दुबकी-सी पड़ी हो."

रेखा ने अब अरुण के साथी को देखा. मझोले कद का तगड़ा-सा युवक, रंग कुछ सांवला, आंखें बड़ी-बड़ी और बाल घुंघराले और काले. अरुण ने अपने साथी से कहा, "ओह गलती हो गयी, यही मेरी बहन रेखा है—रेखा शंकर. और यह हैं सोमेश्वर दयाल. इनकी न्यूयार्क में कपड़ों की बहुत बड़ी दूकान है."

शांत भाव से सोमेश्वर दयाल ने रेखा का अभिवादन किया. रेखा ने उस अभिवादन का उत्तर देते हुए कहा, "भइया तो घर जायेंगे अम्मा बाबूजी के पास. मेरे ही यहां ठहरिए चलकर, आपको किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी."

ड्राइंग-रूम में सोमेश्वर के साथ बैठते हुए रेखा ने पूछा, "कहिए, आज शाम का क्या प्रोग्राम है आपका?"

सोमेश्वर मानो सोते-सोते चौंक उठा हो, "मेरा प्रोग्राम. वह तो मैंने अभी तक नहीं बनाया है."

"तो अगर मैं आपसे कहूं कि हम लोग एक पिक्चर देख आयें तो कैसा रहेगा. कल प्रोफेसर ने मुझसे कहा था कि वह मुझे आज उस एकेडमी अवार्ड वाली पिक्चर में ले जायेंगे, लेकिन उन्हें तो आगरा चले जाना पड़ा."

होटल में पहुंचकर दोनों लाऊंज में बैठ गये. सोमेश्वर ने बैरा को बुलाकर आर्डर दिया, "एक बड़ा स्कॉच." और फिर उसने रेखा की ओर देखा, "साथ देने के लिए शेरी भी आपके लिए मंगवा लूं?"

"जब साथ देना है, तब पूरी तौर से ही दिया जाये. मैं भी स्काच ही लूंगी, देखूं कैसी होती है." रेखा बोल उठी.

"दो ले आना." सोमेश्वर ने कहा और फिर वह चुपचाप अपने में खो-सा गया.

कार जब रेखा के बंगले में पहुंची, वहां सन्नाटा छाया था. बनवारी शायद सो रहा था. रेखा ने अपनी तरफवाला कार का दरवाजा खोला और बड़ी मुश्किल से नीचे उतरी. तब तक सोमेश्वर उसकी बगल में आ गया था. उसने रेखा को सहारा दिया.

सोमेश्वर के उस स्पर्श से रेखा के शरीर में एक कंपकंपी-सी उठ पड़ी. सहारा—सहारा—रेखा ने अनुभव किया कि सहारा किसको कहते हैं. वह सोमेश्वर के हाथों पर जैसे झूल-सी गयी. कितनी बलिष्ठ बांहें हैं उसकी. ड्राइंगरूम में पहुंचकर रेखा सोमेश्वर के शरीर के सहारे खड़ी हो गयी. वह मुस्करा रही थी, "कितने अच्छे हैं आप. मैं बेहोश नहीं हूं, न मुझे नींद आ रही है. मुझे आपका यह सहारा कितना अच्छा लगा, मैं कह नहीं सकती."

एकाएक सोमेश्वर ने कसकर रेखा को आलिंगन-पाश में जकड़ लिया. रेखा घबरा गयी, "यह क्या कर रहे हैं आप, मुझे छोड़िए, मैं कहती हूं मुझे छोड़िए. यह बड़ा गलत काम है." रेखा केवल कह रही थी यह सब. जहां तक शरीर का संबंध था, वह असीम सुख का अनुभव कर रहा था, वह शरीर जैसे सोमेश्वर के शरीर से पृथक होने के स्थान पर उससे लिपटता जा रहा था.

सुबह जब रेखा सोकर उठी उसका मन भारी था. रात में वह बड़ी देर तक जागती रही थी, एक अजीब तरह की अतृप्ति की छटपटाहट लिये हुए. और उसकी बगल में प्रभाशंकर गहरी नींद में सो रहे थे. प्रभाशंकर के पास जो कुछ था, वह रेखा के उनके जीवन में आने के पहले ही लुट चुका था, और उसे पाने के लिए रेखा के मन में कितनी अभिलाषा थी? इस छटपटाहट में उसे नींद किस समय आयी, उसे पता नहीं —अजीब दु:स्वप्नों से भरी नींद. और सुबह जब उसकी आंख खुली, उसने देखा कि प्रभाशंकर का खोखला शरीर उसकी बगल में लेटा हुआ है—थकावट से भरा हुआ, शिथिल.

कपड़े बदलकर निढाल और टूटी हुई रेखा पलंग पर लेट गयी. उसे समय का बोध नहीं था, वातावरण का बोध नहीं था. एक दु:स्वप्नों से भरी बेहोशी जैसे उस पर चली जा रही हो. जो कुछ हो रहा है वह सब गलत है, जो कुछ हो चुका है, वह सब गलत था...

अर्धचेतन अवस्था में रेखा यह सब सोच रही थी, और उस पर एक तरह की तंद्रा छाती चली जा रही थी. तभी उसे एक झटका-सा लगा. बरामदे में उसे प्रभाशंकर की आवाज सुनायी दी, "अब मेरी तबीयत बिल्कुल ठीक है. तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद. अब तुम घर जाओ, मैं सुबह तक एकदम ठीक हो जाऊंगा."

"नहीं प्रोफेसर, मैं अभी डाक्टर को बुलाता हूं. दवा वगैरह का इंतजाम करके ही मैं जाऊंगा." एक दूसरा स्वर रेखा को सुनायी पड़ा.

रेखा की तंद्रा तत्काल टूट गयी, हड़बड़ाकर वह उठ बैठी और उसने कमरे का दरवाजा खोला. उसने देखा कि एक आदमी प्रभाशंकर को सहारा दिये हुए उसके कमरे के द्वार पर खड़ा है. दरवाजा खुलते ही उस आदमी के साथ प्रभाशंकर ने कमरे में प्रवेश किया. प्रभाशंकर के पैर लड़खड़ा रहे थे—रेखा ने देखा, उसने प्रभाशंकर को कुर्सी पर बैठाया.

पलंग पर लेटकर प्रभाशंकर ने कहा, "तुमने मेरी बड़ी मदद की डाक्टर, रेखा, यह डाक्टर योगेंद्रनाथ मिश्र हैं, यहां दर्शनशास्त्र के लेक्चरर. अभी साल भर पहले जर्मनी से डाक्टरेट लेकर आये हैं."

रेखा ने अब योगेंद्रनाथ मिश्र को ध्यान से देखा—तीस-बत्तीस साल का आदमी, गेहुंआ रंग, लेकिन मुखाकृति में एक प्रकार की सौम्य प्रतिभा. रेखा को लगा कि उसने इस नाम को पहले कभी सुना है. उसने पूछा, "क्या इनका विषय 'गीता में नियतिवाद' तो नहीं था?"

प्रभाशंकर के मुख पर एक क्षीण मुस्कान आयी, "सुना डाक्टर, रेखा तुम्हारा नाम जानती है, उसे तुम्हारी विद्वत्ता और योग्यता का पता है. यह एम.ए. में फर्स्ट क्लास फर्स्ट आयी थी, लेकिन विवाह के बाद इसकी पढ़ने-लिखने की रुचि जाती रही."

योगेंद्रनाथ एकटक रेखा को देख रहा था, कुछ अजीब-सी उलझन मन में लिये. कितनी मोहक थी रेखा. कितनी आकर्षक चमक थी रेखा की बड़ी-बड़ी आंखों में. एक उल्लास का अनुभव किया योगेंद्रनाथ ने.

डाक्टर मिश्र ने कहा, "मैं बाहर लाउंज में जा रहा हूं, डाक्टर की प्रतीक्षा में. वह आता ही होगा." डाक्टर मिश्र कमरे से बाहर चले गये. योगेंद्रनाथ के जाने के बाद प्रभाशंकर ने कहा, "बड़ा नेक आदमी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह, और साथ ही बड़ा ब्रीलियेंट. दुनियादारी इसे आती ही नहीं. इसे यहां रीडर की पोस्ट मिलनी चाहिए, लेकिन तुम जानती ही हो कि हर जगह खुशामद चलती है, सिफारिश चलती है, जोर चलता है. इस आदमी के पास सिवाय इसकी योग्यता के और कुछ नहीं है.आगे चलकर यह आदमी मेरा स्थान लेगा, मुझे इस बात का पूरा विश्वास है."

रेखा ने प्रभाशंकर की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया. वह प्रभाशंकर के पैताने बैठकर उनके पैर दबाने लगी.

रेखा को जैसे किसी ने डंक मार दिया हो. प्रभाशंकर यह क्या कह रहे हैं? क्या प्रभाशंकर अपने शब्दों का अर्थ समझ रहे हैं? क्या उनके अनजाने ही उनके मुख से नियति बोल रही है? मर्माहत-सी वह कुर्सी पर लुढ़क गयी. उसकी आंखें स्वयं ही मुंद गयीं और उसका मुख पीला पड़ गया.

प्रभाशंकर रेखा की बगल में लेटे हुए सो रहे थे और वह करवटें बदल रही थी. उसने देखा कि प्रभाशंकर का मुख बिल्कुल निस्तेज हो गया है, उनके मुख पर झुर्रियां पड़ गयी हैं, मानो बुढ़ापे ने एकबारगी ही उन पर हमला कर दिया हो. अभी कुल चार साल हुए थे प्रभाशंकर से उसका विवाह हुए. वह विकास के क्रम में थी, और प्रभाशंकर तेजी के साथ ह्रास के मुख में चले जा रहे थे. जब उसने प्रभाशंकर से विवाह किया था, प्रभाशंकर के ह्रास का काल आ गया था, जबकि वह नितांत अविकसित और अबोध थी. इतने थोड़े-से समय में उसके सब सपने नष्ट हो गये. उसने प्रभाशंकर को आत्मसमर्पण कर दिया था. प्रभाशंकर का धर्म था कि वह उसे बचाते, लेकिन बचाने के स्थान पर प्रभाशंकर ने उसका जीवन ही नष्ट कर दिया.

एक भयानक ग्लानि भर गयी थी उसमें अपने प्रति, साथ ही उसे क्रोध भी आ रहा था अपने ऊपर—इतना नहीं जितना प्रभाशंकर के ऊपर. यह आदमी उसके जीवन में क्यों आया? इस आदमी को उसके जीवन में आने का कोई अधिकार नहीं था. उसके जीवन में प्रभाशंकर के अनधिकार प्रवेश का कोई प्रतिरोध वह कर सकती है—वह कर भी रही है. लेकिन इस प्रतिरोध का कितना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ रहा है उसे. यह प्रतिरोध भी कैसा है? एक भय, एक आशंका, एक छलना और घुटन से भरी जिंदगी. रेखा अपने अंदर ही सिहर उठी. यह सब क्या हो रहा है? यह सब क्यों हो रहा है?

प्रभाशंकर ने करवट बदली. धीरे-धीरे उनकी सांसें भारी होती गयीं. और वह सो गये. रेखा ने अब वेदना की एक गहरी सांस ली. उसका मन अब बहुत भारी हो गया था. योगेंद्रनाथ मिश्र उसके मस्तिष्क से हट गया था, एक प्रभाशंकर—टूटा हुआ निरीह प्रभाशंकर—अब उसके ध्यान में था, और रेखा के मन में एकमात्र संवेदन से भरा परिताप था. धीरे-धीरे रेखा की आंखें झपने लगीं.

सुबह हावड़ा मेल से प्रभाशंकर को विदा करके रेखा योगेंद्रनाथ के घर पहुंची.

मेज पर खाना लगाकर योगेंद्रनाथ के साथ बैठती हुई रेखा बोली, "मैं कहने आयी थी कि प्रोफेसर को एक आवश्यक कार्य से आज सुबह इलाहाबाद चले जाना पड़ा. वह मुझसे कह गये हैं कि तुम्हें बतला दूं. एक हफ्ता लग जायेगा उन्हें वहां."

"बस इतनी-सी बात? तुम्हें देखकर तो मैं घबरा गया था कि क्या मुसीबत आ पड़ी." योगेंद्रनाथ मिश्र ने खाते हुए कहा, "आज दो दिन बाद खाने में स्वाद मिल रहा है मुझे. लेकिन यह खाना भरपेट नहीं मिल सकेगा मुझे इस बात का दुख है." योगेंद्रनाथ के मुख पर एक मुस्कराहट आ गयी.

"इसमें दुःख की क्या बात है, डाक्टर—तुम समझ लो कि तुमने इस समय नाश्ता ही किया है. आज दोपहर को लंच मेरे यहां लेना. तुम्हारा चौथा पीरियड तो खाली है, मैं तुम्हें कार पर यूनिवर्सिटी से ले आऊंगी."

उठते हुए योगेंद्रनाथ ने कहा, "रेखा, तुम जानती हो कि तुम क्या कर रही हो?"

"हां जानती हूं—अच्छी तरह जानती हूं. प्रोफेसर ने खुद मुझसे कहा है कि तुम उनके स्थान पर हो डाक्टर."

रेखा ने डाइनिंग टेबल पर चाय लगा दी थी. प्रभाशंकर चुपचाप मेज के सामने बैठ गये. रेखा ने चाय बनाते हुए कहा, "लेकिन बात क्या है, जरा मैं भी तो सुनूं? आखिर आपके विचलित होने का कोई विशेष कारण होगा. क्या यूनिवर्सिटी में कोई अप्रिय घटना हो गयी?"

प्रभाशंकर की भौंहें अब तनी हुई थीं, एक अस्फुट-सा स्वर उनके मुख से निकला, "अप्रिय." और फिर जैसे मौन ने उनके होंठों को जकड़ दिया हो. उन्होंने आंखें नीची कर लीं और वह चुपचाप चाय पीने लगे.

दादा जी

▣ सुकेश साहनी

मैं जब घर पहुंचा तो दादा जी बरामदे में बैठे धूप सेंक रहे थे. दो महीने पहले भइया की चिट्ठी मेरे पास आयी थी, लिखा था—दादाजी सख्त बीमार हैं, चल फिर नहीं सकते, हाथ पैरों में सूजन आ गयी है, जबान लड़खड़ाने लगी है आदि-आदि. घर लौटते हुए मेरा दिल बराबर इस आशंका से धड़कता रहा था कि शायद दादाजी के दर्शन न हों. लेकिन दादाजी को सही सलामत देखकर मुझे बेहद खुशी हो रही थी. अब, जबकि बाबूजी एवं मां जीवित नहीं थे, दादाजी की सारी जिम्मेवारी वैसे भी हम दोनों भाइयों पर थी.

मैंने आगे बढ़कर दादाजी को प्रणाम किया. उन्होंने आंखें मिचमिचाकर मुझे देखा, पहचाना और फिर आशीर्वाद की मुद्रा में अपना कांपता हाथ मेरे सिर पर रख दिया. नजदीक से देखने पर मुझे बाबाजी की आंखें बुझी-बुझी और चेहरा बेहद उदास मालूम हुआ.

भीतर भाभी अकेली थीं. भइया ड्यूटी पर चले गये थे. इकलौता राहुल स्कूल गया हुआ था. आज उसका रिजल्ट निकलने वाला था. भाभी मेरे लिए चाय-नाश्ता बनाने में व्यस्त हो गयी थीं. एक बात मुझे बेतरह खटक रही थी कि दादाजी का जिक्र आते ही भाभी के चेहरे पर विचित्र-सी कठोरता क्यों आ गयी थी. भाभी चाय लेकर लौट आयी थीं. तभी राहुल ने भीतर प्रवेश किया. मुझे देखकर एक पल के लिए ठिठका और फिर दौड़कर अपनी मां के पास पहुंच गया. उसके चेहरे से साफ मालूम दे रहा था कि वह फेल हो गया है. भाभी परीक्षाफल उसके हाथ से छीनकर देखने लगी थीं.

"मम्मी, इसमें मेरी कोई गलती नहीं है. सब दादाजी की वजह से हुआ है." वह सहमी हुई आवाज में कह रहा था.

"नालायक! एक तो फेल हो गया है ऊपर से बातें बना रहा है." भाभी ने 'तड़ाक' से एक झापड़ राहुल के जड़ दिया था.

राहुल फूट-फूटकर रोने लगा था, 'रोते-रोते कह रहा था, "तुम्हीं तो पड़ौस वाली आनंद आंटी से कह रही थीं कि 'बीमार बूढ़ा मरते-मरते बच जाये तो घर में कुछ अशुभ होता है. देखो, हमारे घर पर मुसीबत आती है," कहकर राहुल और भी जोर जोर से रोने लगा था.

मैं अवाक था. फटी-फटी आंखों से कभी राहुल को तो कभी भाभी को देखे जा रहा था. □

● ई—144, कमला नगर, आगरा-5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाशंकर का यह व्यवहार रेखा की समझ में न आ रहा था. सुबह जब रेखा प्रभाशंकर को भेजने के लिए उनके साथ यूनिवर्सिटी गयी थी, उस समय प्रभाशंकर कितने प्रसन्न थे. कुछ घंटों में ही प्रभाशंकर का मूड कैसे बदल गया? उसने चिंतित होकर पूछा, "आप बतलाते क्यों नहीं? क्या बात है? क्या यूनिवर्सिटी में आपका किसी से झगड़ा हो गया?"

रेखा को इस बार भी प्रभाशंकर ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप अपने में ही बंद सोच रहे थे, जैसे मन-ही-मन उन्होंने कोई निर्णय ले लिया हो. उन्होंने अपनी आंखें उठायीं, रेखा की ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए कुछ दृढ़ स्वर में बोले, "मैं समझता हूं कि तुम्हें डाक्टर मिश्र के साथ मिलना-जुलना बंद कर देना होगा. बात बढ़ गयी है."

रेखा चीख उठी, "तो मेरे ऊपर जो कलंक लगाया जा रहा है उसे आप भी सही समझते हैं? आप मुझ पर विश्वास नहीं करते?"

रेखा की इस उत्तेजना से प्रभाशंकर और भी उत्तेजित हो उठे. उन्होंने बड़े बड़े शब्दों में कहा, "जो कुछ मुझे कहना था वह मैं कह चुका हूं. अब तुम चुप रहो और सीधी तरह से घर पर बैठो."

"नहीं, मैं चुप नहीं रहूंगी. आप मेरी बात का जवाब दीजिए. बोलिए, क्या आप मेरे कलंक को सही समझते हैं?"

प्रभाशंकर तमतमाकर उठ खड़े हुए, "चुप रहोगी या मार खाओगी."

"नहीं, मैं चुप नहीं रहूंगी."

प्रभाशंकर का धैर्य जैसे छूट गया, आगे बढ़कर उन्होंने रेखा के गाल पर एक भरपूर तमाचा मारा. वह तमाचा खाकर रेखा लड़खड़ाकर गिर पड़ी. प्रभाशंकर अपनी स्टडी में चले गये.

अंदर ही अंदर एक संघर्ष और विद्रोह. प्रभाशंकर के निकट आने का भरसक प्रयत्न करती हुई भी वह प्रभाशंकर के निकट नहीं आ पा रही थी. दिन पर दिन बीतते जाते थे और रेखा के अंदरवाली रिक्तता लगातार बढ़ती जा रही थी. अपने मन को मारकर, वह योगेंद्रनाथ से दूर हटकर प्रभाशंकर के पास आना चाहती थी. लेकिन कदम पीछे नहीं पड़ता.

रेखा ने योगेंद्रनाथ के कंधे पर अपना सिर रख दिया, "डाक्टर, किसी तरह मुझे बचाओ. मुझे अब ऐसा लगने लगा है कि मैं पागल हो जाऊंगी."

कुछ सोचते हुए योगेंद्रनाथ ने कहा, "अभी परसों ऑसलो यूनिवर्सिटी से मुझे आफर मिला है. मैं सोच रहा था कि अगर तुम भी मेरे साथ चलो तो कैसा रहेगा. ऑसलो में हम दोनों पति-पत्नी के रूप में रह सकते हैं, वहां का कानून इसके लिए छूट देता है. और मैं समझता हूं कि प्रोफेसर भी इस विधान से समझौता कर लेंगे."

आश्चर्य से योगेंद्रनाथ रेखा को जाते देख रहा था. उसने कुछ पूछने का अवसर ही नहीं दिया, लेकिन निर्णय लिया जा चुका था.

रेखा ने अपनी पूरी तैयारी कर ली थी. तैयारी ही क्या करनी थी उसे. थोड़े-से कपड़े और उसके गहने एक सूटकेस में वे सब आ गये. बाकी सब-कुछ वह यहीं छोड़ जायेगी, देवकी के लिए. इस सबकी उसके लिए कोई आवश्यकता नहीं थी.

रेखा चुपचाप बैठ गयी, कुल तीस-चालीस मिनट की बात, इसके बाद प्रभाशंकर अपनी हिंसा में अकेले घुटेंगे, उस हिंसा को वह नहीं बंटायेगी.

प्रभाशंकर का मुख एकाएक करुण हो गया. बड़े बुझे हुए स्वर में उन्होंने कहा, "रेखा, तुम्हारे कारण मैंने बहुत सहा है, लेकिन मैं तुम्हें दोष नहीं देता. मेरे कारण शायद तुमने इससे भी अधिक सहा है. तुमसे विवाह करके मैंने तुम्हारे प्रति बहुत बड़ा अन्याय किया, शायद एक तरह से मैंने तुम्हारे जीवन को नष्ट कर दिया."

"ऐसा न कहिए." रेखा ने कहा.

"नहीं रेखा, मैं सच कहता हूं कि मैं अपनी निराशाओं और असफलताओं से पागल हो गया हूं, और अपने ऊपर से अपना अधिकार खो बैठा हूं. तुम मेरी बातों का बुरा न मानना. मेरे कोई नहीं, एक तुम्हें छोड़कर, एक तुम्हारा ही सहारा है मुझे."

अब रेखा को अनुभव हुआ कि एक टूटा हुआ आदमी उसके सामने लेटा हुआ है—कितना निरीह और कितना दयनीय. इस आदमी को मृत्यु के मुख में और बेसहारा छोड़कर वह जा रही है. वह प्रभाशंकर की ही नहीं, अपनी आत्मा की हत्या करने पर तुल गयी है. उसने प्रभाशंकर का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, "आप बहुत जल्दी अच्छे हो जायेंगे, आप चिंता करना बिलकुल छोड़ दीजिए. मैं आपके पास हूं—आपके पास रहूंगी."

यह क्या कह गयी रेखा—उसने घड़ी देखी, नौ बज चुके थे. योगेंद्रनाथ उसकी प्रतीक्षा कर रहा होगा. करने दो उसे प्रतीक्षा, वह नहीं जा पायेगी, वह नहीं जायेगी प्रभाशंकर को छोड़कर, जो कुछ भी होना हो, वह हो.

प्रभाशंकर लेट गये. एकाएक उन्होंने पूछा, "देवकी ने चौदह तारीख को आने को कहा था, आज सत्रह तारीख है. अभी तक नहीं आयी."

"वह बीस तारीख को आ रही है, परसों उसका पत्र मिला था मुझे. अब इलाहाबाद में उसका है ही कौन. वह अपने बच्चों को साथ लेकर यहां रहने आ रही है, तो वहां की गृहस्थी उखाड़ने में कुछ समय तो लगता."

"अपने बच्चों को लेकर यहां रहने आ रही है, यह कैसे हो सकता है? उसकी मुझसे तो ऐसी बात नहीं हुई."

"मैंने उससे यह कहा है. उस बेचारी के तो ध्यान में ही यह नहीं आया था."

"तुम यह सब कहने वाली कौन होती हो? यह तुमने क्यों कहा?"

"इसलिए कि देवकी के बच्चे आपके ही तो बच्चे हैं. . ."

रेखा ने अपनी बात पूरी भी न की थी कि प्रभाशंकर भड़क उठे, "निकल यहां से हरामजादी कहीं की. अपने कलंक को लेकर मैं रहूं—तू यह चाहती है. आने दे देवकी को. . . ." और प्रभाशंकर ने अपनी आंखें बंद कर लीं.

मर्माहत-सी रेखा कमरे के बाहर निकल आयी. उसने घड़ी देखी, दस बजकर दस मिनट हो चुके थे.

तो इस पशु के साथ रहने के लिए, इस स्वार्थी और अपने में केंद्रित मनुष्य की सेवा करने के लिए वह अपना जीवन नष्ट कर रही है.

वह पालम एरोड्रोम के पास पहुंच रही थी—उसे दूर से एयरोड्रम की बीमन लाइट दिखायी दे रही थी, और उसने घड़ी देखी—ग्यारह बज रहे थे. उसने कार और तेज की.

वह मना रही थी कि हवाई जहाज देर से छूटे यहां से—एरोड्रोम का फाटक दीख रहा था. उसने कार रोकी—एक आवाज—कारवली—बंद हुई, दूसरी आवाज बहुत अधिक तेज, बहुत अधिक कर्कश, बहुत अधिक भयानक उसे सुनायी दी. तेजी से वह कार से उतरी—और उसने देखा कि हवाई जहाज जमीन से ऊपर उठ रहा है—ऊपर उठ रहा है.

रेखा खड़ी हो गयी. घोर निराशा—जिसमें वह अपनी चेतना खो बैठी. और फिर आप ही आप उसने हवाई जहाज की ओर अपने हाथ जोड़ दिये—योगेंद्रनाथ को आखिरी विदा देने के लिए.

यंत्र की भांति वह गाड़ी में बैठ गयी और उसने अपनी कार घर की ओर मोड़ दी.

उसने बंगले में प्रवेश किया—और एक आशंका से वह सिहर उठी. कंपाउंड में एक कार खड़ी थी, घर के अंदर से कुछ आवाजें आ रही थीं. घबराकर वह प्रभाशंकर के कमरे की ओर दौड़ी. और रेखा को देखते ही बनवारी फूट पड़ा. "आप कहां थीं, बीबीजी? साहेब गये, आपको ढूंढते-ढूंढते साहेब चले गये. जब मैं कमरे में आया, साहेब जमीन पर पड़े आपको पुकार रहे थे." ☐

संक्षिप्त रूपांतर : कांता चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोने जैसी औरत

नछत्तर

कई ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी यह रिवाज है कि पति-पत्नी साथ-साथ नहीं, आगे-पीछे कुछ दूरी रखकर चलते हैं. इस संदर्भ में क्या आपने कभी गौर किया है कि जब एक नव दंपत्ति पहली बार इस तरह से चले जा रहे हों तो वे मन ही मन में क्या कुछ सोचा करते हैं?—प्रस्तुत है इसी दृश्य के माध्यम से स्त्री-पुरुष के निजी और सामाजिक संबंधों से उजागर हुई स्थितियों को रेखांकित करती, पंजाबी के युवा-कथाकार की मार्मिक कहानी....

रेशम के बाग के समीप आकर तो जैसे जिंदर के पैर जस के तस धरे रह गये. अब तो उससे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया जा रहा था.

उसे भीतर प्यास-सी लगने लगी और लगा कि वह अभी चक्कर खाकर गिर पड़ेगी. उसने बाग के एक-एक वृक्ष को बहुत ध्यान से देखा. उसे लगा, वृक्ष भी उसे देख-देखकर रो रहे हैं मानो उन्हें भी उसके बारे में सब कुछ मालूम हो. वृक्षों के झुरमुट में कूकती कोयल भी उसे रोती-रोती-सी प्रतीत हुई.

विचारों को परे छोड़ते उसने जल्दी-जल्दी चले जा रहे अपने पति की ओर देखा. खुद को काफ़ी पीछे रह गयी पाकर, वह तेज-तेज कदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठाने लगी. पर उसके पैर तो पीछे ही पीछे पड़ते जा रहे थे. कौरे ने भी उसे दूर रह गयी देख, एक-दो बार पीछे पलटकर देखा, पर वह क्या कर सकती थी. इस अतीत को वह इतनी जल्दी कैसे छोड़ सकती थी जहां उसने अपना बचपन 'अड्डी-टप्पा' खेलते बिताया था. और जवानी में कूंज की तरह गांव के वातावरण में उड़ानें भरी थीं. गिझण में उसके गीतों के अलापों के चरचे उसके चले जाने के बाद भी हुआ करेंगे. वृक्षों के तनों पर बैठ, गांव के बेकार लोग तो अब भी उसे याद कर-करके चबा-चबाकर बातें किया करेंगे. और अंदर ही अंदर रोती उसकी मौसी करतारो तो बस, डूब-डूब जायेगी. मौसी-मौसा का एकमात्र सहारा जिंदर ही थी जिसके सिर पर वे उड़े-उड़े फिरते थे. अब तो जैसे उनके पंख ही काट दिये गये हों. अब वे किसके सहारे जियेंगे? . . यह विचार आते ही जिंदर की उसांस-सी निकल गयी!

"पानी तो नहीं पीना?" आगे-आगे जा रहे कौरे ने पगडंडी के पास लगे बरमे के समीप पहुंचकर पूछा.

"नहीं." भले ही काफी देर से उसके होंठ सूख रहे थे पर उसके मुंह से पता नहीं कैसे 'न' ही निकल गयी.

कौरे ने बरमा चलाने के लिए उसका हत्था अभी पकड़ा ही था कि जिंदर का जवाब सुनकर वह भी प्यासा ही आगे बढ़ गया.

उसे बिना पानी पीये ही चलता पाकर जिंदर को पहली बार उस पर तरस-सा आया. जब कौरे ने ताजी कटी मूंछों में मुस्कराते जिंदर को पानी पीने के लिए पूछा था तो उसके चेहरे पर खुशी का एक समंदर ठाठें मार रहा था, पर उसकी 'न' सुनकर उसका रंग और भी स्याह हो गया. जिंदर उसके चेहरे की ओर देख, मन ही मन सोचने लगी कि उसे इंकार नहीं करना चाहिए था.

जिंदर को उसकी मौसी करतारो तभी ले आयी थी जब वह दुधमुंही थी. बहुत टोने-टोटके करने के बाद भी उनके कोई बच्चा नहीं हुआ था. एक दिन करतारो ने पैंतीस पार को पहुंच चुके पाखर से जिंदर को ले आने के विषय में बात की तो वह सोच में पड़ गया था कि क्या सलाह दे. पर करतारो के बार-बार जोर देने पर उसे 'हां' करनी ही पड़ी. . .और करतारो अपनी बड़ी बहन शामों से जिंदर को ले आयी.

फिर तो करतारो को जैसे चाव चढ़ गया! . अंदर-बाहर आते-जाते पाखर भी जब जिंदर को उठाता तो दिन भर की थकान होने पर भी अपने-आपको हल्का महसूस करने लगता. घर में रौनक आ गयी. जिंदर को उठाने के बहाने पास-पड़ोस की लड़कियां भी उसके घर चक्कर लगाने लगीं. जिंदर थी भी गोल-मटोल और बहुत सुंदर. इसलिए उसे हर कोई उठा लेता. वह भी किसी को अजनबी नहीं समझती थी.

"थक तो नहीं गयी?" सड़क पर चढ़कर जूती झाड़ते हुए कौरे ने जिंदर के भोले-से चेहरे की ओर देखकर पूछा.

जिंदर ने इंकार में सिर हिला दिया. इस बार फिर जिंदर ने उसकी आंखों में उतर आयी उदासी को बहुत गौर से देखा.

शीशम के नीचे बने थड़े के पास जाकर, कौरे ने झोला उस पर रख दिया और स्वयं कुर्ते के बटन खोलकर शरीर को हवा लगवाने लगा. जिंदर भी धीरे-धीरे कदम उठाती थड़े के समीप आ खड़ी हुई.

"बैठना नहीं?" कौरा एक बार फिर चेहरे पर मुस्कान लाते हुए बोला. इस बार बिना ना-नुकुर किये वह बैठ गयी. जिंदर ने तिरछी नजर से उसके चेहरे की ओर देखा. इस बार उसकी आंखों में खुशी की लहरें उमड़ रही थीं. उसके चेहरे की कालिमा में से भी लाली झलक रही थी.

"बस-बुस कोई आती दीखती ही नहीं!" कौरे ने सड़क पर जाकर, पश्चिम की ओर दूर तक देखते हुए कहा.

जिंदर ने गर्दन घुमाकर गांव की ओर देखा. अंतिम प्रहर का सूर्य थका-मांदा-सा नीचे ही नीचे उतरता जा रहा था. गांव से थोड़ी ही दूरी पर सरदारों का बाग आज भी उसी तरह हंस रहा था. जिंदर को लगा जैसे वह उसकी विवशता पर हंस रहा है और गांव के वे घर जहां उसने अभी तक की उम्र बितायी थी, सहमे हुए से बाग की ओर टकटकी बांधे देख रहे हैं.

सोलहवें साल में पहुंचते-पहुंचते जिंदर आकाश में उड़ानें भरने लगी थी. उसकी चढ़ती जवानी ने कितने ही लोगों के दिलों को झकझोर कर रख दिये थे. झुंड में बैठ बातें करती युवकों की टोली के मुंह पर बार-बार उसका ही नाम आता था, पर वह थी कि किसी को आंख के नीचे नहीं लाती थी.

पाखर पास के गांव में मिडल स्कूल में चपरासी लगा हुआ था. उसकी पगार से घर का छोटा-मोटा गुजारा चल जाता था. घर में एक भैंस भी रखी हुई थी. करतारो तो घर के काम-धंधे में ही उलझी रहती पर भैंस के लिए पट्ठे लेने जाती तो कभी-कभी सरदारों के बाग में छोटा-मोटा काम-धंधा भी करवा आती. गांव की और भी कितनी ही औरतें व लड़कियां बाग में काम करने जाया करती थीं पर करतारो अभी तक कभी भी जिंदर को अपने साथ लेकर नहीं गयी थी. चुहलबाजी करती जाती अपनी हमउम्र की लड़कियों को देख-देखकर जिंदर का भी मन चाहता कि वह भी उनके साथ बाग में काम करने जाया करे. एक तो मौसी को थोड़ा-बहुत सहारा हो जायेगा, साथ ही वह स्वयं भी हंस-खेल लिया करेगी. घर में खाली बैठी वह करती ही क्या है!

"मौसी, मैं भी चला करूं तुम्हारे साथ?" एक दिन जिंदर ने करतारो से पूछ ही लिया.

"तेरी मर्जी है बच्ची." करतारो का उत्तर सुनकर उसे मन मांगी मुराद मिल गयी. वह भी सरदारों के बाग में काम करनेवाली लड़कियों की पांत में जा मिली. जिंदर सभी लड़कियों में सुंदर थी और चुहलबाजी भी वह सब लड़कियों से ज्यादा किया करती थी. सिर के ऊपर से उड़े जा रहे तोतों की डारों के टहकने की आवाजों और आमों के वृक्षों पर कूकती कोयल के स्वर की तरह ही जिंदर की हंसी की झंकार भी अंगूरों की बेलों के ऊपर से होती हुई बाग के एक-एक वृक्ष से बातें करती रहती.

"नी कुतिए, इतना न हंसा कर. . . नजर लग जायेगी." तारो उसे हंसता देख कहा करती.

"कुछ नहीं होता." वह इस तरह बात करती मानो किसी नशे की लोर में बोल रही हो.

एक दिन मोटर पर नूरां के साथ पानी पीने आयी जिंदर को देख सरदारों का लड़का रेशम फिदा हो उठा था. पानी का एक-एक घूंट उसकी मोर जैसी गर्दन के नीचे उतरता देख उसकी सुध-बुध ही मारी गयी.

उन्हें लौटते देख रेशम ने नूरां से पूछा, "वह कौन है?"

जिंदर परे खड़ी बहती नाली में पैर डाल-डाल छपछपाती हुई चोर नजर से उनकी ओर भी देख रही थी.

"पाखर चपरासी की भांजी है." नूरां ने उत्तर दिया.

रेशम ने एक लंबी-सी आह भरी और जिंदर की ओर ऐसे देखा कि बस, आंखों ही आंखों में उसे पी जायेगा.

"क्या कहता था?" जिंदर ने नूरां से पूछा.

"तेरे बारे में पूछ रहा था."

"क्यों, मुझसे क्या लेना. . .?"

"कुछ लेना ही होगा!"

और जिंदर अब पहले से भी ज्यादा खुश रहने लगी. . . उसके तो जैसे धरती पर पैर ही न पड़ते हों. वह हवा में ही तैरती रहती. वह अपने-आपको बहुत खुशकिस्मत समझती थी कि इतने बड़े सरदारों का लड़का उस पर मर-मर जाता है.

"अगर बस आ जाती तो अब तक हम कभी के गांव पहुंच गये होते." चुपचाप खड़े कौरे ने अपने-आपको सुनाते हुए कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौरे का बोल सुन जिंदर को लगा जैसे किसी ने उसे गहरी नींद से झिंझोड़कर जगा दिया है. उसने सिर से सरक गयी चुन्नी को ठीक किया और पसीने से भीगे चेहरे को रूमाल से पोंछा. पसीने के कारण उसकी आंखों का सारा काजल फैल गया था.

कौरा जिंदर के समीप आ, थड़े पर एक पांव रखकर खड़ा हो गया. उसने दाहिनी मूंछ को मरोड़ते हुए कहा, "जिंदरे, तेरी सहेलियां बहुत खराब है साली...!"

जिंदर आंखों में ही हंसकर रह गयी.

"जीजा-जीजा करती सभी ने खाल में फेंक देना था." थड़े पर ठीक तरह से बैठते हुए उसने फिर कहा.

इस बार तो जिंदर की भी बरबस हंसी निकल पड़ी. पहली बार कौरे ने जिंदर के मोतियों जैसे दांतों में से झलकती हंसी देखी.

जिंदर को उन दिनों की याद आयी जब वह हंसना बिल्कुल ही भूल गयी थी. उस समय उसे लगा था जैसे वह कभी भी हंस नहीं पायेगी.

"रेशमा, दो महीने से ऊपर हो गये. एक दिन जिंदर की यह बात सुन रेशमा के चेहरे का रंग एकदम ही फक्क हो गया था पर वह तुरंत ही संभल गया, "तू घबराती क्यों है? मैं कल ही दवाई ला दूंगा. चार दिनों में ही ठीक हो जायेगी."

"तू मुझे कहीं ले चल. मुझे तो अब यहां डर-सा लगता है."

"अच्छा, अब तू घर जा. मैं तुझे कल बताऊंगा."

पर उस दिन के बाद वह कई दिन बाग में दिखायी नहीं दिया. पंद्रह-बीस दिन और निकल गये. अब जिंदर के चेहरे पर हंसी की जगह उदासी ने घेर ली थी. वह हर समय विचारों में उलझी रहती. उसने बाग में काम पर जाना भी बंद कर दिया. बस, घर में ही खाट पर निढाल-सी पड़ी रहती. भूख भी अब उसे कम ही लगती. मौसा-मौसी ने उससे इस बारे में कई बार पूछा पर वह हर बार 'हां-हूं' करके टाल देती.

पर एक दिन जिंदर की बात सुनकर करतारो के पैरों के नीचे की जमीन ही खिसक गयी, "यह तूने क्या कर डाला...!".

जिंदर की आंखें दीवार की ओर ताके जा रही थीं.

रात को करतारो ने पाखर से बात की तो वह हैरान रह गया. उसने अंदर-बाहर निकलते जिंदर की ओर देखा तो वह उसकी गुस्से में मशाल की तरह जलती आंखों का सेंक न झेल सकी. वह खटिया पर ही पड़ी पाखर के चेहरे पर उभरी हताश त्योरियों को चोरी-चोरी देखती रही. उस दिन मौसा-मौसी रात देर गये तक खुसर-पुसर करते रहे.

सुबह सूर्योदय से पहले ही करतारो जिंदर को साथ ले, अपनी एक दूर की रिश्तेदारी में बरनाला जा बिराजी. वहां वह दो-तीन दिन रही. फिर खुद तो भैंस के कारण गांव लौट आयी, पर जिंदर को वहीं छोड़ गयी. आठ-दस दिनों बाद जब करतारो जिंदर को गांव लायी तो जिंदर अपने चेहरे की रौनक बरनाला में ही छोड़ आयी थी. उसका शरीर भी जैसे बुरी तरह सूत दिया गया था. 'जिंदर' तो जैसे वह रही ही न थी.

जिंदर अब घर से बाहर कम ही निकलती. घर का काम-धंधा करते कभी-कभी जब उसे कोई बात याद आ जाती तो वह उदास हो जाती. उसे अपने-आप पर बहुत गुस्सा आता, क्योंकि अब उसके बारे में हर बात किस्सा दर किस्सा बनकर गांव के घर-घर पहुंच चुकी थी.

इन्हीं दिनों में पाखर ने जिंदर के रिश्ते के विषय में बहुत भाग-दौड़ की. ढंग का लड़का कोई मिलता ही नहीं था और पाखर चाहता था कि वह जल्दी से जल्दी लड़की को दहलीज पार करवा दे. पर उसका कोई बस नहीं चल पा रहा था. आखिर करतारो जिंदर को शामो के पास ले गयी और उन दोनों ने निश्चय किया कि वे स्वयं उसका विवाह करेंगे. इस कारण भी वह ज्यादा भाग-दौड़ कर रहे थे. अंततः कितने ही दिनों की भाग-दौड़ के बाद हरीगढ़ के एक लड़के का पता चला. रंग तो भले उसका पक्का ही था, पर काम उसका ठीक-ठाक चलता था. लड़का खेती करता था और मां-बाप का इकलौता होने के कारण जमीन भी उसके पास गुजारे के लायक अच्छी थी. पाखर ने जिंदर के माता-पिता के साथ सलाह करके लड़की का रिश्ता हरीगढ़ में तय कर दिया.

आज वह विवाह के बाद अपने ससुराल जा रही थी...

थड़े पर बैठे-बैठे ही जिंदर की आंखों के आगे से कितनी ही लड़कियों के चेहरे घूम गये जो बाग में काम करने आया करती थीं. सभी के साथ वही कुछ हुआ था जो जिंदर के साथ हुआ था... और उनके मां-बाप सभी कुछ जानते हुए भी एक लफ्ज भी मुंह से नहीं निकाल सके... मानो उनके मुंह सदा-सदा के लिए किसी ने बंद कर रखे हों. इन सभी का खयाल आते ही उसके अंदर से एक सिसकी निकली और आंखों से निकल आये पानी को रूमाल से पोंछ वह संभलकर बैठ गयी.

अपने समीप ही सोच में डूबे अपने पति की ओर देख, उसे उस पर तरस-सा आ गया... और फिर प्यार भी!...

तभी बस की घुर्र-घुर्र सुनकर कौरा एकदम उठ खड़ा हुआ. उसने जल्दी से थड़े पर पड़ा झोला उठाया और सड़क के किनारे आ खड़ा हुआ. जिंदर भी अपनी चुन्नी ठीक करती उसके पीछे आ खड़ी हुई. पास आ रही बस की ओर देख-देख कौरा अपने मन में यह सोच-सोचकर खुश हो रहा था कि अब गांववाले उससे मसखरी करके कहा करेंगे—"साले! तूने तो पिछले जन्म में जरूर कोई पुण्य किया होगा जो सोने जैसी औरत मिल गयी!' □

● ए-2/228, एल. आई. जी. फ्लैट्स, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली-63

लघुकथा

दिल की बात

अशोक भाटिया

पिछली बार जब मैं गुप्ताजी के दफ्तर गया था तो वहां एक नयी क्लर्क आ चुकी थी. हल्की-सी झलक में वह मुझे आकर्षक लगी थी. कल जब मैं गुप्ताजी के दफ्तर में कामकाज लेने जा रहा था तो मन के कोने में वह फाइलोंवाली लड़की भी बैठी थी.

"नमस्ते!" मेरे जाते ही वह अदब से बोली.

"नमस्ते, गुप्ताजी कहां हैं?"

"साथवाले कमरे में गये हैं. बैठिए आप." उसका संकेत मनमोहक था. मैं विश्वास से कह सकता हूं कि कोई भी आदमी उसे देखकर उसके सौंदर्य से जरूर ही पिघलने लगेगा. एक बार तो मैं अपना सब काम भूलकर वहां बैठ जाना चाहता था, पर मैं 'धन्यवाद' कहकर साथवाले कमरे में चल दिया. लग रहा था जैसे उसकी बड़ी-बड़ी आंखें मुझे पीछे खींच रही हैं.

थोड़ी देर बाद मैं और गुप्ताजी आये तो वह फाइलोंवाली लड़की चाय पी रही थी. गुप्ताजी ने दराज से पुलिंदा निकाला, "यह रहे आपके कागजात." कागज थामकर मैं फौरन खड़ा हो गया, "भाई जान, जरा बहुत जल्दी जाना है, फिर आऊंगा."

मैं बाहर जाने को हुआ तो कोने में बैठी वह फाइलोंवाली लड़की बोली, "चाय पीजिए." एकबारगी चाहा कि बैठ जाऊं, लेकिन 'फिर कभी सही' कहकर मैं बाहर आ गया.

मेरे मन में वह लड़की गड़-सी गयी थी. शाम को उसी की मुद्राओं के आसपास बाहर घूम रहा था कि गुप्ताजी मिल गये.

"और सुनाइए गुप्ताजी क्या हाल हैं?"

"ठीक है. वो कागज ठीक टाईप हो गये न?"

"ठीक हो गये. अच्छा गुप्ताजी, वह दफ्तर में जो लड़की.."

गुप्ताजी बीच में बोल उठे, "हां, वह लड़की कह रही थी कि वे जो आपके दोस्त आये थे..

"हां, क्या..?"

"हो सके, तो उनसे टाईप का कुछ काम मुझे भी दिला देना."

● 18, गोबिंद नगर, अंबाला छावनी (हरियाणा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराई नजर

बाला दुबे

सन् 1920.

दिन ढलते ही सेब के बाजार में रौनक बरसने लगी. चंपई अंधेरे महकने लगे. कोठों से सारंगी की पुकार गूंजने लगी. तबलों की धिरकिट और घुंघरू बंधे पांवों की ततकार ने जैसे जादू की पुड़िया खोल डाली हो. और फिर मिश्री घुली आवाज में ठुमरी और दादरा, माहौल में खंजर की तरह उतरने लगे. फुलट्टी बाजार में बेले-चमेली के गजरे हाथों-हाथ बिक रहे थे और फिर परवानों के जमघट सुर की चोट झेलने अपनी-अपनी शमां के इर्द-गिर्द चिलमनों की ओर से झलक मार जाते. पर नीले गौरवर्णवाली अजरा के कोठे से तो बिजलियां गिरती थीं. अजरा की अम्मी वहीदन डेरेवाली तवायफ थी. तहजीब और तमद्दुन का मरकज था वहीदन का कोठा. सिर्फ बातमीज लोग ही ऊपर चढ़ने की जुर्रत करते थे. ऐरे-गैरों को बी वहीदन मुजरे में घुसने ही नहीं देती थी. फिर उसकी बेटी भी तो लाखों में एक थी.

उसके सुरों को तराशा था उस्ताद अली रजा ने. मजाल क्या जो सुर कहीं से भी डगमगा जाये. अजरा की नाक में चूड़ी के आकार की नथ पड़ी थी, जिसमें दो हीरों के बीच एक पन्ना गिरफ्तार था. रईस और मालदार ही अजरा को सुनने आते और जब कोई बेकाबू होकर अजरा को पाने की कोशिश करता तब बी वहीदन बड़ी बेतकल्लुफी से कहती, "हुजूर, अजरा की नथ दस हजार की है. क्या बताऊं, अभी तक कोई कबूल सूरत ही नहीं समाया है अजरा की नजरों में."

और अजरा आज भी दोशीजा है, गंगा जल जैसी पवित्र-अछूती. उसके दीवाने आते और उसे आंखों ही आंखों में पीकर चले जाते.... एक अटूट प्यास लेकर. वैसे तो अजरा को ढेर सारी घराने की चीजें याद थीं पर उसकी एक ठुमरी ऐसी सिद्ध थी कि कोठे के फर्श पर चांदी बिछ जाती और सुननेवाले के दिलों पर छुरियां चलने लगतीं. बहुत ही मचलकर गाती अजरा—

ननदिया सैंया द्वार फिर गये री...

अठारहवां बसंत पार करते ही अजरा की तबियत ने अपने पंख फड़फड़ाये पर बी वहीदन उसे उड़ान न भरने देती. मुजरे के बाद सोते वक्त अजरा के मुअत्तर खयालों में एक शहजादा आता जिसे वह अपने दिल से उठते हुए धुओं से बनाती और फिर मिटा डालती. जवानी की उठती बगावत को वह बार-बार दबा डालती. . . और उसकी यही बेबसी उसकी आवाज में और भी गहरा दर्द घोलती जाती.

आगरा में आग-सी लगा दी थी अजरा ने. रूप और स्वर की दोहरी मार ने रईसों को बिस्मिल कर दिया था. दिन के वक्त वह चिलमन की ओट झांक लेती. उसे अपने सपनों के राजकुमार का बेहद इंतजार था.

ड्रमंड रोड पर खड़ा आगरा कालेज भी एक निराला अंदाज रखता था. रईसों के बेटे पढ़ने आते. कुंवर मनमोहन सिंह उठक-बैठक तहसीलदार रिपुदमन सिंह के साहबजादे किशन सिंह के साथ ही होती थी. होली करीब आ रही थी. पंद्रह दिन पहले से ही आगरा के मुहल्लों में ढोलक और मजीरे बज उठे. रात को बस्तीवाले फाग गाते, होलियां गाते. समझदार तबके में हारमोनियम भी बजता और 'काफी राग' में होलियां गायी जातीं. आगरा कालेज के होस्टलों में भी रईस छात्र गाने-बजाने की महफिल जुड़वाते—मर्द गायकों की सिर्फ. उस दिन 'हीवर होस्टल' में राजा मंडी के महाराष्ट्रीय गायक गा रहे थे. रंग जम रहा था और उसी दिन हास्टलवालों को पता लगा कि पेतीखेड़े के कुंवर मनमोहन छुपे रुस्तम हैं. बाकायदा सुर-ताल की बंदिश के दायरे में गाया उन्होंने. उन्हें सुनकर महाराष्ट्रीय गायक सप्तऋषि भी 'वाह-वाह' कर उठे और बोले, "आपने तो बाकायदा तालीम पायी है कुंवर साहब."

तब किशन सिंह उन्हें ले गया अजरा की महफिल में. जब कुंवर साहब कमरे में दाखिल हुए तब अजरा ने ठिठक कर बढ़ती हुई ठुमरी दो पल के लिए रोक दी थी. ठुमरी के बाद ही किशन सिंह ने कहा, "बानो, हमारे दोस्त होली सुनने आये हैं."

कुंवर साहब के कानों में हीरे की लौंग को देखते हुए बी वहीदन ने हंसकर कहा, "वल्लाह, क्या बात की है हुजूर ने. माहौल भी आजकल होली का है." और अजरा शुरू हो गयी—

ननदिया सैंया द्वार फिर गये री. . . .

श्याम बिरज में खेलत आज होरी...

कुंवर मनमोहन झूमते रहे. होरी खत्म होने पर उन्होंने सौ का एक नोट नजर किया. आसपास बैठे लोग चौंके. बी वहीदन संभलकर बैठ गयी. कुंवर साहब हंसकर बोले, "राग काफी के अलावा किसी और राग में भी सुनाइए होली की बंदिश."

अजरा और बी वहीदन दोनों ही चौंक पड़े. खंखारकर बी वहीदन बोली, "होरी का चलन तो काफी में ही होता है हुजूर." वे समझी कि एक-आध राग का नाम सुनकर चला आया है यह रईस बागड़ू.

कुंवर साहब ने अजरा के चेहरे पर नजर गड़ाते हुए कहा, "कमाल है. होरी तो विहाग ही क्या भैरवी में भी गायी जाती है, बानो."

अजरा ने सिर को झटका देकर कहा, "हम तो ये आज ही सुन रहे हैं हुजूर." फिर मनमोहन सिंह के मन मोहनेवाले रूप पर टकटकी लगाकर वह चुहलबाजी पर उतर आयी, "आपको आती हो तो सुनाइए ना." अजरा ने छेड़ते हुए कहा.

और कुंवर साहब बोले, "क्या मुजाइका है बानो. लीजिए विहाग में होरी सुनिए."

साजिंदे संभलकर बैठ गये. कुंवर साहब ने विहाग की खुशबू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप बता सकते हैं कि स्त्री-पुरुष के मध्य ऐसा रिश्ता कौन-सा होता है, जिसका कोई नाम नहीं पर उसके बहुत-से नाम हैं? ऐसे रिश्ते कभी-कभी ही अंकुरित होते हैं और इतिहास बन जाते हैं. प्रस्तुत है सन् १९२० के जमाने की ऐसी ही एक प्रेम-गाथा, जिसके पात्र न रस्मों के मोहताज हो पाये न रिश्तों के . . . फिर भी उनके रिश्ते कायम रहे, अपनी रस्मों समेत. . .

फैला दी महफिल में. एक-दो बार तबलची ने अपने हथकंडे दिखाने की कोशिश भी की, पर कुंवर साहब ने उसे झिड़क दिया और जब हाथ से अपनी जांघ पर खाली और सम दिखलाया तो वही क्या अजरा और वहीदन भी सन्नाटे में आ गयीं. विहाग छा गया महफिल पर. गाना खत्म होते ही 'वाह-वाह' की झड़ी लग गयी और अजरा थी कि कुंवर साहब के चेहरे पर आंखें चिपकाये सुध-बुध खोकर बैठी रही.

फिर सहसा कुंवर मनमोहन सिंह ने कलाई पर बंधी घड़ी पर नजर डाली और बोले, "चला जाये बहुत देर हो गयी है."

यकायक खड़े हो गये वे दोनों. जीने तक छोड़ने उन्हें स्वयं अजरा आयी थी. मुस्कराकर उसने कहा, "फिर कब आइएगा हुजूर. आपसे अबकी बार भैरवी में भी होरी सुननी है. और हां, इतनी भी क्या बेरुखी है. नाम-धाम तो बतलाते जाइएगा, जिससे आपको याद करने में ज्यादा तकलीफ न हो."

किशन सिंह आगे बढ़कर बोला, "अरे हां, आपका ताउरूफ कराना तो भूल ही गया. आप हैं मनमोहन सिंह. मथुरा में कारोबार है आपके वालिद का."

किशन सिंह के कई बार कहने पर भी कुंवर साहब अजरा के यहां दोबारा जाने का फैसला नहीं कर सके. और उधर अजरा को अब महसूस हुआ कि इंतजार की तल्खी कितनी जानलेवा होती है. वह चिलमन के करीब दिन में सौ-सौ बार आती पर कुंवर मनमोहन सिंह नहीं आये. फिर किशन सिंह की मिन्नत करके ही वह भरी दोपहरिया में आयी थी कुंवर मनमोहन सिंह से मिलने. किशन सिंह कुंवर साहब को वरगला कर 'दि गोल्डन ईगल' रेस्तरां में ले आये थे. उनकी मेज पर ही यकायक अजरा आकर बैठ गयी थी. कुंवर साहब ने अजरा को पहचान लिया. कितनी कुम्हला गयी थी वह. डबडबाई आंखों से देखती हुई अजरा के होंठ थर्राये थे, "हुजूर, आपका बड़ी बेचैनी से इंतजार किया मगर आप नहीं आये. ठीक भी है. तवायफ से ज्यादा निस्बत रुसवाई की जद में आ जाती है और फिर फरेब तो हमें घुट्टी में ही पिलाया जाता है. हम भला वफा क्या जानें." फिर अपने बैग से सौ का नोट निकालकर कुंवर साहब के सामने रखती हुई बोली, "बेअदबी मुआफ कीजिएगा. इसे मैं सिर्फ इसलिए लौटा रही हूं कि एक बार. . .सिर्फ एक बार मेरे यहां तशरीफ और लायें. . .अजरा तवायफ के यहां नहीं, आपके फन की कद्रशनास अजरा के यहां."

इससे पहले कि कुंवर साहब कुछ बोलें, अजरा 'आदाब' कहकर चल दी. कुंवर साहब के पत्थर के दिल में अजरा का चलाया मोम का खंजर धंस गया. फिर उसी शाम पहुंचे थे कुंवर साहब. अजरा की मुस्कराहट में छुपा दर्द अयां हो गया. उसने कमरे का दरवाजा बंद करवाकर अम्मी से कहा, "अम्मी, आज मुजरा नहीं होगा. आज मैं अपने फनकार मेहमान से बंदिशें सुनूंगी."

फिर साज छिड़ गये. कुंवर साहब ने कोई दो घंटे गाया. . . खुलकर, और अजरा उन्हें निहारती रही, अंदर ही अंदर पिघलती रही.

कुंवर साहब के जाने के बाद वहीदन ने बड़ी मुलायम आवाज में कहा था अजरा से, "बेटी, तवायफ के लिए मुहब्बत एक जहर है. हां, मुहब्बत का नाटक उसे जेब देता है. हम सिर्फ मुहब्बत बेचती हैं, खरीदती नहीं. इश्क के दरिया में हम अपने आशिकों को डुबोती हैं, खुद नहीं डूबतीं. इस हिदायत को याद रखना. हमारी जिंदगी की यही रस्म है. . .यही चलन है."

अजरा ने अपने खुश्क होठों पर जुबान फेरते हुए कहा, "मैं समझ गयी अम्मी. जब शमा आंसू बनकर परवाने की आंखों से टपकने लगती है तभी तवायफ जनम लेती है. उसका दिल, दिल नहीं होता, सिर्फ उसके अरमानों का मजार होता है. . . ठंडा, बेजान, पत्थर जैसा सख्त."

उस दिन के ना बाद तो ही कुंवर साहब आये और ना ही अजरा ने उन्हें बुलाने का जतन किया.

राजा साहब सासनी की लड़की की शादी थी. बी वहीदन के पास मुजरे की फर्माइश आयी थी. बाग-बाग हो गयी थीं बी वहीदन, "आज मुकद्दर का दर खुला है बेटी अजरा. राजा साहब सासनी के यहां से पेशगी आयी है मुजरे की. . . एक हजार कलीदार की थैली. अल्लाह ने चाहा तो उनके जलसे में राजा साहब पेंतीखेड़ा भी आयेंगे. वे राजा साहब सासनी के रिश्तेदार भी हैं और दोस्त भी. खुद भी मंजे हुए फनकार हैं राजा साहब पेंतीखेड़ा. दौलत का अंबार है उनके यहां. मैं खूब जानती हूं उन्हें और उनकी कद्रदानी को."

सजावट से पंडाल जगमगा रहा था. गुलाबी पिशवाज में अजरा बेहद खूबसूरत लग रही थी. महफिल अभी शुरू नहीं हुई थी. राजा साहब पेंतीखेड़ा का इंतजार हो रहा था. राजा साहब सासनी ने बी वहीदन से कहा भी था, "राजा साहब पेंतीखेड़ा और कुंवर साहब का इंतजार हो रहा है. आने ही वाले समझो."

और तभी राजा साहब पेंतीखेड़ा और कुंवर मनमोहन सिंह आ गये. कुंवर साहब को देखकर बी वहीदन और अजरा का दिल धक्क से रह गया. यकायक अजरा उठी. उसका मन बेकाबू हो गया था शायद. वह उठकर कुंवर साहब की ओर बढ़ी और फिर न जाने क्यों, ठिठकी और पलट आयी. बी वहीदन यह सब देख रही थी. फिर तो अजरा ऐसी बन गयी मानो उसने उन्हें कभी देखा ही न हो. राजा साहब पेंतीखेड़ा हंसकर बी वहीदन के पास आये. कुंवर साहब भी साथ थे—गुमसुम, सहमे हुए, गुनहगार की तरह.

"कैसी हैं बी वहीदन ?" राजा साहब हंसकर बोले.

सलाम करके बी वहीदन ने कहा, "इनायत है हुजूर की." फिर कुंवर साहब की ओर देखकर बोली, "गालिबन आप तो राजकुमार साहब ही हैं ना ?"

राजा साहब ने कहा, "जी हां बी साहबा, मेरे ही घर का चिराग है."

बी वहीदन ने फिर अजरा को मिलवाया.

"मेरी बेटी है हुजूर. . .अजरा. अभी सीख रही है." अजरा ने राजा साहब और कुंवर साहब को झुक कर सलाम किया, बोली कुछ नहीं.

फिर मुजरा शुरू हुआ था. अजरा ने राजा साहब पेंतीखेड़ा से इजाजत मांगते हुए कहा, "हुजूर, आपके सामने गाना बेअदबी है. अगर इजाजत हो तो शुरू करूं."

राजा साहब खुश हुए.

राग विहाग में शुरू की थी फिर अजरा ने गजल—

इस दर्जा बदगुमां हैं खुलूसे बशर से हम
अपनों को देखते हैं परायी नजर से हम. . .

गाते वक्त बार-बार कुंवर साहब को परायी नजर से देखती जाती अजरा. . . जैसे उन्हें पहचानती ही न हो, जैसे उन्हें पहले कभी देखा ही नहीं हो. □

● एफ-48, ग्रीनपार्क, नयी दिल्ली-110016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति-पत्नी का एक-दूसरे पर अधिकार कहां तक?

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

उन्नीसवीं सदी तक दुनिया भर में पत्नी अपने पति की संपत्ति मानी जाती रही... इसके बाद बदलाव आने शुरू हुए और स्त्री-समानता आंदोलन तेजी से एक वास्तविकता में बदलने लगा. इसके बावजूद यह सवाल अभी तक मुंह बाये खड़ा है कि पति-पत्नी का एक-दूसरे पर अधिकार आखिर है कहां तक? इस विषय पर प्रस्तुत है—'सारिका' के भूतपूर्व संपादक एवं वरिष्ठ कथाकार स्व. चंद्रगुप्त विद्यालंकार का विशेष लेख... जिसे उन्होंने खासतौर से 'सारिका' के लिए ही लिखा था.

आज संसार के बहुत-से देशों में यह माना जाता है कि 'सभी मानव संबंधों की सीमाएं हैं. पर एक प्रेमपूर्ण पति-पत्नी के पारस्परिक संबंधों की कोई सीमा नहीं है.'

यह स्थापना काफी दूर तक सही है. पर व्यवहार में आज के विश्व के डेढ़ अरब से ऊपर पति-पत्नियों में कितने ऐसे हैं, जिसका एक-दूसरे पर अगाध प्रेम और असीम विश्वास है?...जहां है भी, वहां कब तक वह जारी रहता है?

वस्तुस्थिति यह है कि जब से विवाह संस्था का प्रारंभ हुआ है, बहुत थोड़े अपवाद के साथ, उन्नीसवीं सदी तक पत्नी अपने पति की मिल्कियत समझी जाती रही है.

उन्नीसवीं सदी में परिस्थितियां बदलनी शुरू हुई और बीसवीं सदी में स्त्री-समानता-आंदोलन तेजी से एक वास्तविकता बनने लगा. आज विश्व के बहुत से समुन्नत देशों में स्त्री-पुरुष के समान अधिकार हैं. हमारा भारत भी, कम से कम कानूनी दृष्टि से उन्हीं देशों में है. इन सभी देशों में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण और जीवंत बन गया है कि पति-पत्नी का एक-दूसरे पर कहां तक अधिकार है और इस अधिकार की क्या सीमाएं हैं?

मैंने विश्व के सात-आठ समुन्नत देशों में आज की पारिवारिक और सामाजिक स्थितियों का अध्ययन करने का प्रयास किया है. कुछ विचित्र और परस्पर विरोधी भी बातें मैंने देखी हैं.

पुरुष-स्त्री समानता की दृष्टि से आज के विश्व में पहला स्थान मैं स्वीडन को दूंगा और दूसरा संयुक्त राज्य अमरीका को. स्वीडन में स्त्रियों को काम करने की सुविधाएं कहीं अधिक हैं. उन्हें कुछ ही घंटे काम कर सकने की सुविधा भी प्राप्त है. गर्भवती होने पर चार महीने का सवेतन अवकाश मिलता है. खर्च बच्चों की माताएं अपने बच्चों को सहकारी खर्च पर 'दिन की माता' के पास भेज सकते हैं. यह स्वीडन की निराली संस्था है. प्रशिक्षित महिलाएं, सरकारी लाइसेंस लेकर पांच बच्चों को चार से आठ घंटा अपने पास रखती हैं. वे उनके भोजन, सैर, खेलकूद और आराम की व्यवस्था करती हैं. तब उनका घर 'दिन की माता' का घर कहलाता है और सरकार उन्हें साढ़े चार हजार रुपया प्रतिमास अनुदान देती है. मां-बाप को सिर्फ नाममात्र की फीस देनी होती है.

अमरीका के अधिकांश विवाह संबंधी कानून स्त्री के पक्ष में हैं. चाहे जैसा भी काम करे—स्त्री को समान वेतन मिलता है. स्त्री के प्रति असमान व्यवहार वहां एक बड़ा जुर्म है. तलाक देने की स्थिति में पति की आधी जायदाद तो उसे मिलती ही है, बच्चों के लिए प्रतिमास, भूतपूर्व पति, उसे अच्छी रकम देता है.

पर दूसरी ओर स्वीडन और अमरीका दोनों संपन्नतम उन्नत देशों में स्त्रियों के कार्य-क्षेत्र अभी तक सीमित हैं. आज विश्व में प्रभुसत्ता प्रत्येक देश की पार्लियामेंट में अवस्थित है. उक्त दोनों देशों की पार्लियामेंटों में महिला सदस्यों की संख्या अत्यल्प है.

पति-पत्नी के जीवन में रुचि भेद या मतभेद के कारण आने वाले सवालों को तीन भागों में बांटा जा सकता है.

1. शारीरिक : एक दूसरे की वेशभूषा, रहन-सहन, आदतें और सैक्स आदि.

2. मानसिक : सभी तरह के विचार और चिंतन, रुचि जो समान, भिन्न, पूरक या विरोधी—कुछ भी हो सकती है) आदि.

3. बच्चों के संबंध में : बच्चों की संख्या, पालन-पोषण, शिक्षा, नियंत्रण आदि के संबंध में

विश्व भर में आज जो करीब एक करोड़ तलाक प्रतिवर्ष हो रहे हैं, उनके कारणों के अध्ययन से पता चलता है कि संबंध-विच्छेद के सबसे बड़े कारण रुचि भेद, विचार भेद और स्वभाव-भेद हैं.

निस्संदेह विवाह के समय शारीरिक आकर्षण सब से अधिक प्रमुख रहता है.

कठिनाई तब पैदा होती है, जब पति सैक्स को अपना अधिकार मानकर, जब चाहे पत्नी से सैक्स की मांग करता है. पत्नी चाहे कितनी ही बुरी मूड में हो, दुःखी हो, थकी हुई हो, बीमार तक भी हो—पति की इस मांग को प्रायः अस्वीकार नहीं कर सकती. जहां पति-पत्नी में गहरा स्नेह हो वे एक दूसरे को अच्छी तरह समझते हों और एक दूसरे का सम्मान करते हों—वहां यह स्थिति नहीं आती.

सवाल 'अधिकार' का है. कानूनन पति को अपनी पत्नी से सैक्स-संबंध के अधिकार प्राप्त हैं. भारत में पति के ये अधिकार किस सीमा तक जा पहुंचे थे, अपनी देखी एक घटना मैं यहां दे रहा हूं :

अपने पिता के घर रह रही एक लड़की का पति एक रात वहां आ पहुंचा और लड़की के मां-बाप के पास ही बिछी चारपाई पर अपनी पत्नी को लिटाकर उससे संभोग करने की जिद करने लगा. लड़की इसके लिए तैयार नहीं हुई. नंग-धड़ंग पति जिद कर बैठा. लड़की के मां-बाप, आस-पड़ौस के समझाने का उस पर कोई असर न हुआ. लड़की के भाई ने उसे समझाना चाहा तो वह उससे उलझ गया. लड़की के भाई ने ताव में आकर अपने जीजा को उठाकर छत से जमीन पर दे फेंका. तभी पुलिस वहां आ पहुंची और सबको थाने ले गयी.

इस चर्चा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू यह है कि सैक्स संबंधों का मूल्यांकन और उनके बारे में अनुकूल या प्रतिकूल धारणाएं प्रायः सामाजिक मान्यताओं पर निर्भर करती हैं. सदियों तक हिंदू विधवाओं के लिए सभी तरह के शारीरिक सुख निषिद्ध कर दिए गए थे. अर्थात विधवा का मन सैक्स की ओर न जाने पाए.

पर सामाजिक मूल्यों और धारणाओं में परिवर्तन आ जाने पर, इस नाजुक क्षेत्र में भी संसार के कुछ देशों में सही परिवर्तन आ गया है. जिन बातों पर पुराने लोग नारी का सिर काट देने को या उसे पत्थरों से मार देने को तैयार हो जाते थे, वे बातें आज वहां विशेष परिस्थितियों में वांछनीय तक बन गयी हैं.

स्टॉक होम में मैं स्वीडिश सामाजिक जीवन का अध्ययन कर रहा था. मैं एक स्वीड महिला से मिला. 45 वर्ष की यह सुंदरी महिला एक अच्छी लेखिका हैं. वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवा हैं और उनके दो बच्चे हैं—20 बरस का पुत्र और 14 बरस की बेटी. उस महिला ने मेरे सभी प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर दिया. सिर्फ एक तथ्य का उल्लेख मैं यहां कर रहा हूं. उनके उत्तर का संक्षिप्त रूप.

"लेखिका होने के नाते मेरा एकाकीपन मुझे अधिक परेशान नहीं करता. यों भी घर में मेरे बच्चे मेरे दोस्त और मेरे साथी हैं. मेरे मित्र भी समुचित संख्या में हैं—पुरुष, स्त्री दोनों. मैं जीवन की मध्यावस्था में हूं. मेरी सभी तरह की जरूरतें हैं. रात्रि-भोजन के समय हम तीनों सभी तरह के विषयों पर खुलकर बातचीत करते हैं. पर पूरी तरह व्यक्तिगत बातें न मैं करती हूं और न मेरे बच्चे.

"एक दिन बच्चों को मालूम नहीं था कि मैं समय से पहले घर लौट आयी हूं और अपने कमरे में हूं. वे साथ के कमरे में मेरे संबंध में बातचीत कर रहे थे. मेरे कौन-से पुरुष मित्र उन्हें कैसे लगते हैं—इस संबंध में विचार-विनिमय हो रहा था. उनमें से कौन ऐसा है, जिसे वे खुशी से पिता के रूप तक में स्वीकार करेंगे. वे खुश थे कि मेरे मित्र श्रेष्ठ कोटि के और निर्भर करने के योग्य हैं. उनकी हार्दिक इच्छा थी कि मैं अपने को 'एकाकी' न बनने दूं. जीवन के सभी सुख मुझे निरंतर प्राप्त रहें. मानसिक, शारीरिक सभी प्रकार के."

अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक मान्यताओं और धारणाओं में परिवर्तन आना स्वाभाविक और उचित दोनों है. सिद्धांत रूप से भारतीय संस्कृति इसे स्वीकार करती रही है. पर भारत के लंबे इतिहास में बहुत बार व्यावहारिक रूप में हमारा समाज घोर अपरिवर्तनवादी रहा है.

बहु-विवाह आज के युग में निंदनीय है. समुन्नत देशों में वह गैर-कानूनी भी है. पर दूसरे विश्व युद्ध में, जब रूस के करीब एक करोड़ युवक मारे गए, तो वहां युवक और युवतियों का अनुपात बहुत असंतुलित हो गया था. युवतियां संख्या में युवकों की तुलना में कहीं अधिक थीं. इन परिस्थितियों में रूस में यह सर्वसम्मत मान्यता स्वीकार कर ली गई कि विवाहित युवक अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य नारी से भी गहरी मित्रता के संबंध रख सकता है. इन संबंधों से उत्पन्न संतान को भी रूसी समाज ने पूर्ण सम्मान और पूर्णाधिकार दिए.

स्त्री और पुरुष में प्रेम क्यों और कैसे हो जाता है—इस संबंध में कोई व्यापक सिद्धांत नहीं बनाए जा सकते. विपरीत स्वभावों के नर-नारी भी एक दूसरे के प्रति उसी तरह आकृष्ट होते हैं. जैसे समान रुचि, विचार और स्वभाव वाले. समझदार दंपति पूरी संजीदगी से एक दूसरे को समझने और तदनुसार अपने को ढालने का गंभीर प्रयत्न भी करते हैं. पर यह सब एक सीमा तक ही सफल हो पाता है. जीवन का वास्तविक रूप इतना पेचीदा और विविध है कि देर-सवेर पति और पत्नी के व्यक्तित्व के पुराने संस्कार और स्वभाव उभरकर सामने आ जाते हैं और कितनी ही बातों के संबंध में उनमें मतभेद पैदा हो जाता है. समझदार परिवारों में यह मतभेद और दृष्टिभेद भी शांतिपूर्वक स्वीकार कर लिया जाता है, यानी परिवार टूटने नहीं पाता. पर बच्चों को लेकर यह मतभेद या दृष्टिभेद कभी-कभी इतना बोझिल और विषम बन जाता है कि परिवार टूट जाता है.

शेखर और अरुणा में प्रेम-विवाह हुआ था. शेखर एम. बी. बी. एस. के अंतिम वर्ष का विद्यार्थी था, जब अरुणा कालेज के द्वितीय वर्ष में थी. शेखर अरुणा के असाधारण सौंदर्य से उसकी ओर आकृष्ट हुआ था. दो वर्ष के भारतीय स्तर के रोमांस के बाद उनका विवाह हुआ था. दोनों की रुचि स्वभाव और विचारों में जो भेद था, वह कुछ वर्षों के बाद उभर कर सतह पर आया. जब तक अरुणा एक बालक की मां बन चुकी थी. तीन वर्षों में शेखर एक व्यस्त डाक्टर बन गया और अरुणा एक अच्छी गायिका. दांपत्य जीवन के आरंभ में शेखर पुराने अपरिवर्तनवादी विचारों का था, उसकी निगाह में स्त्री सिर्फ पत्नी है या माता है. वह प्रायः कहा करता था कि पत्नी को एक अच्छी आराम कुर्सी के समान होना चाहिए, जो पति की थकावट दूर कर सके. अरुणा अपने कालेज में नाटकों में भाग लेती रही थी. सार्वजनिक कार्यों में उसे रुचि थी. कुछ संस्थाओं की कार्य समिति की भी वह सदस्य थी. ज्यों-ज्यों शेखर व्यस्त होता चला गया, और बच्चा आया के पास रहने योग्य हो गया, वह सार्वजनिक कार्यों में अधिकाधिक रुचि लेने लगी. सम्मेलनों में वह गाती भी थी और उसका गायन अधिकाधिक लोकप्रिय होता चला जा रहा था. वह अपने नगर की प्रसिद्ध गायिका बनती जा रही थी.

कितने ही युवक कलाकार और सामाजिक कार्यकर्ता अरुणा के घर भी आते थे. शाम को शेखर व्यस्त होता तो वह उनके साथ क्लबों में चली जाती. शेखर को यह सब पसंद नहीं था. उसने प्यार से अपना दृष्टिकोण समझाने की बजाय अरुणा पर पतीत्व का रोब जमाना चाहा, तो इस प्रयत्न में पूरी तरह असफल रहा. अरुणा दूसरी धातु की बनी थी. पति पत्नी में अलगाव बढ़ने लगा. इसी तरह के वातावरण में उसका बेटा आठ बरस का हो गया. अब शेखर ने अपने पुत्र को उसकी मां के खिलाफ उल्टी-सीधी बातें कहना शुरू किया. छोटा बच्चा पिता की बातों पर विश्वास करे—यह स्वाभाविक ही है. मां इतनी शाइस्ता थी कि उसने कभी एक बार भी बेटे से उसने पिता के खिलाफ कुछ भी नहीं कहा. आखिर शेखर और अरुणा ने एक दूसरे को तलाक दे दिया. बेटे के हृदय में मां के लिए आदर या स्नेह भाव पहले ही नष्ट कर दिया गया था. पिता ने जब शीघ्र ही दूसरा विवाह कर लिया तो पिता के लिए भी बेटे के हृदय में किसी तरह की ममता और अपनत्व का भाव नहीं रह गया. बेटा घर छोड़ कर विदेश चला गया और वापस नहीं लौटा. उसका संबंध अब न अपनी मां से है और न बाप से.

किसी ने ठीक ही कहा है कि 'जितने मानव हैं, उतने ही पृथक-पृथक मनोविज्ञान भी हैं.' कोई मानव किसी अन्य मानव की प्रतिलिपि नहीं है. सभी का पृथक-पृथक व्यक्तित्व है. दो मित्रों या सहकार्यकर्ताओं के लिए भी आवश्यक होता है कि वे एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करें. सच्चाई तो यह है कि सारी उम्र एक साथ रहकर भी कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को पूरी तरह समझ नहीं सकता. इसी तथ्य का दूसरा रूप यह है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं भी बदलता रहता है, आज के विचार और मूल्य भी बदले जा सकते हैं. पति-पत्नी का संबंध तो दिन-रात का है. जीवन के सभी पहलुओं में वे एक दूसरे के साथ हैं. इस तरह का निरंतर साथ अब भी पैदा कर सकता है. असीम स्नेह से लेकर घृणा तक पति-पत्नी के इस निरंतर साथ का परिणाम हो सकते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलाक

श्मुईल यूसेफ एग्नान

जब मैंने अस्पताल में प्रवेश किया तब मैंने वहां एक सुंदर गोरी और सुनहरे बालोंवाली नर्स को देखा, जिसे केवल रोगी ही नहीं, बल्कि स्टाफ के सभी सदस्य प्यार करते थे. उसके कदमों की आहट सुनते ही मरीज नन्हें-मुन्नों की तरह हाथ फैलाकर अपना बिस्तर छोड़ उठ बैठते और मां की तरह उसे पुकारकर कहते, "सिस्टर. . .सिस्टर . . .मेरे पास आओ." यहां तक कि वे चिड़चिड़े लोग, जिन्हें संसार की हर बात से नफरत-सी हो गयी थी, सिस्टर के चेहरे की सहज मुस्कराहट और मधुर स्वभाव के आगे द्रवित हो जाते. वह जो कुछ करती, उसे झटपट मान लेने को तैयार हो जाते.

सहज मुस्कान के साथ-साथ उसमें एक आकर्षण और था, वह था, उसकी नीली आंखें.

इन आंखों को वह जिस पर टिका देती, वह अपने-आपको दुनिया का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति समझने लगता.

जिस पल उसकी निगाहें मेरे चेहरे पर आकर ठहरीं, मैं भी उसके आकर्षण से न बच सका और दूसरे लोगों की तरह ही हो गया, जबकि उसके दिल में मुझको लेकर ऐसी कोई बात न रही होगी और न दूसरों के लिए रहती होगी.

उसकी सहेलियां-नर्सें भी उसे बहुत प्यार करती थीं. उनकी मैट्रन चालीस वर्ष की प्रौढ़ महिला थीं, एकदम निस्तेज, खट्टे सिरके की तरह तीखी. उसे काली-काली नमकीन केक और अपने छोटे-छोटे कुत्ते को छोड़कर डाक्टरों, नर्स एवं रोगियों से चिढ़ थी. वह भी इस नर्स को खूब चाहती थी. कहने की जरूरत नहीं कि मेरे साथी डाक्टरों में से जिसे भी इस नर्स के साथ काम करने का मौका मिलता, वह अपनी तकदीर को सराहता. मैं स्वयं भी उस लड़की में रुचि लेने लगा और वह भी मेरी ओर झुकने लगी.

एक दिन दोपहर के वक्त मैं डाइनिंग हाल से बाहर निकला. उसके कमरे की ओर बढ़ गया और उससे पूछा, "डायना, क्या तुम व्यस्त हो?"

"नहीं, मैं फुरसत में हूं. ऑफ है मेरा?"

"क्या मैं तुम्हें एक सलाह दूं?" मैंने कहा.

"हां, डाक्टर, मेहरबानी होगी."

"पर सलाह तभी दी जायेगी जब मुझे अपना मेहनताना मिलेगा."

वह मेरी ओर देखकर मुस्कराने लगी.

"चलो." मैंने कहा, "हम दोनों आपेरा चलें, अगर जल्दी निकल चलें तो काफी हाउस होते हुए जायेंगे, मंजूर?"

उसने मुस्कराते हुए सिर हिलाकर अपनी सहमति प्रकट कर दी. तब मैंने कहा, "अच्छा, मैं अपना काम निबटाकर जल्दी आता हूं." फिर वह अपने कमरे में चली गयी और मैं अपनी ड्यूटी पर.

थोड़ी देर बाद जब मैं उसे लेने पहुंचा, तब वह कपड़े बदलकर तैयार हो चुकी थी, जिससे उसका आकर्षण दुगना हो गया था.

हम बस स्टाप की तरफ बढ़े. दो-तीन बसें छोड़ने के बाद हमें जगह मिल गयी थी. बस ने हमें एक पार्क के सामने छोड़ा. सड़क पार करते हुए एकाएक मैंने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाकर कहा, "आओ, हम अस्पताल की और तमाम दुनिया की बातें भूल जायें और कुछ नयी बातें करें. मीठी. . .मीठी. . ."

बाग में बच्चे खेल रहे थे. हम दोनों को देखकर वे आपस में फुसफुसाने लगे. मैंने डायना से पूछा, "जानती हो, ये बच्चे हमारे बारे में बातें कर रहे हैं?"

"शायद." वह बोली.

"क्या तुम जान सकती हो ये क्या बोल रहे हैं? ये बच्चे कह रहे हैं कि तुम और मैं दुल्हा-दुल्हन हैं."

उसका मुख एकदम लाल हो गया. वह धीमे से बोली, "शायद."

"इसका मतलब तुम्हें उनकी बात पर कोई आपत्ति नहीं है?"

"मुझे क्यों होने लगी?"

वह हंस पड़ी और मेरी ओर देखने लगी. मैंने उसका हाथ थाम लिया और कहा, "दूसरा भी दो!" उसने ऐसा ही किया. उसके दोनों हाथ पकड़कर मैंने उसे चूम लिया और अपनी नजरें उसके चेहरे पर टिका दीं. वह और अधिक रक्ताभ हो उठी थी.

हमारी सगाई हो गयी, यह समय मेरे लिए सबसे अच्छा था. अब मुझे समझ आने लगा, कवि क्यों प्रेम काव्य लिखा करते हैं.

फिर भी न जाने क्यों उसकी आंखों में एक गहन काली छाया थी, जो कभी-कभी उस बदली की तरह गहरी हो जाती, जो बस फट जाना चाहती हो. एक बार मैंने उससे इस उदासी का सबब पूछा तो उसने बिना कुछ कहे अपनी निगाहें भूमि पर टिका दीं. मैंने इस पर अपना प्रश्न दोहराया तो उसने अपनी बाहें मेरे गले में डालते हुए कहा, "तुम नहीं जानते कि तुम मेरे लिए कितने कीमती हो, मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूं!" यह कहकर उसके उदास होंठों पर मीठी-मीठी-सी मुस्कराहट फैल गयी.

मैंने अपने-आप से पूछा, "अगर यह मुझसे प्रेम करती है तो इसकी उदासी का क्या कारण हो सकता है? शायद इसका परिवार गरीब हो, लेकिन यह कहती है कि वे लोग अमीर तो हैं. या फिर उसने शायद शादी का वादा किसी और से किया हो. . . पर इस विषय में भी वह कहती, ऐसी बात नहीं है. मैं हर बात उससे पूछता, पर वह ढेर सारा प्यार जताकर मेरा मुंह बंद कर देती और खामोश रहती, लेकिन उसके मन की उदासी की इस पर्त ने मेरे प्यार और मेरी खुशियों में जहर की बूंद घोलनी शुरू कर दी. बार-बार मैं यही सवाल कर उसे परेशान करता. वह भी उत्तर देने का वचन देती, पर फिर टाल जाती. एक बार उसने बड़े प्यार से मेरा हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, "डार्लिंग, हम दोनों को खुश रहना चाहिए. ऐसा मौका आने ही न दें कि हमारी खुशियां खत्म हो जायें." यह कहकर उसने एक लंबी आह भरी, जिसे सुनकर मेरा दिल अनजानी आशंका से कांप उठा. मैंने इसकी वजह पूछनी चाही तो वह बोली, "डार्लिंग, मेहरबानी करके और कुछ न पूछो."

एक दोपहर को जब मैं उसके कमरे में गया तो वह नये कपड़े सी रही थी. मैंने कपड़े का किनारा पकड़कर उसकी तरफ पलटा. उसने सीधे मेरी आंखों में आंखें डालकर कहा, "तुम्हें मालूम है मेरी दोस्ती किसी और के साथ थी?"

यह सुनते ही मेरे शरीर में एक ठंडक-सी फैल गयी. मैं अंदर से टूटने लगा और वहीं पर बैठ गया. इस पर भी उसके साथ पहले जैसा बर्ताव करता रहा. सच कहूं तो उस क्षण भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मेरी नजरों में गिरी नहीं बल्कि हमेशा की तरह प्रिय लगी. जब उसने भी यह बात महसूस की तो उसके होंठों पर हंसी फैल गयी, पर उसकी आंखों में अब भी एक धुंधलका था, परदा था. वह उस इंसान की तरह थी, जो एक अंधेरे से निकल दूसरे अंधेरे में जा रही हो.

मैंने उससे पूछा, "कौन था वह, जो बिना शादी किये तुम्हें छोड़कर चला गया? डायना, तुम्हें लेकर मेरे मन में कोई बुरा खयाल नहीं है. सिर्फ एक कौतूहल है, जिसकी वजह मैं जानना चाहता हूं."

काफी जोर देने के बाद उसने उसका नाम बताया.

मैंने कहा, "डायना, मुझे आश्चर्य है कि दफ्तर के एक मामूली क्लर्क ने तुम्हारे पांव डगमगा दिये और फिर तुम्हें छोड़कर चला भी गया. इससे साफ जाहिर है कि वह भला आदमी नहीं था."

यह सुनकर उसने आंखें झुका लीं और गुमसुम हो गयी.

उस दिन के बाद मैंने कभी उसे उसके अतीत की याद नहीं दिलायी और इस बात को पूरी तरह दिमाग से निकालकर उससे शादी कर ली.

शादी के बाद हम दोनों अपना हनीमून मनाने शहर छोड़कर एक गांव की ओर चले गये. रास्ते में पहाड़ थे, झरनों की घाटियां थीं, पर उन्हें तो मैं भूल गया, लेकिन एक घटना को न भुला सका, जो हमारी पहली रात को हुई.

जिस होटल में हमने अपने लिए कमरा बुक कराया, वह बगीचे के बीचोंबीच था. उसके दायें-बायें पहाड़ और झरने थे. जब हम अपने कमरे में पहुंचे तो मेरी पत्नी की निगाहें गुलाब के उन फूलों पर जा टिकीं, जो वहां सजाये गये थे. मैंने हंसते हुए कहा, "वह भला आदमी कौन है, जिसने इतने सुंदर फूल हमें भेजे हैं?"

"कौन है वह?" मेरी पत्नी बड़े आश्चर्य से बोली.

मैंने कहा, "मैं इन फूलों को एक किनारे रख देता हूं, वरना इनकी महक हमें सोने न देगी." वह फूलों को सूंघना भूल गयी. मैंने उसके गालों को चूमते हुए कहा, "डायना, हम अब अकेले हैं." वह खड़ी हुई और बड़ी सावधानी से निर्वस्त्र होने लगी. उसके बाद अपने बालों को संवारते-संवारते वहीं मेज पर सिर झुकाकर बैठ गयी.

मैंने देखा, वह एक परचा पढ़ रही थी, जिसमें लिखा था, "हर पल अपने पति की प्रतीक्षा करो, जब तक वह पहुंच न जाये." मैंने उसकी ठोड़ी अपने हाथ में लेते हुए कहा,

क्या पहला प्यार ही सच्चा प्यार होता है? यह कथन क्या सही मायने में सही है? क्या पहला प्यार किसी औरत को ताउम्र तंग करता रह सकता है? यदि हां तो कैसे . . . और नहीं तो इसी ग्रंथि के रहते प्रायः वैवाहिक जीवन में ज्वालामुखी की भांति दहकन ही क्यों झेलते रहते हैं? प्रस्तुत है पहले प्यार की दहकन को रेखांकित करती इजरायली कथाकार की कलम से स्त्री-पुरुष संबंधों पर एक बेजोड़ रचना——

"इसकी तुम्हें प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी. तुम्हारा पति पहले ही आ चुका है." यह कहकर मैंने उसे चूम लिया. इस पर उसने बड़ी उदासी के साथ अपनी पलकें उठायीं और उस परचे को एक ओर रख दिया.

मैंने उसे अपनी बाहों के घेरे में लेकर रोशनी कम कर दी.

उसने अपने आंसू रोकते हुए जवाब दिया, "सारे दरवाजे-खिड़कियां खोल दो और बता दो दुनिया को कि मैं कितनी बुरी औरत हूं."

मैंने उसे शांत करने की कोशिश की.

उस दिन के बाद से वह व्यक्ति मेरे दिमाग से नहीं निकल सका. मैं डायना से बात करता तो जरूर उसका नाम लेता. मुझे उन लाल ताजा गुलाबों की याद आती. अब मैं समझ गया था कि मेरी पत्नी ने उन गुलाबों के फूलों को क्यों नहीं सूंघा. जब भी मैं डायना के साथ खुश रहने की कोशिश करता, मुझे उसी व्यक्ति की याद आ जाती, जिसने मेरी खुशियां छीन ली थीं और मैं निराश हो उठता. मैं उसके बारे में सब कुछ जान लेना चाहता था कि वह किस प्रकार का व्यक्ति था, जिसने एक भले घर की लड़की को आकर्षित किया था.

मैं उसकी किताबों में ढूंढ़ने लगा कि कहीं उसका कोई पत्र मिल जाये, पर नहीं मिला. जब मैं संदेह से भरी प्रेम कहानियां पढ़ने लगा, जिससे मैं प्रेमियों और औरत के स्वभाव को भली भांति समझ सकूं, पर उन प्रेम कहानियों ने भी मुझे थका दिया.

विवाह के दूसरे साल भी मुझे चैन न मिला. मन में चिंता लिये डायना बीमार पड़ गयी. मैंने उसे दवाओं से ठीक किया. मैंने उससे कहा, "इन सब बीमारियों का जड़ वही आदमी है, वह दूसरी औरतों के साथ खिलवाड़ कर रहा होगा, पर मेरे हिस्से में उसने एक बीमार औरत छोड़ दी है."

एक दिन शाम को हम चाय पीने बैठे तो मैं एकाएक बोल पड़ा, "डायना, कोई ऐसी बात है, जिसके बारे में मैं सोच रहा हूं."

उसने सिर हिलाकर कहा, "हां, मैं भी कुछ सोच रही हूं."

"तो भला बताओ, मेरे दिल में क्या है?"

वह बोली, "तलाक." उसने उदास निगाहों से मेरी ओर देखा.

मैंने पूछा, "क्या तुम सहमत हो?"

"मेरे सहमत होने से क्या होता है, मैं चाहूं न चाहूं, पर मैं वह सब कुछ करने को तैयार हूं, जिससे तुम्हें चैन मिल सके. फिर चाहे वह तलाक ही क्यों न हो."

डायना ने सच कहा था. तकदीर में जो लिखा हो, वही होता है. इस तरह हम बाहरी रूप में तो एक-दूसरे से अलग-अलग हो गये, लेकिन उसकी सहज मुस्कराहट मेरे दिल में कैद है. उसकी नीली आंखें मुझे भूलती नहीं. कभी-कभी मैं बदहवास-सा होकर रात को उन अस्पताल के उन रोगियों की तरह बिस्तर से उठ बैठता हूं और दोनों हाथ फैलाकर कहता हूं. "नर्स. . . नर्स. . .मेरे पास आओ." □

अनुवाद : बसीनी ठाकुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलिफ़ लैला

ओ. हेनरी

चौक के पासवाले उसके मकान में, कार्सन चामर्स को उसके नौकर फिलिप्स ने शाम की डाक लाकर दी. रोजमर्रा की साधारण चिट्ठियों के अलावा दो चीजें ऐसी थीं, जिन पर एक ही विदेशी डाक की मोहर लगी हुई थी.

इनमें से एक पार्सल में एक औरत की तस्वीर थी और दूसरी में एक पत्र; जिसे चामर्स बड़ी देर तक पढ़ता रहा. यह पत्र एक दूसरी औरत द्वारा लिखा गया था. जिसमें तस्वीरवाली औरत के प्रति विष बुझे तीर शहद में डुबो-डुबोकर छोड़े गये थे.

चामर्स ने इस पत्र को टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया और अपने कीमती कालीन पर टहलने लगा. किसी जंगली जानवर को पिंजरे में बंद कर देने पर वह इसी तरह चक्कर काटता है और शंका के जंगल में फंसे हुए किसी बंदी की भी यही दशा होती है.

कुछ क्षण के बाद उसकी परेशानी दूर हुई. कालीन कोई जादुई तो था नहीं, उसके ऊपर तो सोलह फुट के दायरे में ही घूमा जा सकता था, तीन हजार मील दूर उड़ा ले जाना, उसकी शक्ति से परे था.

फिलिप्स प्रकट हुआ. वह कभी प्रवेश नहीं करता था, अलिफ लैला के जिन्न की तरह प्रकट हुआ करता था. उसने पूछा, "आप खाना यहां खायेंगे या बाहर?"

चामर्स ने कहा, "यहीं, और आध घंटे में ही." वह सुस्ती से बिस्तर पर पड़ गया. बाहर सड़क पर चलनेवाली जनवरी की आंधी का शोर सुनता रहा.

विलीन होते हुए जिन्न से उसने कहा, "ठहरो, जब मैं घर आ रहा था तो चौराहे के पास ही कुछ लोग इकट्ठे हो रहे थे. एक आदमी चबूतरे पर खड़ा होकर उनसे कुछ कह रहा था. यह भीड़ किन लोगों की है और वे वहां क्यों जमा हुए हैं?"

फिलिप्स ने उत्तर दिया, "ये लोग बेघरबार हैं. चबूतरे पर खड़ा आदमी उनके लिए रैन बसेरा ढूंढ़ने की कोशिश करता है. कुछ लोग उसे पैसे दे जाते हैं और उन पैसों में से वह लोगों को सुविधा पहुंचाने की कोशिश करता है. इसी कारण वे लोग कतार में खड़े रहते हैं. बारी-बारी से उनकी व्यवस्था की जाती है."

चामर्स ने कहा, "खाना तैयार होते ही उनमें से किसी एक को यहां बुला लाना. हम दोनों साथ ही खायेंगे."

अपनी लंबी नौकरी में फिलिप्स पहली बार हकलाते हुए बोला, "क. . . क. . . किसे?"

चामर्स ने उत्तर दिया, "तुम किसी को भी पसंद कर सकते हो. सिर्फ इतना ध्यान रखना कि उसके होशोहवाश कायम हों और वह गंदा न हो."

बगदाद के खलीफा का पार्ट अदा करना, कार्सन के लिए एक नयी बात थी. परंतु आज रात अपनी उदासी दूर करने के परंपरागत उपाय उसे अधूरे प्रतीत हो रहे थे. अपनी उदासवृत्ति को कुछ हल्का करने के लिए वह कोई अजीबोगरीब तरीका आजमाना चाहता था.

ठीक आध घंटे में फिलिप्स की तैयारी पूरी हो गयी. नीचे के होटल के वेटर ने स्वादिष्ट खाना लाकर टेबल पर सजा दिया. मोमबत्तियों के धीमे गुलाबी प्रकाश में दो व्यक्तियों के लिए सजाया गया वह टेबल आकर्षक दिख रहा था.

कुछ ही देर में फिलिप्स उन ठिठुरते हुए भिखारियों की पंक्ति में से एक को पकड़ लाया और उसे किसी बड़े पादरी या पकड़े गये डाकू की तरह पेश कर दिया.

उसके फटे-पुराने कोट के बटन गले तक बंद किये हुए थे, फिर भी ऊपर से कमीज का कालर दिखाई दे रहा था. उसके बर्ताव में झिझक या संकोच का नामोनिशान भी नहीं था. चामर्स ने खड़े होकर उसका स्वागत करते हुए कहा, "अगर आप मुझ पर अनुग्रह करें तो आपके साथ खाना खाने में मुझे बड़ा आनंद होगा."

अपनी कठोर और आक्रामक आवाज में वह दरवेश बोला, "मेरा नाम प्लूमर है. और अगर आप मेरे स्थान पर होते तो आप अपने मेजबान का नाम जरूर जानना चाहते."

चामर्स ने उत्तर दिया, "मैं आपसे कहने ही वाला था. मुझे चामर्स कहते हैं. क्या आप सामने बैठना पसंद करेंगे?"

बिखरे हुए रंग-ढंग वाला प्लूमर, फिलिप्स द्वारा आगे सरकायी गयी कुर्सी पर बैठ गया. उसके तौर-तरीके से ऐसा लगता था कि इस तरह के संभ्रांत ढंग से वह पहले भी भोजन कर चुका है.

फिलिप्स ने तरह-तरह के फल और मछलियां लाकर टेबल पर रख दीं.

प्लूमर बोल पड़ा, "बहुत अच्छे. तो जिस पर जिस आयेंगी. शाबाश, भई बगदाद के खलीफा! . . तो मैं खाना खत्म होने तक आपकी शहजादी हुई. एक लंबी मुद्दत के बाद मुझे एक असली अरबी खलीफा मिला है. तकदीर तो अच्छी दिखाई देती है. कतार में अपना नंबर तैंतालीसवां था. मैं गिन ही रहा था कि आपका दूत मुझे भोजन कराने ले आया. आज रात को आसरा मिलने की संभावना उतनी ही थी, जितनी कि मेरे अमरीका के राष्ट्रपति बनने की. तो जनाब, हारून अल रशीद, आप मेरी रामकहानी भी सुनना चाहेंगे? आप क्या पसंद करेंगे —खाते खाते उसका एक-एक प्रकरण सुनाऊं या अंत में सिगार या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कॉफी पीते हुए पूरी कहानी एक साथ."

चार्मर्स बोला, "मैं तो आपकी रामकहानी जानना नहीं चाहता. विश्वास कीजिए, मुझे तो यों ही बैठे-बैठे किसी अजनबी के साथ खाना खाने की धुन सवार हो गयी थी. मेरी जिज्ञासा से आपको बिल्कुल परेशान नहीं होना पड़ेगा.

"आज आपने जो खातिरदारी की है, इसका अनुभव जीवन में पहली बार हुआ है, उसके उपयुक्त कोई कहानी भी मेरे पास नहीं है, परंतु आप सुनना चाहें तो मैं आपको अपनी रामकहानी सुना सकता हूं."

एक घंटे बाद, आगंतुक संतोष की सांस छोड़कर, आराम से बैठ गया. फिलिप्स ने टेबल साफ करके काफी और सिगार ला दी.

चेहरे पर एक रहस्यमयी मुस्कराहट लाकर आगंतुक ने पूछा, "आपने कभी प्लूमर का नाम सुना है?"

ऐसा क्यों होता है कि सत्य को आमंत्रित करके भी मनुष्य उसका सामना करने में स्वयं को असमर्थ पाता है? अंदर की प्रवृत्तियों को चेहरे पर उजागर करने वाले चित्रकार से अपनी पत्नी का चित्र बनवाकर चार्मर्स उसे सीधे-सीधे देखने का साहस क्यों नहीं जुटा पाता? प्रस्तुत है पति-पत्नी संबंधों के इसी नाजुक पक्ष को उजागर करती अमरीकी कहानी

चार्मर्स बोला, "हां, नाम सुना है. शायद वह एक चित्रकार था, जो कुछ वर्ष पहले काफी मशहूर था."

मेहमान बोला, "हां, कोई पांच वर्ष पहले, परंतु उसके बाद तो मैं ऐसा फिसला कि फिर संभल ही न पाया. वह बदनसीब मैं ही हूं. मैंने अपना आखिरी चित्र, दो हजार डालर में बेचा था, परंतु उसके बाद मुझसे कोई मुफ्त में भी चित्र बनवाने को तैयार न हुआ."

"क्यों? ऐसी क्या बात हो गयी?"

"बात इतनी विचित्र थी कि मैं खुद भी समझ नहीं सका, कुछ दिन तक तो चैन की बंसी बजी, बड़े-बड़े लोगों से मुलाकात हो गयी और चित्रों की मांग बढ़ती गयी. अखबारों ने भी प्रशंसा के पुल बांधे. परंतु उसके बाद विचित्र बातें होने लगीं. जैसे ही मैं कोई चित्र पूरा करता, लोग उसे देखने आते और आपस में कानाफूसी करने लगते. क्योंकि अनजाने ही, जिन व्यक्तियों के मैं चित्र बनाता, उनके चेहरों पर, उनके हृदय के गुप्त भावों को अंकित करने की मुझमें शक्ति आ गयी, मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों हुआ? वैसे तो मैं जैसा देखता था वैसा ही चित्रित करता था, परंतु परिणाम कुछ और ही निकलता. मेरे ग्राहक इस कदर नाराज हुए कि उन्होंने चित्र खरीदने से इंकार कर दिया. एक बार मैंने एक सुंदर और प्रसिद्ध महिला का चित्र बनाया. पूरा होने पर महिला के पति बहुत देर तक तो उसे घूर-घूरकर देखते रहे और अगले हफ्ते उन्होंने उससे तलाक ले लिया.

"उसके बाद मेरा काम-काज हो गया. लोग नहीं चाहते थे कि उनके गुप्त दुर्गुणों का दर्शन उनके चित्रों में हो. चेहरे पर बनावटी मुस्कराहट लाकर और मुंह बनाकर वे किसी को भी धोखा दे सकते थे, परंतु मेरे चित्रों से यह आशा रखना व्यर्थ था. मुझे एक भी तस्वीर बनाने का आर्डर नहीं मिला. कुछ दिन मैंने एक अखबार में काम किया और फिर एक प्रेस में. परंतु वहां भी वही परेशानी आ खड़ी हुई."

चार्मर्स उत्साह से बोला, "आपके बनाये हुए हर चित्र में, ये अप्रिय भाव दिखाई देते थे या कुछ चित्र आपकी करामात से बच भी जाते थे?"

प्लूमर बोला, "कुछ क्यों, कई बच्चों के चित्रों में तो यह बात अक्सर दिखाई नहीं देती थी और बहुत-सी औरतें और पुरुष भी इससे बच जाते थे. आप जानते हैं—हर आदमी तो बुरा नहीं होता. जब उनके मन में कोई मैल नहीं होता था तो मेरे चित्रों में भी उसकी झलक नहीं आ पाती थी, ऐसा क्यों और कैसे होता था, यह मैं नहीं जानता, परंतु ऐसा होता जरूर था."

विदेशी डाक से आया हुआ वह फोटो चार्मर्स की टेबल पर अब तक यों ही पड़ा था. दस मिनट बाद उसने प्लूमर से रंगीन खड़िया द्वारा उसकी नकल करने को कहा. कोई एक घंटे बाद कलाकार अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और उसने अंगड़ाई ली. जम्हाई लेता हुआ वह बोला, "काम पूरा हो गया, माफ करना, मुझे बहुत देर लग गयी, पर काम बहुत दिलचस्प रहा. कल रात भी बिस्तर नसीब नहीं हुआ और आज तो मैं इतना थक गया हूं कि अब आज्ञा चाहता हूं."

चार्मर्स उसे बाहर के दरवाज तक छोड़ने गया. जाते समय उसके हाथ में कुछ नोट थमा दिये.

प्लूमर बोला, "वाह, वाह, मुझे इनकी जरूरत भी थी. इसके लिए और बढ़िया भोजन के लिए, बार-बार धन्यवाद. आज की रात तो मैं फूलों की सेज पर सोकर बगदाद के सपने देखूंगा. मुझे आशा है कि सुबह उठने के बाद आज रात की घटनाएं कहीं ख्वाब की बातें न मालूम हों."

चार्मर्स फिर कालीन पर चक्कर काटने लगा. कमरे के दायरे में उस टेबल पर वह बार-बार जाता, जिस पर प्लूमर द्वारा बनाया हुआ चित्र रखा था. दो-तीन बार, उसके पास जाकर चित्र को देखने की कोशिश की, पर असफल रहा. चित्र के नीले और सुनहरे और भूरे रंगों की आभा तो उसने देखी, परंतु उसके हृदय की आशंका ने चित्र के चारों तरफ मानो ऐसी दीवारें खड़ी कर दी थीं जो उसे दूर ही रोक देती थीं. वह बैठकर स्वस्थ होने की कोशिश करने लगा. सहसा उसने घंटी बजाकर फिलिप्स को बुलाया.

"इसी भवन में एक चित्रकार रहता है. क्या तुम उसके कमरे का नंबर जानते हो?"

फिलिप्स बोला, "हां साहब, वह ऊपर की मंजिल पर पहले ही कमरे में रहता है."

"उनसे जाकर कहो कि जरा मेरे पास आ जायें."

थोड़ी ही देर में चित्रकार नीचे आ गया. अपना परिचय देकर चार्मर्स बोला, "सामने के टेबल पर खड़िया से बनाया हुआ एक चित्र पड़ा है. यदि आप उसे देखकर, उसके कलात्मक गुण-दोष बता सकें तो बड़ी कृपा होगी."

नौजवान कलाकार मेज के पास आ गया और चित्र को उठाकर देखने लगा. चार्मर्स पीठ फेरकर एक कुर्सी पर झुका हुआ खड़ा रहा. कुछ मिनट बाद उसने पूछा, "कहिए, क्या राय है?"

कलाकार बोला, "यह चेहरा? यह तो किसी देवी का ही हो सकता है. क्या मैं पूछ सकता हूं कि यह कौन. . . "

"मेरी पत्नी."

चार्मर्स चिल्लाया और उसने उस आश्चर्यचकित कलाकार को आलिंगन में कसके, उसका हाथ झकझोरते हुए उसकी पीठ थपथपायी.

"मेरे दोस्त, वह मेरी पत्नी है, जो इस समय यूरोप की यात्रा कर रही है. यह खड़िया का चित्र ले जाओ और इसके आधार पर एक ऐसा चित्र बनाओ, जो तुम्हारे जीवन का सबसे महान चित्र हो. मैं तुम्हें मुंह मांगा मूल्य दूंगा." □

रूपांतर : शैलेंद्र प्रताप सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुधा

मोपासां

उस औरत का चेहरा पीला पड़ गया था और शरीर पसीने से तर-बतर... वह निश्चय ही बेहोश हो जाती अगर वह नौजवान खुद आगे बढ़कर उसकी मदद न करता. कैसी थी यह औरत और कौन था वह नौजवान जिसने बच्चे की तरह उस औरत का दूध पीकर दो-दो मुसीबतें एक साथ हल कर लीं. प्रख्यात फ्रांसीसी कथाकार की यादगार कहानी—

आड़े-तिरछे पहाड़ी सिलसिले दूर तक फैले हुए थे. रेल की पटरी समुद्र और काले पथरीले पहाड़ों के बीच सुनहरी रेत पर मिली हुई थी. रेल अभी कुछ देर पहले जेनेवा से चली थी और अब पटरी पर किसी फौलादी सांप की तरह रेंग रही थी. वह कभी गुफा में प्रवेश करने वाले किसी जानवर की तरह अचानक सुरंग में गायब हो जाती और कुछ आगे जाकर दुबारा प्रकट हो जाती.

गाड़ी के आखिरी डिब्बे में एक खूबसूरत जवान और हृष्ट-पुष्ट स्त्री बैठी हुई थी. उसके सामने की सीट पर एक नौजवान मर्द मौजूद था. वे दोनों चुप थे, लेकिन कभी-कभी एक दूसरे की ओर देख अवश्य लेते थे. स्त्री की आयु पच्चीस वर्ष होगी. वह खिड़की के निकट की सीट पर बैठी बाहर के दृश्यों से आनंदित हो रही थी. सामान्य श्रमी किसान-स्त्रियों की तरह वह अच्छे-खासे शरीर की मालिक थी. काली-उजली आंखें, भरा हुआ सीना और भरे-भरे गाल उसके अच्छे स्वास्थ्य के स्पष्ट चिन्ह थे. उसकी सीट के नीचे कई पार्सल थे और उसकी गोद में एक टोकरी रखी हुई थी.

नौजवान की आयु बीस वर्ष के लगभग थी. वह एक दुबला-पतला और धूप की तपिश में तपा हुआ नौजवान था. उसकी काली रंगत इस बात का सबूत था कि वह जलते सूर्य के नीचे परिश्रम करने का आदी है. उसके बराबर एक गठरी रखी हुई थी. यही उसकी कुल पूंजी थी. गठरी में जूतों की एक जोड़ी, एक कमीज और एक जैकट के सिवा कुछ नहीं था. उसने अपनी कुदाल और फावड़ा, दोनों चीजें रस्सी के एक टुकड़े से बांधकर सीट के नीचे रख ली थीं. वह शायद काम की तलाश में जा रहा था.

उभरता हुआ सूर्य समुद्री—तट पर आग बरसा रहा था. मई के आखिरी दिन थे. रेल की खुली हुई खिड़कियों से भीनी-भीनी खुशबू आ रही थी. नारंगी और संतरे के पेड़ खूबसूरत फूलों से लदे हुए थे. उनकी खुशबुएं जंगली गुलाबों की खुशबू से मिलकर एक अजीब-सी दिल लुभाने वाली महक में ढल गई थीं.

इस इलाके में गुलाब बहुत आम थे. हर जगह गुलाब ही गुलाब थे. गुलाब की सदाबहार खुशबू हर समय वायुमंडल को महकाए रखती थी. उस नशीली खुशबू के कारण एक उत्तेजक सरूर छाया रहता था.

रेल बहुत धीरे-धीरे चल रही थी, जैसे वह भी प्रकृति के इस बाग में धीरे-धीरे टहलते हुए आनंदित हो रही थी. रेल कुछ सफेद मकानों पर आधारित छोटे-छोटे स्टेशनों पर बार-बार ठहर जाती. फिर कुछ क्षणों बाद जोरदार सीटी बजाकर एक झटके से आगे बढ़ने लगती उस समय कोई यात्री रेल में सवार नहीं हो रहा था. ऐसा लगता था, सारी दुनिया ऊंघ रही है और वसंत की उस गर्म सुबह को कोई भी यात्रा करने पर राजी नहीं है.

स्त्री थोड़े विराम से आंखों मूंद लेतीं, लेकिन जब उसे यह महसूस होता कि उसकी गोद में रखी हुई टोकरी फिसलकर नीचे गिरने वाली है, तो वह अचानक आंखों खोल देती और टोकरी पर अपनी पकड़ मजबूत कर लेती. फिर कुछ मिनट तक बाहर ताकती और दुबारा ऊंघने लगती. उसके माथे पर पसीने की बूंदें फूट आयी थीं और बड़ी मुश्किल से सांस ले रही थी. जैसे उसका दम घुट रहा हो.

नौजवान सीने पर ठोड़ी टिकाये मेहनतकश किसानों की शांत नींद सो रहा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेल एक स्टेशन से चली. स्त्री अचानक जाग गयी और टोकरी से एक डबल-रोटी, कुछ उबले हुए अंडे, और ताजा किशमिश निकालकर अंगूरी शराब के साथ खाने लगी.

नौजवान भी जाग गया था.

स्त्री हर ग्रास के बाद एक घूंट शराब पीती और दम लेने के लिए रुक जाती. इस तरह थोड़ी ही देर में हर चीज नजरों से गायब हो गयी. अंडे, डबलरोटी, किशमिश और मदिरा. कुछ भी नहीं बचा. स्त्री का खाना खत्म होते ही नौजवान ने दुबारा आंखें बंद कर लीं.

स्त्री ने कुछ बैचेनी महसूस की. उसने हाथ पीछे करके अपने चुस्त सीनापोश का हुक खोल दिया. उसी क्षण नौजवान ने भी आंखें खोलकर उसकी ओर देखा.

स्त्री ने नौजवान की नजरों की कोई परवाह नहीं की, बल्कि चुपचाप गरेबान के बटन खोलने लगी, क्योंक सीने के उभार के कारण कमीज का अगला हिस्सा बहुत कसा हुआ था. स्त्री ने जैसे ही ऊपर के दो बटन खोले, उसके चेहरे पर संतोष की लहर दिखाई दी. जब उसे कुछ शांति मिली, तो उसने इतालवी भाषा में बड़े प्रवाह के साथ सहसा नौजवान से कहा, "इतनी गर्मी हो रही है कि सांस लेना दूभर है."

नौजवान ने उसी भाषा और उसी स्वर में उत्तर दिया, "और ऐसे मौसम में सिर्फ सफर किया जा सकता है."

"क्या तुम पाईडमोंट के रहने वाले हो?" स्त्री ने पूछा.

"हां, मैं ऑस्टी से आ रहा हूं."

"मेरा संबंध कसाली से है." स्त्री ने कहा.

वे दोनों पड़ोसी कस्बों से संबंध रखते थे, अतः उन्होंने आपस में बातचीत शुरू कर दी और वही परंपरागत प्रकार की बातें दुहराने लगे, जो उन लोगों की आदत होती है.

स्त्री विवाहित थी. उसके तीन बच्चे थे. बच्चों को वह अपनी बहन के पास छोड़ आयी थी और अब फ्रांस के एक ऊंचे खानदान की किसी महिला के पास जा रही थी, क्योंकि उसे महिला के नन्हे बच्चे को दूध पिलाने की जिम्मेदारी संभालनी थी.

जहां तक नौजवान का संबंध था, वह काम की तलाश में निकला था. उसे बताया गया था कि मार्सेल्स में काम मिल जाने की आशा है.

इस बातचीत के बाद दोनों चुप हो गये. गर्मी असहनीय होती जा रही थी. हवा के साथ-साथ गर्द गुबार भी उड़ने लगा था. गुलाब और नारंगियों की खुशबू भी तेज हो गयी थी. दोनों यात्री एक बार फिर नींद की वादियों में खो गये. बीच में नौजवान की आंख खुलती और उसने अपने सामने बैठी हुई स्त्री का जायजा लिया. स्त्री की आंखें मुंदी हुई थीं और चेहरे पर बेचैनी नजर आ रही थी.

नौजवान ने महसूस किया कि स्त्री की आंखें व्यग्र हो गयी हैं और उसका चेहरा तमतमा रहा है, जैसे सांस लेने में कष्ट हो रहा हो. उसका गरेबान अब पूरी तरह खुला हुआ था और उसकी आंखों में अजीब-सी निद्रा थी, "मैंने कल से दूध नहीं पिलाया है." स्त्री ने धीमें स्वर में कहा, "ऐसा लग रहा है, कि मैं बेहोश हो जाऊंगी."

नौजवान चुप रहा. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दे. स्त्री ने कहा, "जब किसी स्त्री का स्वास्थ्य मुझ जैसा हो और कुदरत ने उसे इस कदर ज्यादा दूध दिया हो, तो उसके लिए दिन में कम से कम तीन बार दूध पिलाना जरूरी हो जाता है. वरना अजीब घुटन-सी होती है. मुझे अपने दिल पर बोझ-सा महसूस हो रहा है. सांस लेने में भी कठिनाई हो रही है. और सारा शरीर सुन्न होता हुआ लग रहा है. दूध की ज्यादती भी मुसीबत बन जाती है."

"जी. . . जी हां," नौजवान ने कहा.

स्त्री का चेहरा पीला हो रहा था और उसका सारा शरीर पसीने में भीग गया था. वह निश्चय ही बेहोश होने वाली थी, "मुझे सिर्फ उंगलियों से दबाना पड़ता है." स्त्री ने सरगोशी के अंदाज में बड़बड़ा रही थी, "फिर जैसे दूध का झरना फूट पड़ता है. देखने में यह चीज अजीब लगती है, लेकिन इस में कोई अतिशयोक्ति नहीं है. तुम यकीन नहीं करोगे. कसाली में बहुत-से पड़ोसी मुझे देखने के लिए जमा हो जाते थे."

"सच?"

"हां?" सच. . . मैं तुम्हें अभी दिखा सकती हूं, लेकिन इस से मुझे कोई आराम नहीं पहुंचेगा, क्योंकि उंगलियों के दबाव से इतना दूध नहीं निकलता कि मेरे दिल का बोझ कम हो जाये." स्त्री चुप हो गयी.

रेल किसी स्टेशन पर रुकी. प्लेटफार्म पर चिथड़ों में लिपटी हुई एक बहुत कमजोर और कृश औरत अपनी गोद में एक बच्चा उठाये खड़ी थी. बच्चा रो रहा था. औरत ने ठंडी सांस लेते हुए कहा, "मैं इस औरत की मदद कर सकती हूं. और. . . और वह बच्चा मेरी मदद कर सकता है. तुमने अंदाजा लगा लिया होगा कि मैं कोई धनी स्त्री नहीं हूं. मैं अपना घर-बार और अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को सिर्फ कुछ पैसे कमाने की खातिर छोड़ कर आयी हूं, लेकिन अगर मुझे इस बच्चे को दूध पिलाने की इजाजत मिल जाये, तो मैं उसकी मां को पांच फ्रांक देने के लिए तैयार हूं. इस तरह यह बच्चा भी संतुष्ट हो जायेगा और मुझे भी शांति मिल जायेगी.

वह फिर चुप हो गयी. उसने अपना गर्म हाथ कई बार माथे पर फेरा. माथा पसीने से भीग रहा था. उसने कराहते हुए कहा, "अब. . अब मुझ से बर्दाश्त नहीं होगा. मुझे ऐसा लगता है, जैसे. . . जैसे मेरा दम घुट जायेगा. मैं मर जाऊंगी." स्त्री ने बरबस अपना लिबास फाड़ दिया. नौजवान की आंखें फट गयीं. सीना बेहद स्वस्थ था. स्त्री की कराहटें बढ़ गयी थीं, "आह. . उफ, मैं क्या करूं.?"

गाड़ी दुबारा चल पड़ी. तेज हवा के झोंकों के साथ एक बार फिर खुशबुओं की लपटें आने लगीं. रेल किसी पुल से गुजर रही थी. कभी-कभार कोई छोटी-सी बादबानी नाव दिखाई दे जाती, लेकिन इस प्रकार जैसे ठहरे हुए समुद्र में सोयी हुई हो. नौजवान घबराया हुआ था. उसने कुछ झिझकते, शरमाते, और हकलाते हुए कहा, "मादाम, मैं . . . शायद मैं आप की कुछ मदद कर सकूं."

स्त्री ने क्षीण आवाज में जवाब दिया, "हां. . अगर तुम चाहो तो, तुम्हारा उपकार होगा.. यह अब असहनीय हो चुका है.!"

नौजवान घुटनों के बल बैठ गया. स्त्री ने आगे झुक कर कथई रंग की छाती इस प्रकार स्नेह से नौजवान के मुंह में दे दी, जैसे वह कोई नन्हा बच्चा हो. स्त्री ने जब दोनों हाथों से पकड़ कर अपनी छाती आगे बढ़ाई थी, तो दूध की एक बूंद उभर कर आयी थी, नौजवान ने बढ़कर जल्दी से उसे चाट लिया था. फिर मुंह लगा कर अधीरता से दूध पीने लगा.

थोड़ी देर बाद स्त्री ने अचानक कहा, "इस तरफ बस करो. अब दूसरी तरफ. . . . "

नौजवान ने बड़ी आज्ञाकारिता से दूसरी तरफ मुंह लगा दिया. स्त्री ने अनजाने रूप में दोनों हाथ नौजवान की पीठ पर रख दिए और बड़े निश्चिंत अंदाज में गहरी-गहरी सांसें लेने लगी. वह अब नारंगियों की महक से आनंदित हो रही थीं.

नौजवान ने कोई जवाब नहीं दिया. वह किसी प्यासे की तरह उस कुदरती झरने से तृप्त होता रहा. उसने और अधिक आनंदित होने के लिए दोनों आंखें भी बंद कर लीं. लेकिन स्त्री ने उसे एक ओर हटा दिया, "बस इतना काफी है. अब मुझे आराम मिल गया है. तुमने मुझे एक नया जीवन दिया है."

नौजवान ने मर्राई हुई आवाज में कहा, "उपकार तो आपने मुझ पर किया है मादाम, पिछले दो दिन से मुझे खाने को कुछ नहीं मिला था." ☐

रूपांतर : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपाजीवा

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

सामान्य धारणा है कि देह का व्यापार कोई भी स्त्री अपनी इच्छा से नहीं करती. तो फिर वे कौन से कारण थे कि अपने पति की इच्छा के विरुद्ध श्यामा यह कार्य कर रही थी? कौन सी प्रतिहिंसा की आग सुलग रही थी उसके भीतर कि अपना सब कुछ खोकर भी उसे उस आग से मुक्ति नहीं मिल पा रही थी. प्रस्तुत है, वयोवृद्ध कवि-कथाकार की कलम से निकला यह युवा संस्मरण

स्त्री-चरित्र और पुरुष के भाग्य को अगाध, अगम्य बताया गया है जिसे मनुष्य क्या, देवता भी नहीं जानते. समझदारी में देवता को मनुष्य से ऊपर रखने की भारतीय आदत युगों पुरानी है. जानकारी में नहीं पर अज्ञान में वे मनुष्य के साथ इस प्रकार के नीति-कथनों में अक्सर दिखाई देते हैं. शून्य की ओट में छिपे जादूगर द्वारा चुपके से फूंके गये मंत्र से पुरुष का भाग्य पत्थर होकर रह जाता है. इस निचाट स्तब्धता में स्त्री का मन संयमियों की तरह जागता ही नहीं, प्रतिघातों और आंसुओं की फसल भी बोया करता है. इसी अंतहीन रतजगे को उसका चरित्र कहा जाता है.

याद नहीं आता, दशकों से किसी पार्क या बगीचे में तन-मन को ढीला कर कभी बैठा होऊं. एक जमाना था, लखनऊ का अमीनाबाद पार्क अपना दूसरा घर लगता था. आशा-निराशा, शांति-अशांति, भीतर के आघात-प्रतिघात में यह पार्क शाम से लेकर लगभग कलेंडर की तारीख बदलने तक हमारा साथी था—बरसते पानी, कड़कती ठंड को छोड़कर. सब साथी, सहपाठी वहां मिलते. पार्क की दिलकश भीड़ का खिंचाव, हरी-हरी दूबीली महक, चपलता और आनंद की अमराइयों वाला गूंजता कलालाप हमें घंटों वहां से उठने न देता था. बाहर चारों ओर घूमते-फिरते जन-समूह के बीच में खुली तरावट से भीगा-भीगा उन दिनों का यह पार्क विश्रांति और सकून का उपनिवेश लगता था.

पार्क में उस अकेली युवती को घूमते हम रोज देखते. खुलता गेहुआं रंग और कुछ इस तरह की आकर्षक मधुर मुखाकृति कि तीस-बत्तीस वर्ष की आयु में भी यौवन संभाले न संभलता था. सफेद साड़ी और हलके रंग का ब्लाउज वह पहने रहती, जिसके भीतर से उसके चमकीले केशों की श्यामता फूट-फूट पड़ती. स्वच्छंदता जैसे साकार हो मंद हंस-गति से चल रही हो. अवध कहता, "बनाते समय विधाता ने कुछ 'किलोवाट' बिजली मिलायी होगी." पार्क के कोने पर बने हुए कुएं के ताजे ठंडे पानी का डोल लिये खट-खट आवाज करते पानी पिलाने वालों से कभी-कभी बात करती. फिर अकेली नीचे ढलुआं सड़क की ओर चली जाती जो जाकर लाटूश रोड से मिलती है.

सुनने में आता, श्यामा उसका नाम है, वहीं कहीं पास किसी गली में रहती है और गृहस्थ पेशा करती है. उन दिनों (पचास साल पहले) किसी रूपाजीवा का इस प्रकार नगर के सबसे संभ्रांत चहल-पहल भरे पार्क में घूम-घूमकर ग्राहक ढूंढना अपवाद था—अकेला अपवाद. कुललनाओं, बहुओं-बेटियों से भरे पार्क में इस प्रकार की अन्य कोई बात देखने-सुनने में न आती थी. नौ बजे के बाद श्यामा पार्क में न दिखती थी. अवध का ध्यान उसी की ओर रहता. कभी कहता, "आज जल्दी चली गयी—साढ़े आठ ही तो बजा है."

कुछ दिनों से अवध उड़ा-उड़ा सा रहने लगा था. बीच-बीच में हमारे बीच या तो न आता या जल्दी उठ जाता. उसी ने हमें बताया कि श्यामा लाटूश रोड के कालका भंडार (उन दिनों लखनऊ की सबसे बड़ी बंगाली मिठाई की दूकान) के पीछे की लंबी गली में रहती है. परिवार में और लोग हैं. दिन में सलमे-सितारे की कढ़ाई करती है—शाम को तफरीह....

महेश कहता, "सिर्फ हवाखोरी के लिए पार्क आती है?"

अबरार कहता, "साथ-साथ ग्राहकखोरी. अवध जैसे मिलनसार, मासूम की तलाश भी. . . " अवध जवाब न देता. उसमें एक गंभीर परिवर्तन दिखाई दे रहा था. सहानुभूति की एक विचित्र आंतरिकता उसकी आंखों से ढरकती थी. हमारे सारे फिकरे बेकार जाते. जवाब देना जैसे वह भूला जा रहा था. स्कूल से लेकर बादशाहबाग (यूनिवरसिटी) तक उठते-बैठते का जो साथी हंसी-मजाक में दिन-रात डूबा रहता था, उसे दोस्तों की चुहलभरी शामों से अब सरोकार न था. उसके घर पर जाते तो बेरंग वापस आते.

अबरार कहता, "खातून भी नहीं दिखती. बुजुर्गों का कहना है—इश्क बुरी बला है. तुम तो जिगरी हो रतन! बताओ, कहां तलाशें अवध को! हमारा आधा मजा ले गया है...."

महेश कहता, "क्या बनियाबाट करता है! आधा वह अकेला आधे में इतने हम! इंसाफ की बात करो मियां."

एक दिन अवध ने सवेरे आठ बजे मेरे घर आकर कहा, "श्यामा की मां का 'हार्टफेल' हो गया. चलो मेरे साथ. . .मिट्टी लेकर भैंसाकुंड चलना है."

रुकने का समय न था! मैंने साइकिल उठायी—चल पड़ा. लाटूश रोड के पीछे की साफ-सुथरी गली. पचास साल पहले आज जैसी घनी आबादी की मारी न थी. मकान दो मंजिला था. बाहर चबूतरे पर पड़ोस के चार-छह व्यक्ति बांस की टिकटी बना रहे थे. मैं अवध के पीछे-पीछे ऊपर गया, जहां कमरे में पलंग के नीचे श्यामा की मां की मृत देह शीतल पाटी पर, अंडी की चादर से गरदन तक ढकी पड़ी थी. एक ओर चौकी थी, जिस पर धूप, दीप, आरती, नैवेद्य, तांबे के पूजा पात्र, ऊदबत्ती, छोटे से सिंहासन पर बासी फूलों से ढकी शालग्राम की बटियां, सफेद पत्थर की शिवलिंगी सब यथास्थान रक्खे थे. दीवार पर बाजार में बिकने वाली देवी-देवताओं की रंगीन तस्वीरें लगी थीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके बीच में एक उतना ही बड़ा कोई संभ्रांत फोटो टंगा था.

अर्थी तैयार कर हम सात-आठ लोग गोमती तटवर्ती भैंसाकुंड श्मशान ले आये. फासला लंबा था. रास्ते भर बदल-बदलकर कंधा देते वहां पहुंचे तो थक चुके थे. अवध को मुखाग्नि देते देखकर मैं विस्मित रह गया. अग्नि ने शव को उदरस्थ कर लिया. रक्त, मांस, पानी सी-सीकर जल रहा था.

एक दिन अवध से मैं पूछ बैठा, "श्यामा से तुम्हारा इतना हेल-मेल हो गया. . . हमें पता भी नहीं. सभी हैरान हैं. . . ."

"हैरानी कैसी?" अवध ने निर्भीक जिज्ञासा से पूछा.

मैंने कहा, "मज़ाक उड़ाते-उड़ाते तुम उसी में मुब्तिला हो गये.... जरूरत क्या थी?"

"चलो मेरे साथ. कल मां की तेरहवीं है. अनाथालय के बच्चों के खाने का इंतजाम, ब्राह्मणों को दिये जानेवाले कपड़े, बरतन की खरीद... सारा सरंजाम मुझे करना है."

अवध की आंखों में गजब की शालीनता थी. हंसी के ठहाकों का स्थान मुख-मुद्रा पर फैली किसी अचीन्हीं घनी गंभीरता ने ले लिया था. मैंने कहा, "अभी ट्यूशन पर जा रहा हूं. . . दोपहर बाद बेशक चलूंगा."

श्यामा के घर में उसी दिन जैसी बोझिल स्तब्धता भरी थी. एक नौकरानी जरूर नयी दिखाई दी जो इधर-उधर के सारे काम कर रही थी. नीचे के कमरे का अधपथरा अवसन्न आर्तजीव उसी प्रकार खाट पर पड़ा था. अस्पृश्य. . . बिलकुल त्याज्य जैसा. मुझे देखकर आज श्यामा के चेहरे पर आश्चर्य की झलक दिखाई दी. उस दिन की बात दूसरी थी. . . .घर में पड़ी लाश श्मशान ले जानी थी. मैंने किसी अंतर्भूत आदर से प्रेरित दोनों हाथ जोड़े. अवध कह रहा था, "रतन मेरा सबसे नजदीकी दोस्त है. . . भाई से भी बढ़कर. बचपन से आज तक का साथी. . . . हमारा घर भी बिलकुल करीब है जैसे यहां से झंडेवाला पार्क."

आत्मीयता की आभा से श्यामा जगमगा उठी. अवध के साथ दूसरे दिन के पूजन-हवन, खान-पान के लिए सामान की सूची बनाने लगी. बीच-बीच में श्यामा मुझे देखती थी—अपनी चितवन से एक जैसे विषाद-स्निग्ध स्नेह का तार हम दोनों से जोड़ लेती थी. रात के आठ बजे अहियागंज से बर्तन, बाजार से कपड़ा, फल-फल, सब्जी आदि लेकर हम आये, उसी पक्षाघात-पंगु के पलंग के पास खड़ी श्यामा कठोर स्वर में कह रही थी, "मुझे क्यों बार-बार बुलवाते हो. . . .बात करना तो दूर तुम्हारा पापी मुंह भी नहीं देखना चाहती. पड़े-पड़े अपना कर्म-भोग भोगो. वे चली गयीं जो तुम्हारे सारे अन्याय, बुरे काम भूलकर तुम्हारी देख-संभाल करती थी. कल के बाद मैं बाहर निकलूंगी. . . कढ़ाई-बुनाई का काम लेने जाऊंगी, धंधा. . . करूंगी.

आर्त जीव हकला-हकलाकर गिड़गिड़ा रहा था, "तुम भले घर की बहू होकर कसब कमाती हो. खाने-खरचने को घर में है. . . हे भगवान. मैं सब लाचार देखता हूं. . . मर नहीं जाता."

ऊपर हम साफ सुन रहे थे—निष्ठुरता के साथ श्यामा ने कहा था, "पापी जल्दी नहीं मरते. ... तुम्हारी तरह कढ़िलते हैं. . . अपना फल भोगते हैं. तुम्हारी आंखों के सामने मैं सब करूंगी...तुम कुल-मर्यादा, शर्म-हया की रट लगाना."

चारपायी पर पड़े अपंग ने शिथिल होकर आंखें बंद कर ली थीं. पूरे टेढ़े पड़ गये. अशक्त मुख से इतना बोलने की शक्ति जहां से आयी थी मानों वहीं लौट गयी थी.

श्यामा ऊपर आकर हमारे पास बैठ चुकी थी. अवध बोला . . . "आप क्यों इतना चिल्लाती-चीखती हैं, उत्तेजित होती हैं. वे तो ठीक बोल भी नहीं पाते. अधमरे पड़े रहते हैं. आप शांत रहा करिये...."

श्यामा के आक्रोश का तनाव ज्यों का त्यों था. अनेक बार का देखा, करुणाभा से मढ़ा नारी-सुलभ लालित्य भाप बनकर चेहरे से उड़ गया था. प्रति-हिंसा की निष्ठुरता से पूरी देह क्रोध की धौंकनी बन गयी थी. बोली, "व्यापार में यह मेरे पिता का हिस्सा हड़प गया. उनके मरने के बाद मेरी मां को पट्टी पढ़ायी—झांसा देकर अपने साथ मेरा ब्याह करा लिया. इसकी निस्संतान पत्नी साल भर पहले मरी थी. मैं अठारह बरस की हो चुकी थी. पिता के न रहने से यों भी अनाथ रह गयी. मां ने जवान लड़की की चिंता से मुक्ति पायी. अपने भाग्य से मैं संतुष्ट थी. पैसा था—कोई कमी न थी. अधेड़ दुहाजू पति पाकर भी मैं मगन थी. पर एक दिन जब अपनी मां के साथ इसे एक पलंग पर पड़े देखा तो स्तंभित रह गयी. दोपहर में मां का कमरा बंद पाकर न जाने किस प्रेरणा से मैंने दरवाजे की दरार से झांक लिया था."

मैं सांस रोके सब सुन रहा था. नीचे पड़ा अपाहिज श्यामा का पिता नहीं, पति है यह जानकर आश्चर्य था.

अवध यह सब अनुमानता या जानता न रहा हो ऐसा तो शायद न रहा होगा. पर जैसे श्यामा के मुंह से ही मुझे सब सुनवाना चाहता था. बोला. ". . .फिर.र...फिर...."

मां के दुख से सोयी श्यामा की प्रचंड फुफकार जाग पड़ी. बोली, "उस दिन की अपने मन की दशा बता नहीं सकती. घंटे भर बाद मां मेरे पास आयी तो वेदना के घटाटोप में डूबा मेरा मुंह देखकर सहज नारी वृत्ति से मेरे मन की बेचैनी जान गयी. फूट-फूटकर रोती हुई बोली, "मैं पापिनी हूं पर मैंने बड़ी मजबूरी में यह कुकर्म किया है. इसने मुझे फुसलाया बहकाया, 'बेटा, दामाद एक होता है' कह-कहकर धर्म की दुहाई देती किसी प्रकार मैं बचती रही. तब धमकाया, तुम्हें व्यभिचार का कलंक लगाकर घर से निकाल देने की—मां-बेटी दोनों को दर-दर का भिखारी बनाने की धमकी दी. डरकर मैंने अपना धर्म खो दिया.

"मां की बात में मुझे तनिक भी झूठ न लगा. इसके बाहरी दुराचार की बातें मैं जानती थी. पर यह बदचलन मेरी सगी मां को अपनी हवश का शिकार बना लेगा यह स्वप्न में भी न सोच सकती थी.

"भीतर-भीतर हम मां-बेटी सब देख सहते रहे. मेरे भीतर जघन्य प्रतिहिंसा धड़क उठी. वह शहर छोड़कर यह हमें यहां ले आया. दो साल में दो बार इसे घातक लकवा लगा है. पर पुरुष की गोद में मुझे बैठे ये टुकुर-टुकुर देखता है. लड़खड़ा-लड़खड़ा कर स्त्री के कुलशील की दुहाई देता है—सदाचार को ही नारी का धर्मधन बताता है.

"तब मैं कहती हूं—तब तुम्हारा लोक-लिहाज, नीति-धर्म कहां गया था जब मुझे सड़क पर निर्वसन खड़ा कर देने की धमकी देकर तुमने मेरी मां के साथ मुंह काला किया था. . . ."

उसी कलमुही मां की तेरही के लिये मंगाये गए दान-दक्षिणा के कपड़े, बरतन, कर्मकांड का सारा सामान सामने रखा था. मेरे तरुण मन में एक सर्वथा अपरिचित रहस्यलोक छिन्न-भिन्न हो खुला पड़ा था, जिससे रिसती पिछली सिसकियां साफ सुनाई देती थीं.

सामान को संभालते-संभालते श्यामा पागल की तरह हंसने लगी—उसकी विकृत हंसी की लहरें हमसे टकरा चलीं. बोली, "अभी तक मां का लिहाज था. कैसी भी थी, मेरे कल्याण में भ्रष्ट हुई और टूटी मां थी. उसकी दुर्दशा पर ध्यान जाते ही मैं ठिठक जाती थी. साथ आये ग्राहक को बाहर से विदा दे देती थी. घर के लोग जाग रहे हैं. . . .फिर कभी कह-कहकर दरवाजे की ओर बराबर आंख-कान गड़ाये इस करमजले को वे ही खाना-पानी, दवा-दारू देती थीं. मेरे मना करने, लगातार झिड़कने पर भी उनके भीतर की मां की करुणा-ममता न मानती थी. अब मैं हूं—यह नीच है. इसके सामने खुलकर वेश्या बनूंगी. . . शाम से अपनी इज्जत-आबरू का धुआं देखे. . ." कहते-कहते हम दोनों का अंत-र्ग्लानि से सूखा चेहरा देखकर श्यामा जैसे फिर अपने बहनापे में आकर स्नेहस्निग्ध कंठ से बोली. . "ऐसी गर्मी में तुम दोनों घंटों दौड़े-धूपे कितने थक गये हो. . . मैं ठंडा शर्बत बना लाती हूं. . . ." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

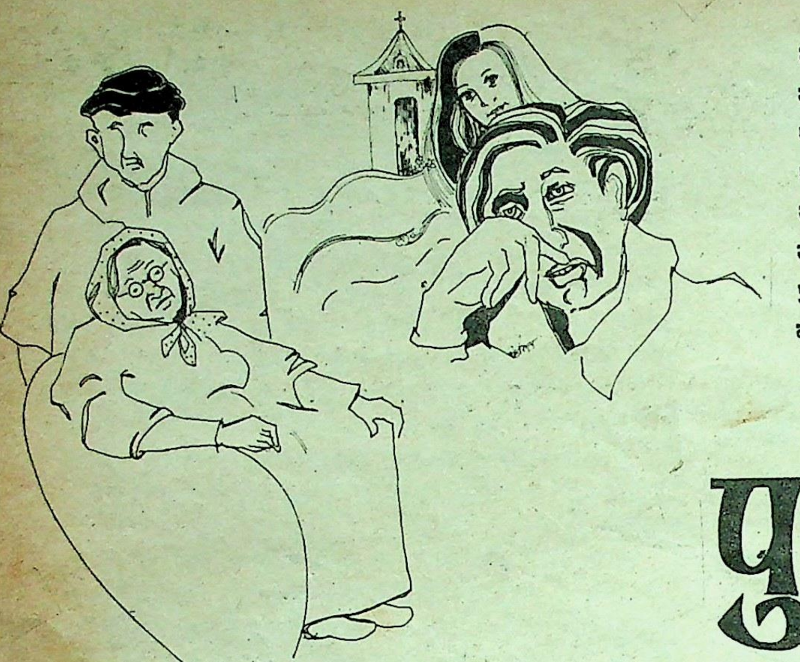

सास-बहू का द्वंद्व सिर्फ भारतीय परिवार का ही द्वंद्व नहीं है. कमोबेश यह दुनिया के हर देश और हर परिवार में मौजूद है. फर्क सिर्फ इतना है कि स्थान-परिवेश भेद के कारण उसका स्वरूप कुछ और हो जाता है, लेकिन क्या और कैसा? अपने प्यार और स्नेहपथ पर पुत्र अपनी मां को तरजीह देता है या प्रेमिका को? आदि अनेक सवालों का खुलासा करती प्रख्यात रचनाकार की अंग्रेजी कहानी—

पुत्र और प्रेमी

डी.एच.लारेंस

रुद एक निर्धन इंजीनियर की बेटी थी, जिसने वाल्टर नामक कोयला खदान में काम करनेवाले एक व्यक्ति से विवाह किया. उस समय वह 23 साल की थी और वाल्टर 27 वर्ष का. वह बहुत बलिष्ठ था. उन्मुक्त भाव से हंसता था और देखने में सुंदर था, किंतु वह शिक्षित नहीं था. और दूसरी ओर रुद थी छोटी-सी सुंदर और गर्वीली. उसने बहुत कुछ पढ़ रखा था और बौद्धिक वातावरण में पली हुई थी. वह बातचीत में कुछ ऐसी बात चाहती थी, जिसमें चातुर्य और मानसिक विकास की क्षमता हो. नार्टिघम के वेस्टवुड में कोयला खदान कर्मचारियों के छोटे-छोटे घर थे और इन्हीं में से एक में यह दंपति रहने लगा. छह महीने आनंद से बीत गये, किंतु रुद ने अनुभव किया कि उन दोनों में कोई गंभीर वार्तालाप नहीं होता था, क्योंकि पति शिक्षित नहीं था. उसके सपने धीरे-धीरे मन ही मन चकनाचूर होने लगे. उसे कुछ खाली-खाली-सा लगता और सबसे बड़ी मुसीबत थी गरीबी, जिसके कारण अभाव सदैव बने रहते थे. वाल्टर सहज रूप से शराब पीने लगा. उसकी पत्नी अपने नैतिक आचरण में जिन बातों को आवश्यक समझती थी, उनकी ओर उसका ध्यान नहीं था. पत्नी द्वारा लगाये गये नैतिक बंधनों को वह तनिक भी स्वीकार नहीं करता था. इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ दिन बाद वह चिड़चिड़ा हो गया और दांपत्य जीवन विषमय हो गया. रुद की महत्वाकांक्षाएं नष्ट हो गयीं और अब उसका एकमात्र सहारा रह गये—उसके बच्चे. वह उनकी देखभाल में अपना समय व्यतीत करने लगी, मानो पति के प्रति मानस में जो अभाव हो गया था, उसको पूर्ण करने के लिए उसने दूसरे सहारे की खोज की थी.

उसके पहले पुत्र का नाम विलियम था. जब वाल्टर को अत्यधिक क्रोध आ जाता, तब वह विलियम की उससे रक्षा किया करती. वाल्टर उग्र स्वभाव का था और उसे क्रुद्ध होने में देर नहीं लगती थी. वह वाल्टर को रोजमर्रा के अभावों के ताने दिया करती. अब वह उसे प्यार नहीं करती थी. उसके लिए वह मानो एक बाहरी आदमी था.

विवाह के दो वर्ष बाद विलियम का जन्म हुआ था और उसके दो वर्ष के बाद एनी पैदा हुई थी. पांच साल बीत जाने पर पोल पैदा हुआ था. पोल एक नाजुक बच्चा था. वह अल्हड़ नहीं था. उसकी प्रकृति गंभीर थी और रुद ने जैसे अपना सारा प्यार उस पर उंड़ेल दिया था. इन्हीं दिनों वाल्टर बीमार पड़ गया. इस बीमारी में खिंचाव कुछ दूर हुए और जब वह ठीक हुआ तो घर में कुछ दिनों के लिए एक स्नेह की भावना उदित हुई और परिणामस्वरूप घर में चौथी संतान का जन्म हुआ.

विलियम एक शार्टहैंड क्लर्क बन गया और रात्रि-पाठशाला में पढ़ाने लगा. उसकी सामाजिक महत्वाकांक्षा बढ़ गयी. रुद को अपने इस पुत्र पर गर्व था, क्योंकि उसे नार्टिघम में एक स्थान मिल गया था, लेकिन वह यह पसंद नहीं करती थी कि उसका पुत्र नृत्यों में सम्मिलित होने के लिए जाये. जब विलियम बीस वर्ष का हुआ तो उसे लंदन जाना पड़ा, क्योंकि वहां उसकी 120 पौंड सालाना की आमदनी बंध गयी थी. इससे मां को बहुत दुःख हुआ. वह मां थी और उसे ऐसा लगता जैसे विलियम उसके पास से दूर हो जाने पर सचमुच उससे अलग हो जायेगा और यह बात उसके हृदय में एक वेदना-सी भर देती.

इस बीच एनी शिक्षिका बनने के लिए अध्ययन कर रही थी और पोल कस्बे के पादरी की सहायता से बीजगणित तथा फ्रेंच और जर्मन भाषाएं पढ़ रहा था. ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया, वह बलिष्ठ होता गया, किंतु प्रकृति से वह अब भी गंभीर था, चुप रहनेवाला. माता के प्रति वह सदैव बहुत चैतन्य रहता. उसकी आज्ञाओं का पालन करता. उसकी प्रकृति बड़ी भावुक थी. वह लोगों के बारे में क्या सोचता है और लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं, इन दोनों बातों में वह नितांत जागरूक रहता.

विलियम वकील के दफ्तर में काम करने लगा और जब छुट्टियों में घर आया, तब वह मजदूरवर्ग का नहीं दिखता था. वह मध्यमवर्गीय नागरिक जैसा भद्रपुरुष दिखाई देता था. यह सच था कि वह अपने परिवार को भूला नहीं, लेकिन उसके साथ परेशानी यह थी कि लंदन की जिंदगी बड़ी खर्चीली थी और घर के लिए उसके पास पैसा नहीं बचता था. उन्हीं दिनों उसे निमोनिया हो गया और मत्यु ने उसके सब सुख-दुख एकसार कर दिये. रुद के जीवन में मत्यु ने एक रेखा खींच दी. महीनों तक वह इस दुख से पीड़ित रही और तब उसने अपने जीवन का आधार पोल में ढूंढ़ना शुरू किया.

मिस्टर जार्डन नार्टिघम में डाक्टरी औजार और औषधि इत्यादि बनाने का काम किया करते थे. चार वर्ष की उम्र में पोल उनके यहां काम करने चला गया. रहता वह अब भी घर पर था. वह रोज रेल से उनके यहां काम करने जाता और लौट आता.

मारेल परिवार के मित्रों में एक लिवियर परिवार भी था. उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार में कई अन्य लड़के थे और पोल की उनसे मित्रता थी. वह उन लोगों से मिलने के लिए अक्सर जाया करता था. धीरे-धीरे अपने मित्रों की एक बहन मरियम पर उसका ध्यान केंद्रित होने लगा. मरियम उससे एक साल छोटी थी. लजीली, सुंदर, धार्मिक और रोमांटिक. पोल के प्रति वह भी इतनी अनुरक्त हो गयी कि मन ही मन उसकी पूजा करने लगी.

एक बार पोल बीमार पड़ा. दस महीने तक वह कुछ नहीं कर सका. इस बीच मरियम से उसका सान्निध्य अधिक बना रहा. उसे मरियम का अध्ययन करने का काफी समय मिला. वे लोग सचमुच एक-दूसरे को प्रेम करने लगे थे, किंतु मरियम कभी भी जैसे साधारण बनकर नहीं रहती थी. वह असाधारण बने रहने की चेष्टा करती. इसलिए कभी-कभी पोल को उससे घृणा होने लगती.

इन्हीं दिनों पोल चित्र बनाने लगा था और वह देखती थी, उसके चित्रों में उसकी आत्मा थी. उसे वे चित्र पोल से भी अधिक आकर्षक दिखायी देते और इस प्रकार मरियम ने अपने प्रेम को ऐसा आध्यात्मिक आवरण दे दिया कि वह इन दोनों के शारीरिक संपर्कों के बीच में एक व्यवधान बन गया . . . मानो उनका प्रेम केवल मानसिक था, उसका आश्रय देह में नहीं था.

रुद को यह लड़की पसंद नहीं थी. पोल अपनी वासनाओं का दमन करता था और इससे उस पर बड़ी उदासी छा जाती थी, एक प्रकार की निराशा-सी व्याप्त हो जाती थी. रुद इस बात को चुपचाप महसूस करती और उसे उस लड़की से चिढ़ होती थी.

मगर अब रुद का स्वास्थ्य जवाब देने लगा था. वह पोल को बराबर इस विषय में डांटती कि वह अपना समय मरियम के साथ नष्ट न करे. पोल कहता, "मुझे मरियम से कोई प्रेम नहीं, मुझे तो केवल उससे बातें करने का चाव है." मां और उसके विवादों में उसने सहसा यह अनुभव किया कि मैं अपनी माता के जीवन का आधार हूं और मां मेरे लिए कितना बड़ा सहारा है. मरियम के साथ रहता तो वह अपने को अनिश्चय के जाल में फंसा हुआ पाता, लेकिन मां के पास रहता तो उसे लगता कि उसका जीवन अस्थिर नहीं है. उसे एक अटूट विश्वास मिल रहा है. यहां एक आधार है, जिसमें समन्वय है, एक-दूसरे को समझने की ताकत है. यहां मान-मनौवल और गर्व अहं नहीं. यहां एक-दूसरे के लिए मिट जाने की भावना है, जो किसी अपेक्षा पर आधारित नहीं. इसमें कोई स्पर्द्धा नहीं. मां ने कहा, "और कोई स्त्री हो तो मुझे कोई विरोध नहीं, लेकिन मरियम नहीं, क्योंकि वह तो मुझसे मेरे पुत्र को बिलकुल छीन लेगी. उसके आ जाने पर मेरे लिए कोई स्थान नहीं रह जायेगा." और जब पोल ने कहा कि वह मरियम से प्रेम नहीं करता तो मां ने उसे चूम लिया, जैसे कष्टों में पाला हुआ यह पुत्र अब भी उसी का था. वह उससे छिना नहीं था. नारी का यह द्वंद्व कितना विचित्र था. नयी स्त्री संपूर्णता से पोल को जीत लेना चाहती थी और दूसरी ओर माता अपने समस्त अधिकारों को खोना नहीं चाहती थी.

मरियम को पोल पर पूर्ण विश्वास था. जब पोल ने उससे कहा कि वह उसे नहीं चाहता तो उसने इस पर विश्वास ही नहीं किया. उसने अपने आपसे कहा, 'पोल की आत्मा को मरियम की आवश्यकता है."

एक दिन मरियम ने निश्चय किया कि वह एक बार इस विषय में पोल की परीक्षा ले. उसने श्रीमती क्लारा से उसका परिचय कराया. वह पति से अलग रहती थी और नारी आंदोलन में स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्षरत थी. 'स्त्री को मत देने का अधिकार होना चाहिए,' उन दिनों इस पर काफी सरगर्मी थी. क्लारा सुंदर थी और मरियम उसके इस सौंदर्य के प्रति अनुरक्ति को मांसल स्तर की बात समझती थी. वह देखना चाहती थी कि पोल में मांसल स्तर की अनुरक्ति थी या आध्यात्मिक स्तर की. इस स्तर पर वह शारीरिक आकर्षण को अधिक महत्व नहीं देती थी. पोल क्लारा से खुलकर मजाक किया करता था. उसके साथ उसे सहज स्वाभाविक आनंद मिलता था, जो उसे मरियम के साथ कभी प्राप्त नहीं हुआ. मगर मरियम के आत्मविश्वास में जैसे वह यही पुष्टि दे रहा था कि वह अब भी उसी का था और क्लारा उसे जीत नहीं पायी थी.

एनी का विवाह हो गया. आर्थर सेना में भरती हो गया और उसने विवाह कर लिया. पोल की चित्रकला विकसित होती रही. उसे पुरस्कार भी मिलने लगे. उसके पिता वाल्टर मारेल के साथ खान में दुर्घटना हो गयी. उसका पैर कुचला गया और परिणामस्वरूप अपनी ढलती आयु में वह कुछ लंगड़ाने लगा.

पोल तेईस वर्ष का हो गया था. आज तक उसका किसी स्त्री से देह संपर्क नहीं हुआ था. उसे प्रेम का यह स्थूल अनुभव प्राप्त नहीं हो सका था. अब भी वह अपनी माता की सेवा में रहता. यद्यपि मां बीमार थी, गरीब थी, किंतु उसे इसका गर्व था कि उसका पुत्र उसके पास था. वह अब भी यही सोचती थी कि पोल के जीवन का सुख नष्ट करनेवाली मरियम ही थी. पुत्र की वेदना उसके हृदय को व्याकुल कर देती.

पोल बहुत दिन तक मरियम के पास नहीं गया. महीनों बीत गये, लेकिन जब वसंत आया तो इस बार वह स्वयं उसकी परीक्षा लेने गया. आज तक वह उसे कभी चूम नहीं सका था. उसने उस व्यवधान को तोड़ दिया.

अब क्लारा उसके जीवन में प्रमुख हो गयी. उसका स्नेह उसको अपनी ओर खींचने लगा. जार्डन फैक्टरी में पोल ने उसको काम दिलाया था. और इस बीच में उसने उसके संपर्क में आने पर उसके स्वभाव के अनेक रूप देखे.

यह बात धीरे-धीरे क्लारा के पति तक पहुंच गयी. सराय में उसने व्यंग्य भी किया. पोल को गुस्सा आ गया और उसने हाथ की शराब उसके मुंह पर उछाल दी. क्लारा का पति लोहार था. उसने इसके प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की. क्लारा ने पोल से कहा, "बात बढ़ चुकी है. कौन जानता है कि वह किस समय क्या कर देगा. इसलिए तुम्हें अपनी सुरक्षा के लिए हथियार वगैरह जरूर रखना चाहिए."

मगर पोल ने इंकार कर दिया तो वह नाराज हो गयी.

एक रात डोबेंस ने पोल को अकेले में घेर लिया. पोल ने हालांकि मुकाबला किया, लेकिन फिर भी उसकी जमकर पिटाई हो गयी: और इसके बाद पोल क्लारा से दूर-दूर रहने लगा.

रुद अपनी बेटी एनी से मिलने के लिए शेफील्ड चली गयी और वहां इस कदर बीमार पड़ी कि उसके बचने की उम्मीद नहीं रही. उसी भयावह अवस्था में उसे घर लाया गया और उसकी मौत का इंतजार किया जाने लगा. इस बीच पोल ने क्लारा के पति से दोस्ती कर ली और क्लारा को उससे मिला दिया. पोल अपनी माता का इस प्रकार धीरे-धीरे मरना न देख सका. वह अपने अतीत को अब भी नहीं भूली थी और जान-बूझकर इसलिए बहुत कम खाती थी कि जल्दी से मर जाये, किंतु इस प्रकार उसे मरते हुए देखना एक बहुत ही कठिन काम था. हारकर पोल और एनी ने उसे दवा के रूप में अफीम दे दी.

फिर महीनों और बीत गये. मां धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगी. अब पोल को पता नहीं था कि क्या करे. और तभी उसे फिर मरियम मिली, लेकिन अब भी वह केवल उसके सामने अपना बलिदान दे सकती थी. वह उसके साथ उसका भार उठाने में असमर्थ थी.

मरियम का ध्यान छोड़कर पोल फिर अपनी मां के बारे में सोचने लगा, वही तो एक आस्था थी, जिसने उसे अभी तक बनाये रखा था. पर नहीं, अब वह सब-कुछ त्याग नहीं करना चाहता था. उसने उसके पास जाकर अपने-आपको खो देने की कल्पना को भी त्याग दिया और नगर की चकाचौंध की ओर चल पड़ा. □

अनुवाद : शैलेंद्रप्रताप सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फातिमा

साद मकावी

मैं उससे बगलगीर था. उसने मुझे अपनी बांहों की गिरफ्त में ले रखा था, लेकिन वह गुस्से और गम से कांप रही थी. उस पुराने और बहुत बड़े घर में, जिसकी जर्जर खिड़कियां सड़क की ओर खुलती थीं, मैं उसे अकेला, असहाय और बीमार छोड़कर अपने सपनों की ओर दूर जा रहा था.

"अब मुझे जाना चाहिए. भीड़ में एयरपोर्ट तक लंबा फासला तय करने में खासा समय लगेगा." मैंने कहा.

"अपना वायदा न भूल जाना, अरसा कम हो या ज्यादा, मां को याद रखना. इसका इस दुनिया में तुम्हारे सिवा और कोई भी नहीं है." बूढ़ी मां ने कहा.

मैंने नरमी से अपनी बांह मां की मजबूत गिरफ्त से मुक्त करायी और ब्रीफकेस उठाकर तेजी से लकड़ी के जर्जर जीने के नीचे उतर आया. नीचे मेरी इकलौती बहन अपने पति के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रही थी. वह अपने घर और नौकरी की व्यस्तताओं से जान छुड़ाकर मुझे अलविदा कहने के लिए काफी दूर से आयी थी.

जब एयरपोर्ट आ गया और मैं आखिरी सलाम के लिए बहन और बहनोई के पास गया तो अपनी बहन को, जिसे नौकरी, बच्चों पति और घर की व्यस्तताओं से फुर्सत नहीं मिल पाती, केवल इतना कह सका, "जरा उसकी खबर रखना."

जब विमान वायुमंडल में पहुंच चुका, तो मुझे खयाल आया कि मैं तैराकी का अपना नया लिबास तो ब्रीफकेस में रखना भूल ही गया था.

मेरी जिंदगी में तैराकी के लिबास ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी. वही मेरी सारी कहानी का हीरो भी है.

एक बार मैं तैर रहा था कि सहसा मैंने उस सुर्ख-सफेद और संतुलित अंगों की मूर्ति को हमजोलियों के झुरमुट में तालाब के गिर्द चक्कर

लगाते हुए देखा. फिर पानी ही में हमारा एक-दूसरे से परिचय हुआ.

अपने पिछले जीवन के बारे में वह कम ही बात किया करती थी. उसका पूरा प्रयत्न यह होता था कि मिस्र में वह अपने दिन-रात से आनंद और उल्लास का रस निचोड़ ले और पूरी तरह लुत्फ उठाने का कोई अवसर भी नष्ट न होने दे. वह मेरे पहले प्रेम की आखिरी मंजिल थी और उसके लिए मेरा इश्क मेरी जिंदगी को नये अंदाज और नये रंगों में ढाल रहा था.

फिर हमारी शादी का दिन आ गया. मां ने वह सारी रात अपने कमरे में बंद होकर बेआवाज रोने में बिता दी और हमने उन्मत्त अंदाज में पूरी रात विभिन्न दावतों और खुशियों में बितायी.

कुछ ही दिनों बाद उसके पिता का पत्र प्राप्त हुआ. उसने हमें स्वीडन के सफर की प्रेरणा दी थी और यूनिवर्सिटी में मेरी शिक्षा और खेल की योग्यताओं के कारण मुझे भविष्य के उत्तम आशाओं का शुभ-समाचार भी. मेरी राह की सबसे बड़ी बाधा मां की मनोवैज्ञानिक अवस्था थी. मां ने पूर्ण मौन धारण कर लिया था. मैंने इस संदर्भ में बहन और बहनोई की मदद प्राप्त की और उनके सामने यह प्रतिज्ञा की कि वर्ष में कम से कम दो बार मैं काहिरा जरूर वापस आया करूंगा . . .

मेरी बीवी का खूबसूरत गांव स्टाकहोम से लगभग एक घंटे की सफर पर था, जिसके चारों ओर सुंदर टीले थे. टीलों पर से समुद्र का नीला पानी नजर आता था और यह गांव स्वर्ग के टुकड़ों में से एक सुंदर टुकड़ा लगता था.

मैंने लेमोनेड की एक चुस्की ली. मेरे सामने मां का कमजोर-सा चेहरा आ खड़ा हुआ. मेरी बहन उसे अपनी बांहों में थामे तसल्ली दे रही थी. इस दृश्य की कमजोरी के सामने मेरे संकल्प की दृढ़ता भी मजबूत हो गयी. पहले तो मां की पुकारें उस खूबसूरत गांव से मुझे वापस ले आयी थीं, लेकिन अब ऐसा नहीं होगा. अब यह दुखांत दुहराया नहीं जायेगा. अब मैं लौटकर नहीं जाऊंगा.

काम की संभावनाएं उस प्रकार की नहीं थीं, जिस प्रकार मेरी बीवी के पिता ने बयान की थीं. फिर बीवी से संबंधों पर भी आशा के प्रतिकूल मनोवैज्ञानिक मतभेदों की धुंध छाने लगी थी, लेकिन मेरी वापसी का कारण केवल ममता की दुखभरी तनहाइयों की पुकारों में छुपा हुआ था. उस दिन मैंने यह समझा था कि थोड़ी-सी छुट्टी पर वतन जाना, मां, बीवी और खुद मेरी दोनों दुनियाओं में व्यग्र प्राणों के लिए अधिक लाभदायक साबित होगा. यह सूक्ष्म-सा अंतर, जो हमारी तरफ से महान समझी जानेवाली मोहब्बत को निगलने के लिए आगे बढ़ रहा था, हमारी समझ से परे था.

मैं बीमार मां की तरफ वापसी के सफर में बिलकुल हृदय-विदीर्ण था, लेकिन विमान में जब मुझे यह एहसास हुआ कि मैं दोस्तों की तसल्ली को तरस गया हूं, तो मैं मुसकरा दिया. बोझ बहुत भारी है. मेरे आगे मां के गिले-शिकवे हैं, जो स्थिति का सामना करनेवाली मेरी बची-खुची शक्ति भी निचोड़ लेंगे और मेरे पीछे भावनाओं की एक भूल-भुलैया है, जिसको समझने में मैं असमर्थ हूं और जिसमें एक खूबसूरत खेलती-कूदती बच्ची की मुसकराहटों के सिवा और कोई रोशनी नहीं. मेरे और बीवी के संबंधों को किस खीज ने बदल डाला है? इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न उसने भी किया, लेकिन सफल नहीं हुई.

हमारे बीच कोई दर्दनाक, लेकिन न समझ आनेवाली चीज दीवार बनकर खड़ी हो गयी थी. मेरी शक्ति ने जिन दो विरोधी चीजों को एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया था, वह अब अलग होनेवाली थीं.

जब मैं अपने शहर पहुंचा और टैक्सी से उतरा तो टेलीविजन की ऊंची इमारत से कुछ ही दूर कूड़े के पुराने ढेर से गुजरकर चकराये हुए सिर और भीतरी जर्जरावस्था में लकड़ी की बोसीदा सीढ़ियां चढ़ने लगा. अब वह अपनी बांहें फैलायेगी, रोयेगी और महीनों इकट्ठे किये हुए पानी के फव्वारे उबलने लगेंगे. मेरे लिए अब बेचैन रातों और सब्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिवा कुछ भी नहीं होगा.

अपमानजनक कठिनाई के साथ पुरानी नौकरी पर मुझे स्वीकार कर लिया गया और बेचैन रातों में आसानी के साथ मैंने दोस्तों की ओर से तसल्ली हासिल कर ली, लेकिन किसी भी बात में कोई मजा न रहा और न कोई रूहानी दरिद्रता के दुख की दवा!

शौक और मोहब्बत की दर्दनाक धड़कनों में फातिमा का चेहरा मेरी आंखों के सामने आ जाता. मेरी बीवी पत्रों पर पत्र लिखकर मुझसे तलाक की मांग करती. जरूर वहां उसी जैसे उत्तरी स्वभाव का कोई मर्द मौजूद होगा. अब मेरे पास इतने पैसे भी नहीं थे कि वापस जाकर मामले को देख-समझ सकूं और फातिमा की समस्या का फैसला करूं.

जब तलाक हो गया और मां को खबर हुई तो वह बेहद खुश हुई, लेकिन उसे क्या मालूम कि मेरे भीतर कैसी रिक्तता पैदा हो गयी है. यह रिक्तता मानो मेरे कानों में खुसर-फुसर कर रही थी—'मैं तुम से और तुम्हारे सारे सपनों से अधिक ताकतवर हूं!'

फिर एक दिन डाक से मेरे नाम एक लिफाफा आया. जिसमें से मेरी बेटी फातिमा की तस्वीर निकली. बाग में घास पर बैठकर खाना खाने की तसवीर!

अभागे दिल में दबे सपने फिर ज़िंदा होने लगे. नये सिरे से खोज, अभियान और मुक्ति के विचार करवट लेने लगे. फातिमा की आवाज मेरे मेघाच्छन्न आकाश को बिजली की चमक बनकर चीर गयी थी. मेरी नजरों, बातों और हरकतों में उस नयी सुबह को उदय होता देख, मां परेशान हो गयी. उसने अपनी बेटी को बुलाकर एकांत में बात भी की, लेकिन उसकी समझ में कुछ न आया.

बेटी की तस्वीर सीने से लगाकर मैं अच्छाइयों पर बुराइयों के आक्रमण को भूलने लगा. साथी कर्मचारियों की अशिष्टता और निर्मम मजाक को बर्दाश्त करने लगा. मजे के साथ मां की ममता पर और उसकी श्रवणशक्ति में कमजोरी के कारण स्वयं उसकी और दूसरों की आवाजों की बुलंदी पर मुझे तरस आने लगा.

अठारह माह बाद मैं पंद्रह सौ गिनी की रकम जमा कर चुका था. नौकरी से मैंने बिना तनख्वाह के छुट्टी का प्रार्थना-पत्र दिया, जो आसानी से मिल गयी. मां को इस बार मैंने सफर के दिन तक अपने इरादे से अवगत नहीं किया. मां ने भी इस बार बड़ी सहृदयता दिखायी और अपनी चीखों का गला घोंटे रखा.

स्टाकहोम के हवाई अड्डे पर फातिमा के नाना ने मेरा गरिमापूर्ण स्वागत किया. शादी के आरंभिक दिनों ही से वह मेरा दोस्त बन गया था. अब उसकी उम्र साठ साल के करीब थी, पर अपनी जिंदगी की भरपूर सरगर्मियों के लिए उसे नये काम की तलाश थी. वह मुझसे अपने भविष्य के मंसूबों के बारे में बातें करने लगा. मैंने तिलमिलाकर उसकी बात काटी, "और फातिमा?"

"फातिमा बिलकुल ठीक है. वह स्कूल की योग्य छात्रा है"

"मां के पति के साथ उसके संबंध?"

"बिलकुल ठीक!"

"मुझे कभी याद करती है?"

"हां, जब कभी तुम्हारा जिक्र छिड़े तो तुम्हारी बातें करती है."

"क्या इस बार मुझे यहां काम करने का अवसर मिल जायेगा?"

"यहां तो इस समय बड़ी बेकारी है."

"इसका मतलब, काम हासिल करना मुश्किल है."

"हां! लेकिन जब तुम अपनी बाकी जिंदगी अपनी बेटी के पास गुजारना चाहते हो, तो तजुर्बा कर लेने में कोई हर्ज नहीं."

फिर थोड़ी देर अप्रिय-सी खामोशी छायी रही जिसे मैंने प्रश्न करके तोड़ा, "यदि तजुर्बा सफल न हो और मैं अपनी बेटी को अपने साथ ले जाना चाहूं तो मुझे विरोध का सामना तो नहीं करना पड़ेगा?"

"विरोध कैसा? किस की तरफ से?" उसने पूछा.

वह सूक्ष्म-सा अंतर कौन-सा है, जो बेटे को मां से विलग करता है . . . और शुरू हो जाता है जिंदगी में अलगाव का सिलसिला पिता-पुत्री के बीच, पति-पत्नी के बीच . . . और यहां तक कि तलाकशुदा पत्नी के नये और पुराने पति के बीच भी? —मिस्र देश की एक कहानी कि स्त्री-पुरुष सबंधों के बीच अतीत कितनी और कैसी भूमिका निभाता है . . .

"खानदानवालों की तरफ से."

"खानदानवालों का इसमें क्या दखल है? इस समस्या में तो सिर्फ फातिमा ही कोई राय दे सकती है."

गाड़ी की आवाज सुनकर मेरी भूतपूर्व बीवी एक शांत, लंबे कद और खिले माथेवाले मर्द के साथ बाहर आयी. मर्द बहुत खिले माथे से मेरा स्वागत करने के लिए आगे बढ़ा और मुझसे हाथ मिलाते हुए कहा, "तुमसे मिलकर बड़ी खुशी हुई. हमें मुद्दत से तुम्हारा इंतजार था."

भूतपूर्व बीवी ने भी बड़ी बेतकल्लुफी से हाथ मिलाया और कहा, "स्वागतम् खालिद! आओ, अंदर आओ!" ड्राइंग-रूम में सब कुछ वैसा ही था. कोई चीज अपनी जगह से नहीं हिली थी.

बाहर गाड़ी के रुकने की आवाज सुनाई दी. मेरी भूतपूर्व बीवी ने अपनी जगह से हिले बिना कहा, "लो! फातिमा आ गयी."

मैं दरवाजे की ओर बढ़ा. मेरा दिल तेजी से धड़क रहा था.

एक आठ वर्षीय लड़की घर की ओर बढ़ रही थी. उसने मेरी ओर देखा. फिर बड़े शिष्ट अंदाज में मेरी ओर देखकर थोड़ा-सा मुसकरायी और छोटे-छोटे कदमों से कमरे के भीतर प्रवेश कर गयी. मैं बुत बना अपनी जगह खड़ा रह गया. मेरी भूतपूर्व बीवी की आवाज मेरे कानों में आयी, "फातिमा! तुमने पहचाना नहीं? यह पापा खालिद हैं."

वह मेरे करीब नहीं आयी. मेरे होंठ उसके कोमल गालों को न छू सके. मेरी बांहें उसके गिर्द लिपट न सकीं. मैं उसके दिल में कोई हरकत पैदा न कर सका. मेरी भूतपूर्व बीवी के वर्तमान पति ने कहा, "स्वाभाविक बात है. जब इसने तुम्हें आखिरी बार देखा था तो यह सिर्फ तीन साल की थी." भूतपूर्व बीवी ने और स्पष्ट किया, "कुछ दिन में स्थिति बेहतर हो जायेगी."

मेरी बेटी और मेरे बीच बातचीत के सभी प्रयत्न विफल हो जाने के बाद कमरे में मौजूद अप्रिय-सी अवस्था को समाप्त करने के लिए नाना ने मुझसे कहा, "आओ, शाम होने से पहले-पहले जरा बाग का एक चक्कर लगा लें."

पेड़ों के खुश्क और पीले पत्ते सूखी हुई जमीन पर गिर रहे थे. नाना ने बेटी का दिल जीतने के लिए धैर्य और समझदारी का एक फार्मूला मेरे लिए तैयार करने की इच्छा प्रकट की, लेकिन मेरा दिल वास्तविकता से अवगत हो चुका था. मैंने कहा, "दोस्त! मुझे यकीन है, अब कुछ नहीं हो सकता."

आकाश की ओर उठे ऊंचे पेड़ों की चोटियों पर कोई पक्षी चिल्ला रहा था. मेरे दिल की गहराइयों में मिस्र की यादें जाग रही थीं. सबसे तेज आवाज मां की थी, जो शिकवे से भरपूर थी, "यह नयी पीढ़ी अपने सिवा किसी अन्य के बारे में कुछ नहीं सोचती. . .!"

"कॉफी या लेमोनेड?" वापसी की यात्रा में एयर होस्टेस पूछ रही थी . . .

"न कॉफी, न लेमोनेड?" ए बादलों की सहयात्री! अब जिंदगी एक विक्षिप्तता और उदासी के सिवा कुछ नहीं. चीखती-चिल्लाती आवाजें. तने हुए मन-मस्तिष्क, बेपरवाही, फीके रंगोंवाले फर्श, घुटी फिजा वाले कमरे, लकड़ी के बूसीदा दरवाजे, मटियाले शीशे, फिर दुख और फटकार से भरे हुए उलाहने-ताने . . . . □

रूपांतर : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर मैकफेल दो साल तक युद्ध में रहने के पश्चात जहाज द्वारा अपनी पत्नी के साथ सफर कर रहे थे. उन्हें इस बात का संतोष था कि वे अब कम से कम एक साल एशिया में शांतिपूर्वक रह सकेंगे. जहाज पर ही उनकी मुलाकात डेविडसन परिवार से हो गयी. मैकफेल की उम्र चालीस के लगभग थी—लंबा-पतला शरीर, और सूखकर सिकुड़ गये चेहरे पर एक भरे हुए घाव का निशान. वे बहुत धीरे-धीरे, ठहर-ठहरकर बोलते थे.

डेविडसन पादरी थे.

उनका कार्यक्षेत्र समोआ टापू के उत्तर के कुछ टापुओं में था जो एक-दूसरे से काफी दूर थे. इसलिए उन्हें अधिकतर नाव से सफर करना पड़ता था. उनकी अनुपस्थिति में उनकी पत्नी मिशन का काम संभालती थीं. श्रीमती डेविडसन का कद छोटा था और वह हमेशा सुनहरे फ्रेम का चश्मा लगाये रहती थीं.

जहाज पर श्रीमती डेविडसन ने मैकफेल को बताया कि जब उन लोगों ने वहां मिशन का कार्य आरंभ किया तो उन्हें बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ा. वहां के निवासियों में बहुत अनैतिकता और बुराइयां फैली हुई थीं, जिन्हें वे लोग बुरा या गंदा नहीं समझते थे. उनके विवाह का ढंग भद्दा और अश्लील था. गांव में एक भी सच्चरित्र लड़की का मिलना प्रायः असंभव था. मिस्टर डेविडसन ने इसके कारणों की खोज की तो वे इस परिणाम पर पहुंचे कि इसका एकमात्र कारण वहां के निवासियों का वह अश्लील नृत्य हैं, जो वे प्रायः करते रहते हैं. उन्होंने वह बंद करवा दिया. मिशन के कार्य में डेविडसन इतने व्यस्त रहने लगे हैं कि उनको अपनी सेहत की तनिक भी परवाह नहीं रहती.

दूसरे दिन जहाज पैंगो बंदरगाह के किनारे रुका. जब उनका सामान उतारा जा रहा था, डाक्टर वहां के निवासियों को गौर से देख रहे थे, उनमें कई फीलपांव के रोगी थे. पुरुष और स्त्रियां सभी ने घास के बने लहंगे आदि पहने हुए थे.

कुछ देर बाद मूसलाधार वर्षा शुरू हो गयी. बारिश से बचने के लिए सभी उस जगह जा पहुंचे जहां जहाजों ने लंगर डाल रखे थे. डेविडसन ने उन्हें बताया कि टापू के निवासियों में खसरे का रोग फैला हुआ है.

इतने में ही एक तार आया कि उस जहाज को एपिया में अभी नहीं आने दिया जायेगा. इस खबर से मैकफेल बहुत चिंतित हुए, क्योंकि उन्हें एपिया जल्दी ही पहुंचना था. डेविडसन भी मिशन के कार्य के लिए चिंतित थे, क्योंकि उन्हें साल भर से वहां से दूर रहना पड़ रहा था और मिशन का काम एक देशी पादरी के हाथ में था.

फिर डेविडसन को टापू के गवर्नर से मालूम हुआ था कि वहां एक व्यापारी किराये पर मकान देता है. वे बरसाती पहनकर उसके यहां पहुंचे. मकान के मालिक हार्न ने उन्हें मकान दिला दिया. उन लोगों ने अपना सामान खोलना शुरू किया.

जब डा. मैकफेल अपना सामान संभालने नीचे अपने केबिन में आये तो उन्हें मालूम हुआ कि थांपसन नाम की किसी युवती ने भी, जो उन्हीं के जहाज में सफर कर रही थी, नीचे की मंजिल का एक कमरा किराये पर लिया है. उसके साथ स्वान नामक का एक व्यक्ति भी था जिसने मकान-मालिक हार्न से उसकी सिफारिश की थी. उस रात थांपसन ने डाक्टर को भी शराब के लिए निमंत्रण दिया, परंतु डाक्टर 'धन्यवाद' देकर अपना काम करने लगे.

अगले दिन जब दूसरे लोग टहलकर लौटे तो डेविडसन ने बताया कि उन्होंने गवर्नर से काफी बहस की है पर शायद उन्हें पंद्रह रोज तक और ठहरना पड़े. शाम को जब सब लोग मिलकर बैठे तो पादरी डेविडसन ने अपने जीवन के संस्मरण सुनाये उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार श्रीमती डेविडसन से उनकी प्रथम बार मुलकात हुई फिर किस प्रकार शादी . . . बातचीत चल ही रही थी कि तभी उन्हें ऊंची आवाज में एक बाजारू प्रेम गीत के बोल सुनायी दिये.

नीचे के कमरे में थांपसन ग्रामोफोन बजा रही थी. वहां कुछ नाविक शराब पीकर नृत्य करते हुए अश्लील गीत गा रहे थे. थांपसन भी उनका साथ दे रही थी. उन लोगों ने सोचा कि शायद थांपसन अपने मित्रों को दावत दे रही हैं.

दूसरे रोज भी शाम को जब डा. मैकफेल और डेविडसन परिवार खाना खा रहे थे, नीचे से थांपसन ने ग्रामोफोन बजाना आरंभ कर दिया और कुछ देर बाद मदमस्त नाविकों के जोरदार कहकहे और भदेस बातें सुनायी दीं. मिस थांपसन एक बाजारू गाना गा रही थी.

बरसात

सॉमरसेट मॉम

वेश्यावृत्ति को समाप्त करने के लिए प्रायः हर क्षेत्र में कोई न कोई प्रयास होता रहता है. विदेश में चर्च ने भी इस मामले में खासी भूमिका निभायी है, परंतु न वेश्याएं खत्म हुई न ग्राहक. आखिर क्यों? — पढ़िए विश्वप्रख्यात अंग्रेजी कथाकृति कि ऐसे मामलात में धर्म प्रधान होता है, व्यक्ति होता है या कि सामाजिक चरित्र? . . .

डेविडसन को मिस थांपसन के प्रति शंका होने लगी थी कि वह शायद इबोली से भागकर आयी वेश्या है और यहां पेशा करना चाहती है. डेविडसन ने इबोली के बारे में बताया कि वहां देह-व्यापार बहुत होता था, लेकिन उनके मिशन ने वहां की काया ही पलट दी थी.

डेविडसन नीचे थांपसन के कमरे में गये तो उसके प्रेमी नाविकों ने उन्हें बुरी तरह पीट-घसीटकर कमरे से बाहर निकाल दिया. उन लोगों ने डेविडसन पर शराब भी उंडेल दी. दूसरे दिन थांपसन ने श्रीमती डेविडसन का भी मजाक उड़ाया. शाम को डेविडसन फिर थांपसन के कमरे में गये और उसे समझाते रहे. उस समय भी बरसात हो रही थी. यहां की बरसात की विशेषता है कि जब एक बार शुरू हो जाये तो रुकने का नाम नहीं लेती. साल में तीन सौ इंच तक वर्षा होती है.

फिर डेविडसन ने डाक्टर मैकफेल को बताया कि उन्होंने मिस थांपसन को काफी समझाया है, पर वह नहीं समझी. अब उसकी आत्मा के उद्धार के लिए वे बल-प्रयोग करेंगे. उन्होंने मकान मालिक को भी उसे कमरा देने के लिए भला-बुरा कहा. मकान मालिक ने वायदा किया कि अब थांपसन के पास कोई व्यक्ति नहीं आयेगा.

उसके दूसरे रोज ही शाम को डेविडसन अपने छात्र-जीवन की बातें मैकफेल आदि को बता रहे थे और नीचे थांपसन ग्रामोफोन बजा रही थी. परंतु आज उसके पास और कोई व्यक्ति न था. रात को देर तक ग्रामोफोन बजाता रहा और डेविडसन अपने कमरे में एकरस प्रार्थना करते रहे.

दो-तीन रोज तक कोई विशेष बात नहीं हुई और इन दिनों में थांपसन ने अपने लिए कहीं और जगह देखने की कोशिश की, पर सफलता नहीं मिली. वह रात को बहुत देर तक अकेली ग्रामोफोन बजाती रही. रविवार को डेविडसन ने मकान मालिक से कहा कि आज प्रभु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विश्राम और प्रार्थना का दिन है, सो थांपसन को कह दे कि ग्रामोफोन न बजाये. उस दिन थांपसन ने ग्रामोफोन बंद कर दिया.

इस बीच मि. डेविडसन रोज़ ही गवर्नर से मिलते और थांपसन के बारे में बताते तथा उन्हें इस बात पर मजबूर करते कि वे उसे यहां से चली जाने का हुक्म दे दें. पहले तो गवर्नर राजी नहीं हुए, परंतु बाद में डेविडसन ने उन पर चर्च की तरफ से जोर देकर उन्हें मजबूर कर दिया. थांपसन को इसका पता लगा तो उसने डेविडसन को बहुत गालियां दीं और उनका अपमान किया. डेविडसन ने उससे शांतिपूर्वक बातें कीं पर वह झल्लाकर चली गयी. गवर्नर ने उसे मंगलवार को सेनफ्रांसिस्को जानेवाले जहाज से चले जाने का हुक्मनामा भिजवा दिया.

अगले रोज मकान मालिक डा. मैकफेल को थांपसन के कमरे में ले गया और बताया कि उसकी तबीयत खराब है. थांपसन ने डाक्टर की सहायता चाही और कहा कि वह यहां से नहीं जाना चाहती. डा. मैकफेल ने कोशिश करने का वायदा किया. डा. मैकफेल ने डेविडसन से इस बारे में बातचीत की और उसे पंद्रह रोज और ठहर जाने की इजाजत दिलानी चाही, परंतु डेविडसन राजी नहीं हुए.

दूसरे दिन थांपसन जाकर डेविडसन से मिली और रोती हुई उनसे प्रार्थना करने लगी. उसने बताया कि वह सेनफ्रांसिस्को नहीं जाना चाहती क्योंकि वहां उसके घरवाले रहते हैं, कि वह वेश्या-सुधार जेल से भागकर आयी है, कि वह वायदा करती है कि अब अपना चरित्र सुधार लेगी. परंतु डेविडसन ने उसे बताया कि उसे वहां जाना चाहिए और जो दंड मिले, सहर्ष स्वीकार करना चाहिए, इसी से उसकी आत्मा का उद्धार हो सकेगा. थांपसन ने हर संभव प्रार्थना की, गिड़गिड़ाई, पर डेविडसन पर कोई असर नहीं पड़ा. आखिर डाक्टर की सहायता से वह अपने कमरे में आयी और देर तक रोती रही. और तब डेविडसन बाइबिल निकालकर सबके साथ थांपसन की आत्मा के उद्धार के लिए प्रार्थनाएं करने लगे. इस बीच डा. मैकफेल नीचे थांपसन को देखने चले गये. वह आरामकुर्सी पर बैठी सिसक रही थी.

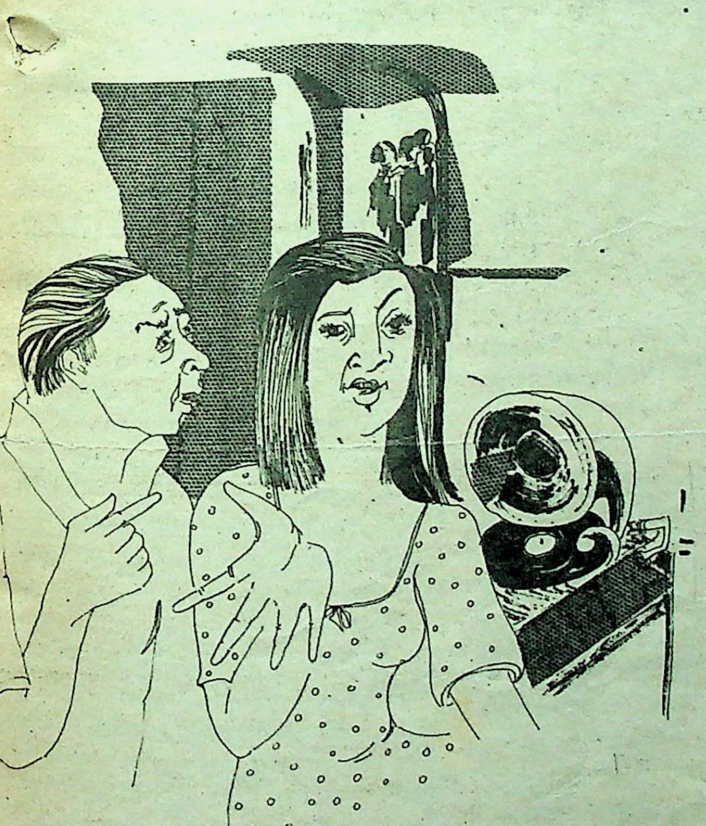

थांपसन ने डेविडसन से मिलने की इच्छा प्रकट की. डेविडसन के आने पर उसने कहा कि वह सचमुच बुरी है और पश्चाताप करना चाहती है. डेविडसन बहुत प्रसन्न हुए. वे दरवाजा बंद करके मिस थांपसन के साथ रात को दो बजे तक प्रार्थना करते रहे. बाद में वे अपने कमरे में रातभर प्रार्थना करते रहे.

दूसरे दिन जब डा. मैकफेल मिस थांपसन को देखने गये तो उसने बताया कि वह डेविडसन से मिलना चाहती है, क्योंकि वह जब तक उसके पास रहते हैं उसे बहुत शांति मिलती है. अगले दो दिनों में डेविडसन का अधिकतर समय थांपसन के साथ प्रार्थना करने में ही व्यतीत हुआ. जब तक वे थक कर निढाल न हो जाते, प्रार्थना करते रहते. इन दिनों उनको विचित्र-विचित्र स्वप्न भी आते रहते. डेविडसन उस बदनसीब युवती के हृदय में छिपी पाप की जड़ों को छांट-काटकर फेंकते जा रहे थे. वे उसके साथ बाइबिल पढ़ते और प्रार्थना करते.

दिन धीरे-धीरे बीतते चले जा रहे थे. थांपसन अस्त-व्यस्त रहती. उसे अब सिर्फ डेविडसन का ही सहारा था. वह उनके साथ बाइबिल पढ़ती और प्रार्थना करती रहती. उन्हें वह एक क्षण भी अलग नहीं करना चाहती थी. उधर बरसात इस कदर हो रही थी कि अब तो मानो इंद्र का खजाना खाली हो जायेगा!

सभी मंगलवार का इंतजार कर रहे थे, जबकि ठीक ग्यारह बजे सेनफ्रांसिस्को जानेवाला जहाज, थांपसन को लेकर चला जायेगा. मंगलवार सुबह डा. मैकफेल के कंधे पर किसी ने हाथ रखा तो वह चौंककर उठ बैठे. मकान मालिक उन्हें जगा रहा था. उसने उन्हें इशारे से अपने पीछे-पीछे आने को कहा. वह अपना बैग लेकर उसके पीछे-पीछे चल पड़े. उन्होंने समझा कि शायद थांपसन की तबीयत अधिक खराब है. दोनों नीचे उतरे, बाहर कुछ स्थानीय लोग खड़े थे. वे सड़क पार करके बंदरगाह पर पहुंचे. डाक्टर ने देखा, कुछ लोग तट पर किसी चीज को घेरकर खड़े हैं. उन्होंने डाक्टर को रास्ता दिया. वहां डेविडसन की लाश आधी पानी में और आधी बाहर पड़ी थी. उनके बायें हाथ में एक उस्तरा था, जिससे उन्होंने अपना गला काट लिया था. लाश एकदम ठंडी हो चुकी थी. डाक्टर ने पुलिस को इत्तला देने को कहा. पुलिस पहुंची और डाक्टर श्रीमती डेविडसन को यह बुरी खबर सुनाने चले गये. लाश को शवगृह में रखवा दिया गया.

श्रीमती डेविडसन लाश के पास अकेली पहुंचीं और थोड़ी देर में ही मायूस-सी बाहर आ गयीं. उन्होंने सबको वापस चलने को कहा. उस समय उनका स्वर कठोर और संयत था.

वे मकान के पास पहुंचे तो उनको अचानक ग्रामोफोन का कर्कश स्वर सुनायी दिया. थांपसन अपने दरवाजे पर खड़ी हंस-हंसकर एक नाविक से बातें कर रही थी. उसकी पोशाक वैसी ही थी जैसी पहनकर उसने शुरू में मकान लिया था. जब वे लोग दरवाजे तक पहुंचे तो उसने व्यंग्यपूर्वक श्रीमती डेविडसन के मुंह पर थूक दिया. डाक्टर ने थांपसन को कमरे में धकेल दिया और ग्रामोफोन बंद करने को कहा. थांपसन ने डांटते हुए स्वर में डाक्टर से कहा, "तुम मेरी इजाजत के बिना मेरे कमरे में चले कैसे आये हो?"

डाक्टर ने पूछा, "क्या मतलब?"

तब थांपसन ने संयत होकर, स्वर में असीम घृणा और तिरस्कार भरकर कहा, "तुम पुरुष लोग, तुम सभी कुत्ते हो. जलील घिनौने कुत्ते!"

डाक्टर चकित रह गये... कुछ भी न समझ पाये. □

कथासार : शैलेंद्र प्रताप सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब प्रेमिका पत्नी बन जाती है

परिचर्चा आयोजक : आ. सि.

पहले मैं उन्हें भैया मानती थी

इंदु माथुर

घरेलू महिला, पति रेलवे में इंजीनियर.

जब मैं एम. ए. की छात्रा थी तभी मेरे भाई के मित्र के रूप में यह घर आते थे. मुलाकात हुई, आंखें चार हुई. दोनों ओर आकर्षण था. लेकिन प्यार जैसी कोई बात न थी. मैं इन्हें पूर्णतया भैया ही मानती थी. लेकिन न जाने कब प्यार का जन्म हुआ. मुलाकातें चोरी से होने लगी. एक दूसरे को ठीक दिये गये समय पर आकर मिलने को ही मैं अच्छी अंडरस्टैंडिंग मानती थी, लेकिन वह आवेग कुछ और था. अब वास्तविकता का जीवन है. जिम्मेदारियां हैं. विवाह के बाद शीघ्र दो जुड़वां बेटियों की मां बन गयी तो प्रेमी-प्रेमिका की बात खत्म ही लगी. जिम्मेदारियों का बोझ बढ़ता ही गया. अब मेरी खुशमिजाजी का व्यवहार वह नहीं रहा. अब इन्जॉय का समय कहां. अंडरस्टेंडिंग करने का अवसर नहीं मिला. पहले जब नियत समय पर आ जाना, साड़ी की तारीफ कर देना ही लगता था कि बड़ी अच्छी अंडरस्टैंडिंग है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है. वह तो केवल भावावेश ही था

आपसी कोई तनाव तो नहीं, केवल कभी-कभी नोक-झोंक हो जाती है. यह मेरी बात पर तवज्जो नहीं देते. बेटी के विवाह में उसी के अनुरूप चलकर समयानुसार रुख अपनाऊंगी. हम अपने को पति-पत्नी मानते और पाते भी हैं.

कई बार देखा गया है कि शादी से पहले जिन्हें आदर्श प्रेमी-प्रेमिका माना जाता था, शादी होते ही उनके बीच कई तरह के तनाव और संघर्ष की स्थिति आ जाती है. इसके विपरीत अनजान पुरुष-स्त्री विवाह के बंधन में बंधकर 'युग-युग के हमसफर' वाली उक्ति को चरितार्थ करते हैं. ऐसा क्यों होता है? हमारे परिचर्चाकार ने कुछ ऐसे व्यक्तियों से बात की है जिन्होंने प्रेम विवाह किये और लगभग वे सभी सफल भी कहे जा सकते हैं. परिचर्चाकार ने इस सफलता के रहस्यों को जानने की कोशिश की है. प्रस्तुत हैं उन्हीं रहस्यों की झलक.

हमने फिल्मी ढंग की इश्कबाजी नहीं की

देवराज किरन कश्मीरी

51 वर्षीय सीमा सुरक्षा बल के प्रधान जन-संपर्क अधिकारी. कार्य से फौजी लेकिन अंदाज से शायराना और क्यों न हों, हैं भी तो उर्दू के अच्छे शायर.

22 वर्ष की उम्र में प्रेमिका मिली जो एक स्कूल में पढ़ाती थी. मैं भी अस्थाई रूप से एक स्कूल में अध्यापक था. मुलाकात हुई, बात आगे बढ़ती गयी. आपसी झुकाव पसंदगी के कारण बढ़ता गया लेकिन फिल्मी ढंग की इश्कबाजी नहीं की. आपसी पसंद और अंडरस्टैंडिग थी.

मेरा झुकाव इस वजह से भी बढ़ता गया कि पिता द्वारा तय शादी मुझे पसंद नहीं थी. मेरे पिता तथा दूसरे पक्ष के लोग मेरी यह बात को मानने के लिए हरगिज तैयार न थे कि बारात में केवल 5 लोग ही जायेंगे, दहेज तथा सजावट नहीं होगी, सेहरा नहीं बांधूंगा और लड़की मेरी दी हुई साड़ी पहनकर ही मेरे घर आयेगी. मेरी प्रेमिका ने शर्त मान ली, लेकिन उनके घर वालों ने नहीं. हमने शादी कर ली. मेरा यह प्रेम किशोरावस्था का प्रेम न था वरन आपसी अंडरस्टैंडिग थी. घर से अलग होना पड़ा.

वैसे कालेज में एकतरफा प्रेम किया था मैंने लेकिन जिसने मुझे प्रेमी माना उससे विवाह किया. शुरू से ही मैं शराब बहुत पीता था. यह छुड़ाने की बात तय करके आयी थी मेरे जीवन में पर न दारू छूटी, न ये ही. आज तक निभ ही रही है, सिर्फ इसलिए क्योंकि आपसी समझ है. कोई स्थायी तनाव नहीं है. मैंने अपनी बड़ी बेटी की शादी उसकी मर्जी से ब्राह्मणों में की. क्षत्री होते हुए भी जात-पांत का नजरिया मैं नहीं रखता, आज हम सुखी हैं क्योंकि नाना बन जाने के बाद भी हम पाते हैं कि पत्नी कम प्रेमिका अधिक है. पत्नी पहले मेरी प्रेमिका है, फिर लड़की के बच्चे की नानी,

हमारी निभने के पीछे एक कारण यह भी है कि हमने शादी पहले कोई सुनहरा सपना नहीं देखा था.

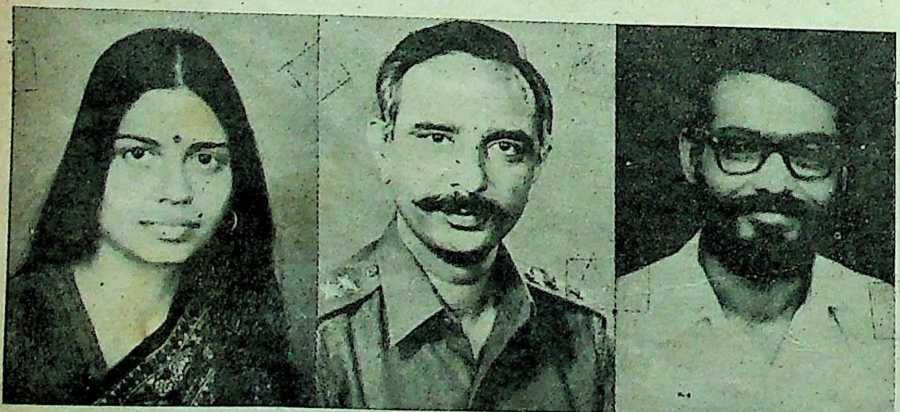

बायें से : इंदु माथुर, देवराज किरण कश्मीरी, बलदेवानंद सागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

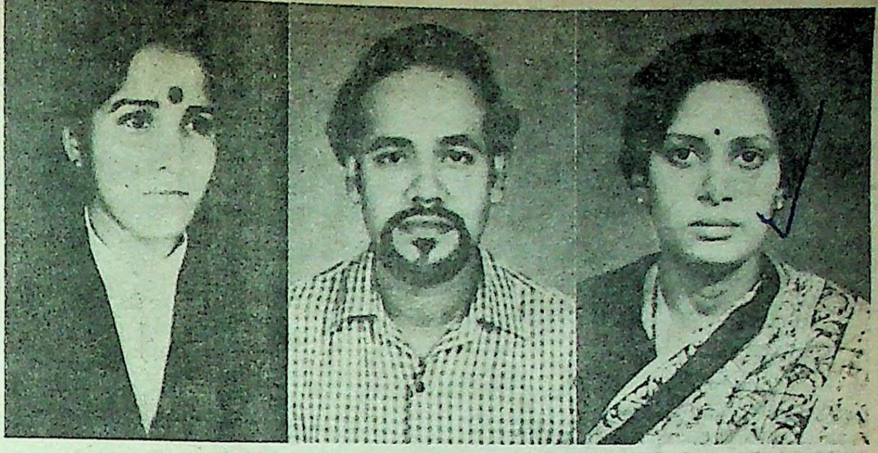

बायें से : आशा उपाध्याय, प्रिय पावन कुमार, गीता अमिताभ

इसे प्रेमिका कम पसंद कह सकते

बलदेवानंद सागर

आकाशवाणी में संस्कृत समाचारवाचक श्री सागर तो गुजराती हैं पर पत्नी सिंधी है आपका कहना है—प्रेम एक मन की सुकोमल प्रवृत्ति है. अनुरागात्मक प्रवृति किसी भी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं करती. अगर कोई बंधन है भी तो उसे अपने स्वप्नों में अनुकूल बनाना चाहती है अर्थात प्रेम तो किशोरवय का अनुराग ही कहा जायेगा. इसी संदर्भ में विश्वविद्यालय के मित्रों में किसी किशोरी के प्रति मन आसक्त था और उसका भी मेरे प्रति लेकिन व्यावहारिक कारणों से वह पत्नी नहीं बन सकीं.

वर्तमान पत्नी तो आकाशवाणी में सह कार्यकत्री है. पूर्व परिचित थे. इसे प्रेमिका कम पसंद कह सकते हैं. आपसी सामंजस्य कह लें, विवाह के पीछे बलवती में बुद्धि विशेष रूप से सक्रिय थी. अतः मैं इसको विवाहपूर्व का अनुराग नहीं कहूंगा. वह तो किशोर वय के अनुराग की भावना ही वास्तविकता प्रेमी-प्रेमिका के रूप को जीवंत बनाती है. इसके बाद के उम्र का प्रेम, प्रेम नहीं वरन एक बुद्धि-मानीपूर्वक किया हुआ सामांजस्य है.

विवाहोपरांत अब हम एक दूसरे के पूरक हैं, जीवन के सामान्य तनाव तो स्वाभाविक हैं लेकिन परस्परिक विचार-विनिमय से दूर करते हैं. एकमात्र बेटी चिदंबरा है. उसे हम इस तरह का प्रशिक्षण देंगे कि वह व्यक्तिगत निर्णय लेने में आत्मनिर्भर बने.

सौभाग्य से मेरी पत्नी मनु 'कार्येषु मंत्री करणेषु बंधुः भोज्येषु माता, रामनेषु रंभा' के सिद्धांत को व्यावहारिक रूप से जीती है. अब तो वह मेरी प्रेमिका भी है और सहचारिणी भी है.

हम एडजस्ट करते हैं

आशा उपाध्याय

पेशे से वकील और उद्देश्य के लिए जीने वाली महिला आशा उपाध्याय का कहना है कि जब मैं एल. एल. बी. की छात्रा थी, तभी इनसे मुलाकात हुई. यह भी मेरे सहपाठी थे, इसी बीच मेरी शादी मेरे घर वालों ने कहीं और तय कर दी जिसे मैं पसंद नहीं करती थी. मेरी जिंदगी का उद्देश्य उसके साथ पूरा नहीं हो सकता था. इस एहसास ने मुझे इनके करीब अधिक कर दिया क्योंकि जो मुझमें अपनी आकांक्षाएं थीं, वह इनके साथ पूरी हो सकती थीं. लेकिन मैं भी सिंधी परिवार की और यह बिहार के ब्राह्मण थे. हमने आपस बौद्धिक स्तर पर आपसी तौर पर विचार-विमर्श करके विवाह कर डाला, वह भी कोर्ट मैरिज. क्योंकि घर वाले सभी विरोध में थे.

आज तक संबंधों में कोई परिवर्तन नहीं है, हम एडजस्ट करते हैं. दो बेटियां हैं, उनके भविष्य को सुरक्षित करके हम दोनों अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु जैसे गरीबों, यतीम बच्चों तथा कोढ़ियों की सेवा हेतु जीवन लगायेंगे.

बेटी की शादी पर लड़का ठीक देखेंगे तो बेटी के निर्णय का स्वागत करेंगे.

हम आज भी एक दूसरे को प्रेमी-प्रेमिका तथा पति-पत्नी दोनों मानते और पाते हैं तथा जीवन का आनंद लेते हैं.

हम अब भी प्रेमी-प्रेमिका की भावना रखते हैं

प्रिय पावन कुमार

एक संस्था में एकाउंटेंट. मैंने 6 वर्षों तक प्रेमी-प्रेमिका के जीवन को जिया. मित्रता थी. आपसी झगड़े भी होते थे, लेकिन स्नेह की भावना इतनी बलवती थी कि एक हो ही गये. भावना के अलावा हम दोनों ने एक दूसरे के गुण-दोषों की भी विवेचना की थी.

विवाह पर मेरे परिवार से तो कम पर ससुराल से अधिक विरोध हुआ था, जो बाद में ठंडा पड़ गया. विवाहोपरांत कोई विशेष परिवर्तन तो नहीं आया. संबंध कुछ सुधरे ही हैं.

जीवन में तनाव का अंत हुआ था और स्थायित्व का अनुभव करता हूं.

बेटी के विवाह के संबंध में निर्णय समयानुसार करूंगा.

हम तो आपस में इतने समय बाद भी एक दूसरे के प्रति, प्रेमी-प्रेमिका की ही भावना रखते हैं.

अब केवल पति-पत्नी रह गये हैं

डा. गीता अमिताभ

रसायन शास्त्र में पी-एच. डी. विज्ञान की छात्रा. ब्राह्मण परिवार में जन्म और कायस्थ प्रेमी से विवाह.

मैं बचपन से ही इन्हें जानती थी, दोनों का घर आना-जाना था लेकिन जब मैं एम. एस-सी. कर रही थी कि प्रेम रूपी अंकुर हृदय से फूटा और हमारा प्रेम बढ़ता हो गया. हमने प्रेमी-प्रेमिका के रूप में लगभग 4-5 वर्ष गुजारे. जब यह नौकरी में लग गये और लगा कि हम दोनों मिलकर स्वतंत्र रूप से जीवन अच्छी तरह जी सकते हैं तो घरवालों के तमाम विरोध के बावजूद हम विवाह बंधन में बंध गये. हमारी दोनों की पसंद तथा नापसंद एक सी थीं तथा विचार करने का ढंग आपसी सामंजस्य भी मेल खाता था, जो अब शायद नहीं रहा. लेकिन हम खुश रह सकते हैं और रह रहे हैं.

विवाहोपरांत परिवर्तन तो आया ही. प्रेमिका के रूप में शक था कि कहीं हम एक न हो पायें, कोई व्यवधान न आ जाये क्योंकि परिवार के लोग विरोध में थे. पहले यह डर था कि कही प्रेमी ही घबड़ाकर साथ न छोड़ जाये. अब बच्चे हैं जिससे हम और करीब आ गये. जिससे वास्तविक घर का निर्माण शुरू हुआ. तनाव तो हैं. पति पत्रकार होने के कारण मुझे समय कम देते हैं तो लगता है कि पूर्व-प्रेमी नहीं, केवल पति हैं. मुझे नौकरी छोड़नी पड़ी. बेटी का विवाह पत्रकार और डाक्टर से कदापि नहीं करना चाहूंगी. यदि वह करेगी तो पसंद नहीं करूंगी.

अब केवल पति-पत्नी रह गये है. कभी-कभी फुर्सत के क्षणों में प्रेमी-प्रेमिका बन जाते हैं लेकिन जिम्मेदारियों का एहसास कहां कुछ. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं अपना स्वाभिमान खोकर पत्नी धर्म निभाना नहीं चाहती. सुविधा करीब-करीब चीख पड़ी और कमरे से बाहर हो गई.

मम्मी सन्न रह गई थीं. उन्हें सुविधा से यह उम्मीद नहीं थी. कुछ समय के लिये कमरा नीरवता में डूब गया. शाश्वती सहम गई थी. उसने महसूस किया यह नीरवता किसी आने वाले तूफान का पूर्व संकेत है.

नीरज के हाथ में चाय का कप धरा रह गया. उसकी दृष्टि खिड़की के बाहर चली गई जिससे धुंआं उगलती चिमनी साफ-साफ दिखाई दे रही थी. वह मन ही मन चिमनी और सुविधा के बीच तारतम्य बैठाने की कोशिश करने लगा तभी शाश्वती की आवाज ने उसे चौंका दिया, "भैय्या, नौ बज गये हैं, आफिस नहीं जाना है क्या ? बाथरूम में गर्म पानी रख दिया है."

मम्मी किचन में थी. उनके बर्तन खनकाने के अंदाज से साफ लग रहा था कि वे क्षुब्ध हैं सुविधा व्यवहार से. यही जवाब अगर वे अपनी सास को देतीं तो. . . उनका क्षोभ और भी बढ़ गया था जब उन्हीं की कोख से जन्मी लड़की शाश्वती भी भाभी की तरफदारी करने लगी. . .

कविता लिखी जाये पर तभी उसे ख्याल आया कि फिलहाल बंबई महानगरी की लोकल ट्रेन में कविता की एक पंक्ति सोचने से पहले ही भीड़ उसके कवि का जनाजा निकाल देगी.

"किन ख्यालों में खोये हैं जनाब?" अंसारी की आवाज थी.

"कहीं बात पक्की हो गयी है क्या ?" एक कोने से आवाज गूंजी. यह गुप्ता बोल रहा था.

सारा ऑफिस खिलखिला के हंस पड़ा. नीरज चौंक गया. उसे लगा जैसे कोई बम फटा हो. फिर उसे ख्याल आया वह आफिस में बैठा है वह खिसियानी हंसी हंसकर राग मिलाने लगा.

"साहब बुला रहे हैं." चपरासी ने आकर सूचना दी. नीरज जैसे ही उठा पास में बैठा शर्मा फसफुसाया, "जाओ बेटा, बास तुम्हारी परेड लेंगे."

"चुप बे !" नीरज ने कृत्रिम रोश दिखाते हुए कहा.

दूसरी सुबह नीरज के आश्चर्य की सीमा नहीं रही. उसका मन बल्लियों उछलने लगा. देखा, वही लड़की बैग झुलाते हुए बस स्टाप की ओर चली आ रही थी. नजदीक आते ही उसने नीरज

दरार

प्रदीपकुमार तिवारी

क्या पत्नी होने का मतलब महज मजबूरियों को ढोते चले जाना होता है . . . . या औरत अपने स्वाभिमान को बचाकर भी जी सकती है! बनी-बनायी लकीरों को तोड़ती साहसी पत्नी की व्यथा-कथा. . .जिसे अपनी सास से ही नहीं पति से भी मोर्चा लेना पड़ा. . .

नीरज आदत के अनुसार पहले तैयार होकर दरवाजे पर सुविधा का इंतजार करने लगा. बार-बार उसका ध्यान कलाई में बंधी घड़ी की ओर जा रहा था. सुविधा अक्सर देर लगा देती है सोचकर वह झुंझलाने लगा. वैसे यह व्यग्रता उसकी अस्तव्यस्त मानसिक स्थिति के कारण और भी तीक्ष्ण प्रतीत हो रही थी. तभी उसे सुविधा आती दिखी. लेकिन उसके पीछे सुविधा का सूटकेस लेकर शाश्वती भी आ रही थी. सुविधा ने एक उड़ती नजर नीरज पर डाली फिर एक रिक्शा रुकवाकर उसमें चली गई.

"एक्सक्यूज मी! क्या आप मेरी साड़ी से अपना पैर हटायेंगे!" नीरज ने देखा एक लड़की की साड़ी उसके जूते तले आ गयी गयी थी, "ओऽऽह ! आय एम सारी." नीरज ने पैर हटाते हुए कहा. लड़की मुस्कुरा दी. नीरज तो हतप्रभ रह गया था उसकी सुंदरता पर. जी चाहता था एक

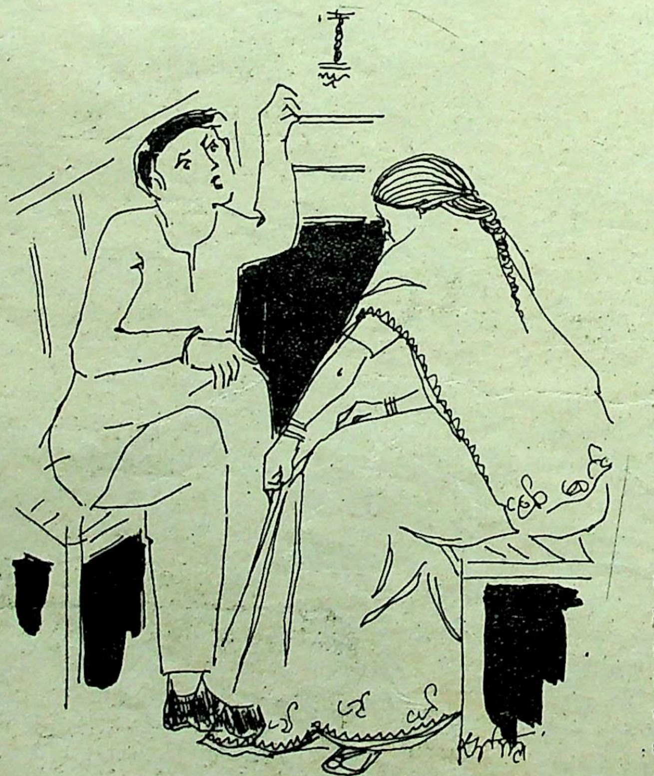

को पहचान लिया. उसने 'हैलो' कहा. नीरज तो जैसे इंतजार कर रहा था. उसने भी 'हलो' कहकर जवाब दिया. फिर बस आने तक दोनों बतियाते रहे. बस आयी. दोनों बस में चढ़ गये. संयोग से दोनों को एक ही सीट मिली थी. कंडक्टर के आते ही नीरज ने पैसे बढ़ाते हुए कहा, "दो रेलवे स्टेशन."

सुविधा ने कोई आपत्ति नहीं की. नीरज फूला नहीं समा रहा था. इस तरह मुलाकातों का सिलसिला जारी रहा और मुलाकातें शादी में बदल गयीं. नीली आंखों वाली ने नीरज का दिल लूट लिया था.

करीब तीन साल गुजर गये.

एक रविवार को सभी बैठे थे तभी मम्मी ने बात चलायी, "तुम दोनों नौकरी करने चले जाते हो, शाश्वती भी कालेज चली जाती है. मैं अकेले घर में बोर हो जाती हूं. पड़ोसी के यहां भी कितनी देर बैठा जाये!" फिर कुछ रुककर बोलीं, "मैं चाहती हूं हमारे घर में भी अब किलकारी गूंजे. उसी की देखरेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मेरा समय व्यतीत हो जाया करेगा."

नीरज ने कोई जवाब नहीं दिया. सुविधा के चेहरे का रंग बता रहा था उसके मन में उथल-पुथल शुरू हो गयी. है.

सुविधा ने बात बदलने के अंदाज से नीरज से कहा, "चलिये आज हम सभी 'गांधी' देखने चलें. मम्मी की बोरियत दूर हो जायेगी और हम सभी को एक अच्छी फिल्म देखने को मिल जायेगी."

शाश्वती तो जैसे उछल पड़ी. भाभी ने उसके मन की बात जान ली थी. अनुनयपूर्ण शब्दों में उसने भी कहा, "हां, भैय्या चलिये ना! मेरी फ्रेंड्स भी कह रही थीं, बहुत अच्छी फिल्म है!"

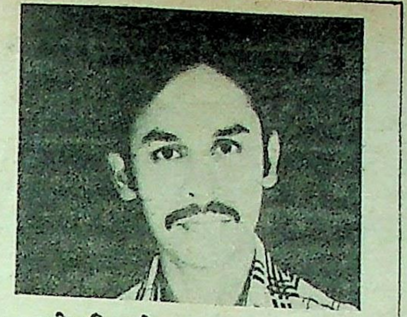

- प्रदीप तिवारी
- जन्म : 25 मार्च, 1958
- बंबई से कॉमर्स डिग्री व बिजनेस मैनेजमेंट डिप्लोमा प्राप्त करने के बाद संप्रति बैंक में कार्यरत. कहानी व कविता-लेखन.

कुछ दिन और गुजर गये. सुविधा मम्मी से नजरें चुराने का प्रयास करने लगी थी. अक्सर वह कोशिश करती कि मम्मी को अपनी बात दोहराने का मौका न दिया जाये. आखिर एक रात खाने के समय मम्मी ने बात फिर से शुरू की, "बेटे, तुमने मेरी बात का जवाब नहीं दिया!"

"कौन-सी बात मम्मी?" नीरज ने अनभिज्ञता जताते हुए कहा.

"मैं घर में बहुत बोर हो जाती हूं. चाहती हूं क्यों न हमारे घर में एक छोटा-सा बच्चा. . .!"

"मैं भी यही चाहता हूं पर शायद सुविधा इसके लिये तैयार नहीं हैं."

सुविधा ने महसूस किया, नीरज ने बात उसके ऊपर डालकर तटस्थ रणनीति अपनायी है. उसे आगे कर स्वयं बचने का प्रयास कर रहा है.

एक क्षण के लिये सुविधा ने मन के तूफानी भावों को संयत किया और कहने लगी, "मम्मी प्लीज अभी मैं कम से कम एक और साल मां बनना नहीं चाहती. अभी मेरी उम्र ही क्या है? पिछले ही महीने तो तेईसवां साल पूरा किया है. फिर एम. ए. की परीक्षा भी तो देनी है."

"पर मैं तो बीस साल की भी नहीं थी, जब नीरज मेरी कोख में आया था." मम्मी ने तर्क किया.

"हां, हां, मैं समझ रही हूं आपका आशय, आप चाहती हैं मैं भी करोड़ों औरतों की तरह एक समर्पिता पत्नी बनकर ढह जाऊं और....."

सुविधा की आवाज में आंतरिक गुस्सा उबल आने के आसार पैदा हो गये थे.

"सुविधा तुम बात का बतंगड़ बना रही हो." मम्मी ने शांत रहते हुए कहा.

"यह मम्मी नहीं, सास बोल रही है." सुविधा ने तुरंत जवाब दिया.

"सुविधाssssss," नीरज गरजा जो अभी तक चुपचाप सास-बहू का वार्तालाप सुन रहा था.

एक पल के लिये सुविधा सहम गयी थी. पहली मुलाकात से लेकर आज तक नीरज पहली बार इस तरह से पेश आया था.

"इसका मतलब है. आप भी मम्मी का पक्ष ले रहे हैं." सुविधा ने पुनः अपने आपको प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया, "कुल मिलाकर यह आप दोनों की. . . ."

"तुम शालीनता की सीमा लांघने का प्रयास कर रही हो. अगर तुम भी मेरे मुंह से ही मम्मी की बात का समर्थन चाहती हो तो लो सुन लो—तुम अगर इस घर में रहना चाहती हो तो तुम्हें मम्मी की बात पर गौर करना होगा."

बातचीत में शाश्वती ने सुविधा का पक्ष लिया और औरत की आजादी पर बोलती रही. किसी ने भी ढंग से खाना नहीं खाया. उस रात सभी की आंखों से नींद कोसों दूर थी. नीरज बाहर गैलरी में बिस्तर बिछाकर सो गया था. सुबह की चाय भी उसने मम्मी के हाथों मंगवाकर पी ली.

सुविधा ने महसूस किया बात कुछ अधिक ही बिगड़ गयी प्रतीत होती है. शाश्वती बावली हो गयी थी. पहली बार घर का वातावरण इतना दमघोंटू हो गया था. वह सुविधा के कमरे के दरवाजे पर टिक कर खड़ी हो गयी. उसकी मूक आंखों में वातावरण लहरें बनकर हिचकोले ले रहा था. शाश्वती को देखते ही सुविधा उसके कंधों पर सिर टिकाकर फफक-फफक कर रो दी.

"बंद करो यह नाटक, सुबह-सुबह यह क्या मनहूसियत फैली है. कम से कम समय का तो ख्याल किया होता." नीरज बौखलाया.

शाश्वती टुकुर-टुकुर दोनों को देख रही थी. तब तक मम्मी भी आकर खड़ी हो गयी थीं.

बहुत दिन बीत गये. सुविधा की कोई खबर नहीं थी. वह न तो आफिस जा रही थी और न ही नीरज ने उसके बारे में पता लगाने की कोशिश की थी. छुट्टी की दरख्वास्त जरूर भेजी थी.

मम्मी ने एक दिन नीरज को टोका, "बेटा सुविधा का कोई अता-पता नहीं है. पता नहीं किस हाल में जी रही हो. कोई है भी तो नहीं उस बेचारी के घर में. अकेली कहीं कुछ कर न बैठे. जा जाकर ले आ. शाश्वती को भी लेते जाना. वह अवश्य मनाकर ले आयेगी."

"कोई जरूरत नहीं है. गुस्सा उतर जायेगा तो खुद चली आयेगी. आखिर कोई अकेली औरत कितने दिन. . ."

रोज की तरह नीरज बस स्टाप पर खड़ा बस का इंतजार कर रहा था. तभी उसे दूर से सुविधा आती दिखी. अनायास उसके चेहरे पर रौनक आ गयी. वही पीली साड़ी वाला लिबास, पर बात वह नहीं थी. उसने देखा. कुछ दुबली होगयी थी. आंखों के नीचे कालिमा उसके गिरते स्वास्थ्य का परिचायक थी.

बस आयी. दोनों बस में सवार हो गये. दोनों को संयोग से एक ही सीट मिली थी.

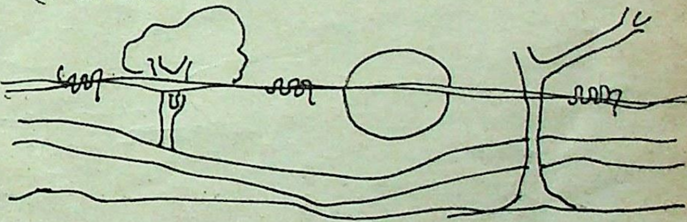

कंडक्टर मुस्कुराया. क्योंकि आज एक अंतराल के बाद दो पुराने यात्री एक साथ एक ही सीट पर यात्रा कर रहे थे. वह उन्हें उन दिनों से देखता रहा है जिन दिनों वे दोनों पहले-पहल मिले थे और उन दोनों का प्रेम इसी बस यात्रा के दौरान फला-फूला था. लेकिन उसने महसूस किया दोनों के व्यवहार से यह प्रतीत हो रहा था कि मामला अवश्य ही गड़बड़ है.

कंडक्टर के नजदीक आने पर नीरज ने पैसे बढ़ाते हुए कहा, "रेलवे स्टेशन."

कंडक्टर असमंजस में पड़ गया था. उसने सोचा एक बार पूछ ही लिया जाये. . . . तभी सुविधा ने फौरन पैसे बढ़ाते हुए कहा, "एक टिकट रेलवे स्टेशन."

कंडक्टर ने दोनों को अलग-अलग टिकट दे दिये. . . .और नीरज सोच रहा था कि उसे दो टिकिट ले लेने चाहिये थे. . . बस द्रुत गति से भागी जा रही थी. □

● स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, बैहर जि. बालाघाट, म. प्र.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवा लेखन कहानी प्रतियोगिता :

आंधी कम होने का नाम नहीं ले रही थी. चारों ओर अंधेरा छा गया था. आंधी के साथ उड़ने-वाली बालू रेत आंखों में कांटों की तरह चुभने लगी. मैं अपने भाग्य को कोसता हुआ घर से निकलने की घड़ी को याद करके पछताने लगा. शाम को टहलने के मन से दूर निकल आया, फिर आंधी ने मुझे अंधा बना दिया और मैं ...ते भटक गया. पूरे इलाके से मैं वाकिफ भी नहीं था. कुछ दिनों के लिए ही तो आया था इधर, बहन से मिलने.

मैं हैरान-परेशान एक दिशा में बढ़ने लगा. . .और पहुंच गया एक गांव में, जो मेरे लिए अनजान था. सोचा, रात यहीं बिता ली जाये. डर भी रहा था, कहीं ज्यादा दूर न निकल जाऊं! आधी-बंद आधी खुली आंखों से गांव के बाहरी हिस्से को देखकर, कुछ देर के लिए ठिठका. फिर डरपोक मन से एक गली में घुस गया. तंग-सी गली थी, एकदम वीरान. दूर तक कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था.

गली खत्म हुई तो सामने लंबी-चौड़ी खाली जगह थी. . .तभी

उजड़े हुए रिश्ते

देविंदर बिमरा

आंधी के एक तेज झोंके से मैं एक बार तो लड़खड़ा गया. आंखें मसलकर, सामने घूरकर देखा. कुछ भी तो दिखायी नहीं दिया.

मैं मन ही मन 'कानासर' के काल्पनिक नक्शे बनाने-मिटाने लगा. . . .न जाने किधर है! आगे, और आगे या पीछे छूट गया है? तभी गली की दाईं दिशा में कोई धीमे स्वर में खांसा. मैं सिर से पांव तक कंपकंपा गया. फिर मैं आवाज की दिशा में पलट गया. . . उधर कोई भर्रायी आवाज में गा रहा था—

'विरहन मां मन्नै डाल गयो. . . . कोई रे
परदेसी आन. . . .
कँवै ना कछु दूर रहै मैं कीयां
जाऊं मान. . . .'

मेरी आंखें आशा से चमक उठीं और मैं तेज-तेज कदमों से आवाज की ओर बढ़ गया. थोड़ी ही दूर एक टूटी-फूटी झोंपड़ी दिखायी दी. भीतर मद्धिम प्रकाश फैला हुआ था. झोंपड़ी के टूटे हुए दरवाजे के बीचों-बीच एक बूढ़ा बैठा था और अपने गीत के दर्द में डूबा हुआ था. वह मेरे आगमन से बेखबर था. आंधी अब भी जोरों पर थी.

मैंने कहा, "बाबा. . . .!" वह चुप हो गया. और मैं सोच में पड़ गया कि बात कहां से शुरू करूं. बूढ़ा हतप्रभ-सा मुझे निहार रहा था. उसके चिथड़े हो चुके मैले धोती-कुर्ते पर एक नजर डालकर मैं बोला, "बाबा. . . राही हूं. भटक गया हूं. कानासर जाना था. . ."

वह कुछ नहीं बोला. कुछ देर ठहरकर मैंने फिर कहा, "रात भर के लिए आसरा चाहता हूं. तुम्हारा एहसान नहीं भूलूंगा, दिन निकलते ही चला जाऊंगा."

"कौन किसी पर एहसान करता है, और कौन किसी का एहसान मानता है." वह हंस पड़ा. लगा, वह मजबूरन हंस रहा है. उसके मुंह ने विकृत-सा रूप धारण कर लिया. फिर कुछ देर गौर से मेरी ओर देखता रहा. मुझे अजीब-सा लगा. मैं थोड़ा डर भी गया.

फिर उसका भावहीन स्वर था, "परदेसी हो. . . शहरी लगते हो! गांव के गरीब की झोंपड़ी में रह सकोगे ! बू तो नहीं आयेगी ? खैर, मुझे इसकी फिकर नहीं, और मैं फिकर करूं भी क्यों ?"

मैंने सिर्फ इतना ही कहा, "बाबा, जो किसी भटके राही को शरण दे, वह घर, घर नहीं, स्वर्ग है."

"अच्छा भीतर आ जाओ," बूढ़े ने बात समाप्त कर दी.

भीतर कुछ भी तो न था. एक ओर, एक खाट पर एक युवती लेटी थी. खाट की उधड़ी हुई रस्सियां नीचे लटक कर, पुराने-बूढ़े बरगद की याद ताजा कर रही थीं.

"पानी पिओगे ?" बूढ़े ने पूछा.

"हां. . . . हां. . . .बहुत प्यास लगी है!" सचमुच मेरा गला सूख गया था. इससे पहले मैं प्यास के बारे में सोच नहीं पाया था. खाट के नीचे से एक कटोरी उठाकर उसने मुझे थमा दी और भारी आवाज में बोला, "शहरी हो न, जल्दी प्यास लग सकती है !" और उसके लंबे-पीले दांत बाहर को झांकने लगे. 'शहरी' शब्द पर वह बार-बार व्यंग्य कस रहा था. मैं अब तक कटोरी के पानी को देख ही रहा था. मुझे कुछ सूझा नहीं, फटाफट पानी गले के नीचे उतार गया. राहत मिली. आंधी पहले की तरह चल रही थी. बाहर अब भी अंधेरा था. आंधी की डरावनी सूं-सूं निरंतर गूंज रही थी. बूढ़े की चुप्पी मुझे अखरने लगी. चुप्पी का बांध तोड़ने के लिए, मैंने खाट की ओर संकेत करके पूछ लिया, "बाबा, वह तुम्हारी बेटी है ?"

"बेटी समझ लो ! दुनिया में अब सिर्फ यही मेरी बाकी जिंदगी का सहारा है. यह मेरे बेटे दियाल की बहू है." कहते हुए उसकी रेतसनी आंखों में आंसू उतर आये. उसकी आंखें लाल हो गयीं. उसके चुप होने पर आंधी की आवाज और भी डरावनी हो गयी. मुझे लगा वह बूढ़ा भीतर तक खोखला हो चुका है. तेज आंधी के बावजूद उसे पसीना आ गया था.

मैंने पूछा, "बाबा, तुम रो क्यों पड़े ?" वह कुछ न बोला. मुझे उसकी चुप्पी पर आश्चर्य हुआ और खीझ भी आयी.

"बाबा, मैंने इस गांव में जब कदम रखा था तो मुझे बड़ा अजीब-सा लगा. . . कहीं कोई आवाज नहीं थी. कोई भी घर खुला नहीं था. गांव भर में सिर्फ तुम दिखायी दिये हो, तुम्हारी आंखों में आंसू हैं. क्या बात है ?"

उसके मुंह पर तेजी से कई तरह के भाव उतर-चढ़ रहे थे. लंबी चुप्पी के बाद उसने गौर से मुझे देखा. बोलने से पहले दिये की लौ पर हाथ रखकर उसे बुझा दिया. फिर भारी आवाज में कहने लगा, "बाबू, देखो कितनी अंधेरी रात है ! यहां की रातें सदा ही ऐसी ही होती हैं. बादलों में चांद उगकर चाहे इस अंधेरे को कम कर दे, पर जो अंधेरा इस गांव में रहनेवालों के दिल में फैल चुका है, उसे कोई रोशनी दूर नहीं कर पाती." वह जैसे कुछ याद करने लगा.

"करीब सात-आठ साल पहले तुम्हारे शहर के बिजलीवाले गांव का नक्शा तैयार करके ले गये थे और उन्होंने वादा भी किया था कि जल्दी ही गांव में बिजली आ जायेगी. सरकार गांव सुधार रही है. तुम्हीं देख लो. . . कहां है वह बिजली ?"

चुप होकर उसने दो-तीन बार थूक गले से नीचे उतारा और फिर से बोलने लगा, "तुम शहरवालों के लिए खूब आराम के साधन मौजूद हैं, पर हमारी तो किसी ने कभी खैर-खबर नहीं ली. हम कैसे समझ लें कि हम इंसान नहीं हैं! हम कैसे यकीन करें कि सभी को बराबर का हक है. मैंने गांधी को पढ़ा है, मार्क्स को पढ़ा है, प्रेमचंद को भी. सबने जो कुछ भी कहा है, सच कहा है. ये किताबें मेरा मेरा बेटा छुट्टी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते हुए लाया करता था. मैं ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं हूं फिर भी समझता बहुत कुछ हूं, क्योंकि मैं बहुत कुछ देख चुका हूं, सह चुका हूं. हम अपने गांव के बेताज बादशाह हैं!...हमारी बादशाही कोई नहीं छीन सकता, कोई भी नहीं!" उसके मुंह से थूक बाहर आ गया था, "चलो छोड़ो, तुम्हें, मेरी ये बातें शायद अच्छी न लगें. मैंने तो अपने मन की बात कही है. हां. . ..तुम पूछ रहे थे ना, यहां सूनापन क्यों है ! पूरी तरह से शायद न बता पाऊं. लाज जाग गयी तो गम करने लगेगी."

"लाज कौन है ?" समझते हुए भी मेरे मुंह से निकल गया.

"बहू का नाम है." वह बोला, "हां तो मैं असल बात पर आता हूं. . . एक बार हाथ फेरकर उसने आंखों की मैल पर आ पड़ी रेत को साफ किया और फिर बाहर उड़ती हुई आंधी की ओर देखने लगा. उसकी आंखें अभी भी लाल थीं. वह शुरू हुआ, "जिस गली में तुम दाखिल हुए थे, उस गली के शुरू में जो चार-पांच घर हैं, उनमें पांच जवान विधवाएं रहती हैं. उन पांचों की गोद खाली है, रेत के 'धोरे' की तरह. उनके मर्द फौज में थे. मेरा बेटा दियाल भी उन्हीं के साथ फौज में भर्ती हुआ था. मेरा बेटा और वे पांचों मारे गये... देश के

वे कौन-से तत्व होते हैं और कौन-से हालात, जो पुरुष नहीं, सिर्फ स्त्री के संबंधों का सारा समीकरण ही बदल देते हैं? पति की होने अथवा न होने पर संबंधों का प्रारूप ही अलग-थलक क्यों हो जाता है? . . . कि कभी स्त्री के लिए हर पुरुष घृणित बन उठता है तो कभी पुरुष के लिए हर स्त्री?—पढ़िए, युवा कथाकार की इस माह की पुरस्कृत कहानी कि भौगोलिक दूरियां, यहां तक कि शहर और गांव की अंतरालता भी संबंधों को किस कदर प्रभावित करती रहती है.

लिए लड़ते हुए. अपने देश को सभी चाहते हैं. उन्होंने भी चाहा, कोई गुनाह नहीं किया. उन्हें भी अपने देश की मिट्टी से प्यार था. प्यार था, तभी तो बहादुरी से लड़े थे! . . . फिर एक दिन एक शहरी बाबू अपनी बुरी नीयत लेकर आया. उसने बताया कि धर्मा, साजिद, दिलावर, लखना, बलदेव और दियाल लड़ाई में मारे गये! किस-लड़ाई में, यह नहीं बताया. गांव का कण-कण कांप उठा. गांव के आसपास का रेत भी पागल होकर उड़ने लगा. उस दिन भी बड़े जोरों की आंधी चली थी. उन सबकी घरवालियां अपनी देह को पीटती रहीं. रोती रहीं. जब तक उन सबने हाय-तौबा बंद नहीं की, तब तक बाबू रुका रहा. फिर पांच दिन लगातार बारी-बारी उन पांचों घरों में मिट्टी खराब करता रहा. एक कागज पर उसने उनके अंगूठे लगवाये. शायद छठे दिन हमारे घर भी ठहरता. मेरा डर था, सो बहू का अंगूठा लगवाकर लौट गया. जाते-जाते कह गया था कि इन सबको 'पैंसन' मिलेगी, रहने को शहर में जगह मिलेगी. किसे मिलनी थी ! उस दिन के बाद शहर का कोई आदमी यहां नहीं आया. बस, एक तुम आये हो, भूले-भटके. अंधेरा तो पहले भी था. तब अंधेरा और भी बढ़ गया. यह अंधेरे का गांव है. यहां सब अंधेरे में रहते हैं." उसका स्वर तेज हो गया, "तुम्हें तो अंधेरा अच्छा नहीं लगता होगा, पर हम इससे घुल-मिल गये हैं. एक बात बहुत ध्यान देने की है कि युद्ध में शहीद हुए वीरों की विधवाओं में से किसी को 'वीर-चक्कर' मिला तो किसी को 'परमवीर-चक्कर.' पर इन विधवाओं को तो खाली 'चक्कर' ही नसीब हुआ, फाकों का चक्कर. कितना फर्क है !" उसने लंबी आह भरी, "रामपुर गांव में इनकी शादी की बात चलायी थी मैंने. वहां कोई नहीं माना. पीहरवालों ने भी कोई सुध नहीं ली. सभी सिसकती रहती हैं, रोती रहती हैं, और जब साल बाद 'करवा-चौथ' का दिन आता है, तो सब मिलकर गाती हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'म्हाने छोड़ गयो एकली जान. . . .'

"उस दिन मैं भी रोता हूं, खूब रोता हूं. कोई भी अपने घर से बाहर नहीं निकलता. अंदर बैठे-बैठे बाहर गली में गूंजनेवाली खौफनाक आवाजों को सुनते रहते हैं. वो आवाजें दर्दीली होती हैं. डरावनी और दर्दनाक! हम सुनते हैं. . . . हम क्यों बेदर्दी से मारे गये! कहां है हमारा परिवार? कहां है हमारा राजा? हम पूछना चाहते हैं, हमारा क्या कसूर है? कौन-सा पाप किया है? ये आवाजें जरूर उन छह नौजवानों की तड़पती हुए रूहें करती होंगी!"

वह चुप हुआ. उसकी आंखें माथे तक चढ़ चुकी थीं. आंखों से अंगारे फूट रहे थे. इससे पहले कि मैं कुछ बोलूं, उसने हाथ के संकेत से मुझे चुप रहने को कहा. शायद आज पहली बार वह अपनी कहानी किसी को सुना रहा था. मैं चुप रहा. उसने कहा, "आगे के दो घर, रात में सदा बाहर से बंद रहते हैं. काफी समय पहले वहां बहुत खुशियां थीं. अब वहां कुछ भी नहीं. एक घर में मालती रहती है और दूसरे में इलायची. दोनों के मां-बाप बचपन में ही मर गये थे. बाप एक दिन शहर में मजदूरी करके लौटा तो बुखार से कांप रहा था. कोई दवा-दारू न बन पायी, उनकी मां भाग-दौड़ करती रही. चूल्हे-चौके को लकड़ियां चुगने गयी एक दिन तो उसे सांप ने डस लिया, वापस ही नहीं आयी. बाप कुछ कर सकने की हालत में नहीं था. गठरी बना पड़ा रहता और फिर एक दिन गठरी बना-बना अकड़ गया जाड़े से. . . ये दोनों बड़ी हो गयीं. शहर में जाती थीं, काम-धंधा देखने. इतनी आमदन नहीं थी कि फटे-उघड़े कपड़े बदल सकतीं. जवानी ढांपनी मुश्किल हो गयी. पहले, दिन में शहर जाती थीं. फिर रात को जाना शुरू कर दिया. पता नहीं, रात कहां पर गुजारती हैं, पर दिन होते-होते घर लौट आती हैं. मैं सब समझता हूं, पर चुप रहता हूं. सवेरे जब वापस आती हैं तो खूब रोती हैं. उनकी चीखें मैं भी सुनता हूं. तब मैं कान ढक लेता हूं, पर उनकी आवाज फिर भी सुनता है, और मेरे दिल पर नश्तर चलते रहते हैं. मैं उनके बाप के बराबर हूं, पर मजबूर हूं. मुझसे अब कुछ होता भी नहीं."

वह चुप हो गया. मैं उसका मुंह देखकर हैरान था. वह अपने दांत बार-बार भींच रहा था, आंखें अभी भी लाल थीं और बाहर उड़ती हुई आंधी को घूर रही थीं. मुझे यकीन नहीं था कि वह सब कुछ कह चुका है. उसके होंठ खुलने की प्रतीक्षा करता रहा. लंबी चुप्पी के बाद उसने मुंह खोला, "आगे जितने भी घर हैं, वहां कोई मर्द नहीं रहता. सारे के सारे दूर जाकर कहीं मजदूरी करते हैं. यहां सिर्फ उनकी औरतें अपने बच्चों के साथ दिन काटती हैं. यहां कोई कभी भी नहीं हंसता, वे सदा चुप रहते हैं. महीने बाद हर मर्द अपने घर सौ-पचास रुपये भेज देता है. क्या बनता है इससे! न पहन सको, न खा सको! . . . भूख नंगी नाच रही है. . . यही हाल रहा तो मुझे डर है, इनमें से भी कोई 'मालती' और 'इलायची' न बन जाये. कुछ दिन पहले पतासी को इलायची से बातें करते देखा था. इलायची का असर इस पर जल्दी पड़ सकता है. मुझे देखकर पतासी भाग गयी और इलायची मुंह ढांपकर घर में घुस गयी थी. वे मुझसे बहुत कतराती हैं. . . .अगर तुम इनके बच्चों को देखो तो डर जाओगे, भूत लगते हैं. हड्डियों के ढेर हैं. तुम्हें दिन में दिखाऊंगा. तुम्हारे शहर के बच्चे बड़े फुर्तीले होते हैं. खेलते-कूदते हैं. ये लोग तो दिन-भर घुटनों में मुंह देकर बैठे रहते हैं. भूख लगने पर दूध की तलाश में, मां के खाली स्तन नोच लेते हैं. जब कुछ नहीं मिलता तो खाली पेट, तपती रेत पर पेट के बल सोये रहते हैं. पानी के भी टोटे हैं. पानी भी फालतू नहीं है, जो वे बार-बार पी सकें. एक बार बरखा नहीं हुई थी तो लाशें सड़ने लगी थीं. अब भी बरखा ज्यादा नहीं है. बावड़ी खाली होती जा रही है. . ."

"मैं सोचता हूं, इन बच्चों के बाप मर जायेंगे जब या बूढ़े हो जायेंगे तो इन किस्मत के मारों का क्या बनेगा! किसके सहारे जियेंगे! पर. . . अब भी कौन-सा सुख-सहारा है इनके वास्ते. इनमें तो उठने की भी हिम्मत नहीं है. बेचारे नये इनसान! कब-कब दुनिया में आयेंगे. अब इन्हें मिल भी क्या रहा है, मानव जनम पाकर! और हमने भी क्या पा लिया!"

उसके चुप होते ही दो लंबी चीखें मेरे कानों से टकरायीं. मैं चौंककर खड़ा हो गया. बूढ़े के हाथ अभ्यस्त से कानों तक सरक गये. उसकी आंखों में पानी तैर रहा था. मैंने उसकी ओर पूछने के आशय से देखा तो भर्रायी आवाज में वह बोल पड़ा, "वो आ गयी हैं."

"कौन?" मैं समझ न पाया.

"जो रात में बाहर रहती हैं गांव से. . . . मालती और इलायची. दिन होनेवाला है."

आंधी पूर्ववत चल रही थी. आकाश में दूर तक धूल फैली हुई थी. बूढ़ा जल्दी-जल्दी आंसू पोंछने लगा. खाट की ओर देखकर बोला, "पंद्रह दिनों से बुखार बहू का पीछा नहीं छोड़ रहा. रत्ती भर भी फर्क नहीं आया. शहर जाकर इलाज करवाना चाहूं तो गरीब की कौन सुनता है. . . और अव्वल तो ले जाना ही मुश्किल है."

मैं खाट की ओर मुंह करके बैठ गया. तभी लाज ने करवट बदली और क्षीण स्वर में बोली, "बाबा....पानी." उसकी आंखें बंद थीं.

"अभी लाता हूं." उस बूढ़े ने वही कटोरी उठा ली, जिसमें मैंने पानी पिया था और लड़खड़ाता हुआ तेजी से बाहर चला गया.

मैंने युवती की ओर ध्यान से देखा और फिर उसकी नब्ज टोहने लगा. उसका चेहरा मदेस-सा हो चुका था. उसे तेज बुखार था. वह उठने को जोर लगा रही थी. मैंने उसे सहारा देकर बिठाने के लिए अपने हाथ उसकी कमर पर लगा दिये. उसने आंखें खोलीं तो घबरा गयी. अजनबी को देखकर हैरान-सी वह कांपती हुई आवाज में बोली, "कौन हो तुम! मेरे बाबा कहां हैं?"

"अभी आ रहे हैं, पानी लेने गये हैं. मैं शहर से आया हूं. . . . तुम्हारा इलाज करवाऊंगा."

मेरी बात पूरी होने से पहले ही उसने मेरा हाथ झटक दिया. उसकी आंखों में दहशत भर गयी.

"डरो नहीं. . . .." मैं आगे कुछ और कहूं, इसका मौका नहीं दिया उसने. चीखकर बोल उठी, "छोड़ दो मुझे. . . दूर हो जाओ मुझसे. तुम्हारे शहर ने मुझे लूट लिया, तुम्हारे शहर ने मेरा घर उजाड़ा है. तुम सब बेदर्द हो! पापी! शैतान! तुम्हें सिर्फ हवस से मतलब है. किसी गरीब की तुम्हें कोई फिकर नहीं. मुझे मत छूना. . . मुझे नहीं चाहिए दवाई, मुझे नहीं चाहिए इलाज. मैं मर जाना चाहती हूं. मुझे मर जाने दो. मैं. . . .मैं. . . . बा आ. . . . बा. . . . !"

फिर वह एक शब्द भी न बोल पायी. मांस के लोथड़े की तरह खाट पर लुढ़क गयी. मैंने उसकी नब्ज टटोल कर देखी. वह ठंडा था.

आंधी और तेज हो गयी. दिन लग चुकने पर भी अभी तक हल्का अंधेरा छाया हुआ था.

बूढ़ा हांफता हुआ पानी लेकर लौटा. उसकी सांस संभल नहीं रही थी. बोला, "लो. . . . बहू. . . पानी." और उसे हिलाने लगा.

मैं असहाय-सा बोलने की कोशिश में शब्द खोज रहा था. अकस्मात मेरा मुंह खुला, "बाबा. . . अब यह कभी पानी नहीं पियेगी."

"क्या. . . क्या कहा तुमने? बेशरम!" वह तेजी से बहू के हाथ-पैर और मुंह हिलाने लगा. फिर वह चीख पड़ा. उसकी आंखें फट जाने को हो गयीं. पानी की कटोरी उसके हाथ छूटकर दूर जा गिरी और वह अपने बढ़े हुए बाल नोचने लगा. मैं सिर्फ उसके मुंह से बाहर झांकते पीले दांत देखता रहा. मेरी इतनी भी हिम्मत नहीं हुई कि सांत्वना भरे दो-शब्द भी कह सकूं. कितने ही प्रश्न मेरे मन में उथल-पुथल मचा कर शांत हो गये.

कुछ देर बाद रोते-विलापते, उसने एक चिथड़े हो चुके कपड़े से लाश को ढक दिया. और खा जानेवाली नजरों से मुझे देखने लगा. □

● माइक्रोबायोलोजी विभाग, गवर्नमेंट मेडीकल कालेज, पटियाला-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन ग्रामीण जीवन की एक सही तस्वीर

—डॉ. पुष्पपाल सिंह

समकालीन कहानी के सार्थक लेखन की दो विशिष्ट मुद्राएं हैं : प्रथम अपने समय संदर्भों को कहानी में इस रूप में जीना कि वे आज की जिंदगी की एक सही तस्वीर पेश करते हुए लेखकीय चिंता को व्यक्त कर एक सहभागी सोच के लिए प्रेरित करें और दूसरे, प्रेम आदि के संदर्भ में मानवीय हृदय की ऐसी पर्तों को उघाड़े जो अस्तित्व में होती हुई भी अभी तक अप्रकाशित और अनचीन्हीं हैं. इन दोनों स्थितियों को ही कहानी का आधुनिक युगबोध कहा जा सकता है. सुरेश सेठ के **'धंधा'** (1979) के पश्चात् प्रकाशित दूसरे कथा-संग्रह **'जीना-मरना'** (1981) की कहानियां भी अपने इसी समकालीन बोध से जुड़ी हुई हैं.

संग्रह की बारह कहानियों को इसी दृष्टि से दो वर्गों में रखकर देखा जा सकता है. प्रथम वर्ग में वे कहानियां हैं, जिनमें अपने समय की क्रूर-सच्चाइयों, विद्रूपताओं की तह में जाकर उन कारणों पर चोट की गयी है, जो इन स्थितियों के लिए जिम्मेदार हैं! ऐसी कहानियों में **'जीना मरना'** **'भवदीय'** **'यंत्रपुरुष'**, **'कितने जुलूस'** महत्वपूर्ण हैं. **'जीना-मरना'** में संक्रमणकालीन ग्रामीण जीवन की एक सही तस्वीर देते हुए उस राजनीतिक सामाजिक परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया गया है, जो इन हाल के वर्षों में उभरकर सामने आया है. नगरों में ही नहीं, गांवों में भी राजनीति और जन-आंदोलन किस प्रकार एक सुविधा-भोगी वर्ग या जिसे गांव का नव-विकसित पूंजीपति वर्ग कहा जा सकता है, की ठेकेदारी बनकर रह गये हैं, इसे कहानी सशक्त रूप में चित्रित कर सकती है. सामान्य आदमी जिसको कहानी में किसनू प्रतीकीकृत करता है, इस लड़ाई में महज एक टूल बनकर रह जाता है, वह खोता ही खोता है, पाते दूसरे हैं, जिन्हें पहले से ही बहुत कुछ यूं ही प्राप्त है. अपने बहुवर्णी संदर्भों में कहानी संक्रमणकालीन गांव का एक प्रामाणिक चित्र तो है ही, वह उन स्थितियों के जिम्मेदार तत्वों का भी खूबी से पर्दाफाश करती है. यह इस संग्रह की और सुरेश सेठ की बेहतरीन कहानियों में से एक है. हिंदी में आपातकालीन स्थिति (इमरजेंसी) को संदर्भित करती अनेक सशक्त कहानियों की रचना हुई. इमरजेंसी के दौर में नौकरशाही की मनमानी, मीसा आदि के भय से आतंकित माहौल ने कलाकार के मानस को भी झकझोरा था. **'भवदीय'** का कथाकार आपातकालीन स्थिति के इन्हीं विविध संदर्भों को रेखांकित करता है. देश में 'फालिज मार गया' जैसा माहौल, प्रेस की सेंसरशिप के कारण अखबारों का प्रवचननुमा खबरों को छापने में तब्दील हो जाना, ट्रकों में भरे जा रहे मजदूर जो जिबह के लिए ले जाते बकरों के समान किसी अस्पताल पर जाकर छोड़े जाते हैं; ट्रकों के पीछे भागती औरतों का क्रंदन, ठीक दस बजे दफ्तर के बाबू-अफसरों की तैनाती, बोनस, सी. डी. एस., ओवरटाइम के विषय में नये निर्णय, तनख्वाह प्राप्त करने के लिए अध्यापिकाओं का **'केस'** ढूंढ-ढूंढकर लाना, **'ऊपर से'** गेट मीटिंग के आदेश, सबके बीच बाबू रामप्रसाद का टूटना आदि स्थितियां उस माहौल का प्रामाणिकता से सहज ही साक्षात् करा देती है. **'यंत्रपुरुष'** का देवेन बाबू जैसा **'धड़ल्लेदार आला अफसर'** जिस आदर्शवादी वर्ग से आता है, अफसर (विशेषतः आई. ए. एस. अफसर) बनते ही वह उन सब आदर्शों की हत्या के लिए मजबूर हो जाता है. व्यवस्था का मात्र एक यंत्र बन जाना ही उसकी नियति है. **'कितने जलूस'** का कथ्य यद्यपि अधिक स्पष्टता से नहीं उभर पाता है, किंतु फिर भी कहानी एक महानगरीय बोध से युक्त है. जिसमें हमारी संस्कृति और मूल्य पश्चिम से आयातित संस्कृति और मूल्यों से टकराते हुए हिप्पी-जीवन की झलक देते हैं.

'जीना-मरना' की कहानियों का दूसरा स्तर उन कहानियों का है, जो प्रेम विवाह आदि के संदर्भ में मानवीय हृदय की अनचीन्ही स्थितियों को प्रकाशित करती हैं, किंतु प्रेम आदि की स्थितियों को चित्रित करती इन कहानियों का मुहावरा परंपरागत प्रेमकथाओं से अलग हैं. इनमें अधिकांशतः वह युवक है, जिसके प्रेम और दर्शन से सब स्वप्न जिंदगी की असलियत की तल्खी में गर्क होकर रह गये हैं. इसलिए ये प्रेम कहानियां महज प्रेम कहानी न रहकर उस आदमी की जिंदगी के अक्स बन जाती हैं, जो मुहानों पर विविध रूपों से अपनी लड़ाई लड़ रहा है.

कहीं यह युवक कितनी ही डिग्रियों के बोझ से लदकर बेकारी की व्यथा भोग रहा है तो कहीं देश की बीमार व्यवस्था को देखकर और भी मायूस हो रहा है. **'शायद रात कट जाये'** का नायक जब काम करना शुरू करता है **'तो उसे लगा था जैसे सारा मुल्क ही एक साझा धरातल, एक समझौते की तलाश में बीमार हो गया है. जिंदगी के हर दर्शन में, चित्त भी मेरी और पट्ट भी मेरी' चाहने की इच्छा रखनेवाले समझौतावाद की एक पंगु रणनीति जिए जा रहे हैं'** (पृष्ठ 27) **'कैंसर'** की नौकर-पेशा सैल्समैन का प्रेम इसीलिए अपनी मंजिल नहीं पा सका है. **'चुनाव'** की मिस कपिल अपनी मजबूरियों के कारण ही अपने प्रेमी मिस्टर साहनी के साथ चुनाव में सफल हो पाती है.

उसकी विवशताओं का संसार साहनी को बाध्य कर देता है कि वह स्वंय ही अपने 'चुनाव' को तिरस्कृत कर दे. **'नजात'** की जे. के. भी आर्थिक स्थिति के हीन होने के कारण ही अपने पति और प्रेमी को छोड़कर फ्लाइट लैफ्टीनेंट कपिल के साथ ढर्रे की जिंदगी को चुनती है **'मांद'** का रामलखन भी आर्थिक स्थितियों की इसी बेमेल जिंदगी को भोगता है. इस प्रकार प्रेम की स्थिति को व्यक्त करने वाली ये सभी कहानियां जहां एक ओर हारे हुए प्रेमी और टूटे मन चित्रित करती हैं तो दूसरी और किसी न किसी रूप में सामाजिक विसंगतियों का भी पर्दाफाश करती हैं. इसी रूप में इन प्रेम-कथाओं का तेवर तीखा हो जाता है.

'जीना-मरना' की कहानियों की संरचना और अभिव्यक्ति भी अत्यंत सक्षम और टटकी है, किंतु कहीं-कहीं 'साधारणता' जैसे शब्द प्रयोग और बार-बार फिल्म-संदर्भ खटकते हैं. कहीं **'गली में औंधी पड़ी अंधेरे की बाल्टी में छुप गयी'** जैसे प्रयोग अप्रिय भी लगते हैं. सुरेश सेठ के कहानीकार को मातृभाषा के इस प्रभाव से भी मुक्त होना है, जहां वे कहते हैं, **"चावले पोस्टमैन ने तेजी के साथ बढ़कर . . ."** (चावला पोस्टमैन शुद्ध प्रयोग).

इन अत्यल्प अभावों के होते हुए भी **'जीना-मरना'** एक अत्यंत महत्वपूर्ण कथा संकलन है. जो सुरेश सेठ के कहानीकार के प्रति एक गहरी आश्वस्ति जगाता है. समकालीन कथा-लेखन में इन कहानियों का स्थायी महत्व होगा. □

चर्चित पुस्तक

जीना-मरना (कहानी संग्रह); लेखक: सुरेश सेठ: प्रकाशन: प्रयोग प्रकाशन, महरौली, नयी दिल्ली- 110030

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके बेटे अमिताभ नहीं होते, कुछ के बेटे नीलाभ भी होते हैं !

जब अश्क जी ने दूकान खोलने के के प्रकरण को लेकर हिंदी का साहित्य जगत हड़कंपित हो रहा है तो भला यह कैसे संभव था कि बतंगड़ में उसकी चर्चा भी न होती. चर्चा हो रही है और आइए आप भी इसका मजा लीजिए.——

वस्तु को सीधे बेचने की इच्छा अश्कजी के मन में हमेशा रही है. वे ग्राहक और उत्पादक के साथ रिश्तों पर विश्वास रखते हैं. उन्हें बीच के दलालों से सख्त चिढ़ है. वे नहीं पसंद करते कि लेखक और पाठक के बीच कोई खाई हो. वे इसीलिए प्रकाशन खोल बैठे और लिखने के संघर्ष के साथ प्रकाशन के संघर्ष का मजा लेते रहे. मैंने देखा है कि वे लेखकीय सफलता के अहं के साथ प्रकाशन की सफलता के अहं को भी जीते हैं. जब वे कथावस्तु के साथ शिल्प का संबंध जोड़ते हैं, टायटिल, आकार और पुस्तक के टाइप पर भी विचार कर लेते हैं. इंदौर में सन तिरपन में जब वे कोई सप्ताह भर ठहरे थे, मैंने देखा सफल लेखक होने के साथ सफल सेल्समेन होने का अहं भी जीते हैं. बल्कि उनके दोनों अहं लगभग गड्ड-मड्ड हैं. वे गर्व से कहते थे कि मैंने यशपाल को किताबें बेचना सिखाया और इस संदर्भ में वे शिमला की एक घटना सुनाते थे, जब दोनों के पास पैसे कम पड़ गये थे और किस तरह उन्होंने किताबें बेचीं और खर्च निकाला. पिछले वर्षों में जब अपना कमीशन काटने के चक्कर में सरकारी अफसर लेखक और पुस्तकालय के बीच महत्त्वपूर्ण शक्ति बन बैठे, अश्कजी की यह चिढ़ फिर प्रकट हुई. एक तरफ वे सफल सेल्समैन बनते हैं पर व्यवहार में उनके मूल्य स्वाधीनता पूर्व के हैं और किसी भी तरह के भ्रष्टाचार और बदनीयत से वे समझौता नहीं कर पाते. रईस होना हर पंजाबी की सबसे बड़ी मजबूरी है और इसके लिए वह किसी भी स्तर पर जा सकता है. पर पंजाबियों में यह बात विभाजन के बाद विकसित हुई. असुरक्षा की भावना ने उन्हें अतिरिक्त रूप से कर्मठ बनाया. इस कर्मठता से वे समृद्ध हुए और अपनी अर्जित समृद्धि को बनाए रखने और बढ़ाने के चक्कर में जरूरी भ्रष्टाचार को उन्होंने व्यवसाय के व्यवहारिक पक्ष के रूप में स्वीकार किया. पर अश्क इस नयी रईसी के चातुर्य को अपना न सके. जो अश्क को करीब से जानते हैं, वे अश्क और एक सामान्य पंजाबी के अंतर को पहचानते हैं. अश्क रईसी को फकीरी अंदाज से जीते हैं. एक बढ़िया सूट, चमचमाता जूता और मौजा पहन, छड़ी हाथ में ले वे एक अलग-सी कैप पहन लें और उन्हें कोई जगह मिल जाये, जहां वे हंस-हंसकर लफ्फाजी कर सकें, बस हो गयी अश्क की रईसी. वे उन क्षणों में कोई फोर्ड, रॉकफेलर होते हैं. अश्क को अपने बटुए का नाज नहीं है. उन्हें नाज है अपने नरम बालों, पतले होंठ, अभिनय क्षमता, किताबों के टायटिल्स, लंबी यात्राओं, अनुभवों से भरे जीवन, तमाशा घुसकर देखो की प्रवृत्ति पर, जिसके दम पर वे इलाहाबाद जैसे हृदयहीन और निर्मम शहर में बरसों से सिर उठाए जी रहे हैं. वे मजमा लगाना जानते हैं. और वे ही हिंदी के एकमात्र ऐसे लेखक हैं जो यह बात गर्व से कहते हैं कि वे सबसे अच्छा मजमा लगाते हैं. और वे आपको भी नेक सलाह देंगे कि मजमा लगाने की कला सीख लो. जब भूखे मरने की नौबत आये, मजमा लगाकर चार पैसे कमा लोगे.

इसलिए जब मैंने उस दिन अखबारों में पढ़ा कि उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने चूना बेचने की दूकान खोल ली या नींबू पानी बेचने की दूकान खोल ली, मुझे आश्चर्य नहीं हुआ. सच बात यह थी कि अश्क ने परचून की दूकान खोल ली थी और प्रेस ट्रस्ट के किसी हिंदी से अंग्रेजी करनेवाले पत्रकार ने परचून के चून का अनुवाद लाइम किया. उसे पढ़ अंग्रेजी से हिंदी करनेवाले पत्रकारों में से कुछ ने सोचा कि यह लाइम नहीं लेमन होगा, क्योंकि इलाहाबाद की गर्मी में ऐसी दूकान हो भी सकती है. कहीं चूना छपा, कहीं नींबू. दूकान जो भी हो, और खबर चौंकानेवाली हो मगर मुझे ताज्जुब नहीं हुआ. अश्क ऐसी दूकान खोल सकते हैं. और मात्र अश्क ही हैं जो ऐसी दूकान खोल सकते हैं. इस समय मामला निराशा से जोड़ा जा रहा है मगर अश्क उत्साह और उमंग में भी दूकान खोल सकते हैं. यह सरलता से कहा जायेगा और कहा ही जा रहा है कि यह अश्क का स्टंट है, मगर यह स्टंट नहीं भी हो सकता है. यह अश्क के लिए किसी समस्या का व्यावहारिक हल भी हो सकता है.

अश्क खाली नहीं बैठ सकते. यदि क्रिएटिव तनाव न हो तो वे किसी और किस्म का तनाव आमंत्रित कर लेंगे, आविष्कृत कर लेंगे और उससे जूझ जायेंगे. जीने के लिए वे फाड़कर सीने पर भरोसा करते हैं. यों भी अश्क में काम करने की शक्ति हिंदी के सामान्य लेखक से अधिक है. इसमें मैं तिकड़मों को शुमार नहीं कर रहा. वे तो हिंदी में आजकल कई लोग बड़ी आसानी से कर लेते हैं. अश्क सचमुच अधिक काम करते हैं. यह दुर्भाग्य है कि हम अपनी मध्यमवर्गीय धारणा के अनुसार अधिक काम करनेवालों को तिकड़मी कहते हैं. प्रकाशक जब बने तो अश्क ने वही किया जो एक प्रकाशक को करना पड़ता है. अपनी मस्ती और लतीफेबाजी के मूड में अश्क ने अपनी प्रकाशकीय तिकड़मों के किस्से खुद सुनाये और प्रसारित होने दिये. जैसे 'अश्क' के खिलाफ जब भी टिप्पणी लिखी जाती है, एक जिक्र अवश्य आता है कि उन्होंने 'बैंगन का पौधा' नामक अपनी एक किताब राजस्थान सरकार के कृषि विभाग को यह समझाकर बेच डाली कि यह कृषि संबंधी पुस्तक है. 'अश्क' के तिकड़मी व्यक्तित्व को निरूपित करने के लिए यह सर्वज्ञात लतीफा है. मगर अपने बारे में इस लतीफे को स्वयं अश्क ने फैलाया है. इंदौर में अपने बारे में बहुत-सी बातें कहते हुए अश्कजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह किस्सा आज से तीस साल पहले मुझे सुनाया था. अश्क की ही कृपा से वह लतीफा आज भी ताजा है और इस तरह कोट होता है जैसे पुस्तकों की सरकारी खरीदी के इस दौर में पिछले ही साल यह घटना घटी हो. वे इसे एक संस्मरण के रूप में सुना रहे थे पर मुझे उस दिन भी संदेह था कि यह अश्कजी का गढ़ा हुआ किस्सा है. हो सकता है कि राजस्थान के पुस्तकालयों के लिए उनकी पुस्तक 'बैंगन का पौधा' खरीदी गयी हो, पर वह कृषि की पुस्तक समझकर खरीद ली गयी, यह मजाक अश्क ने जोड़ा है.

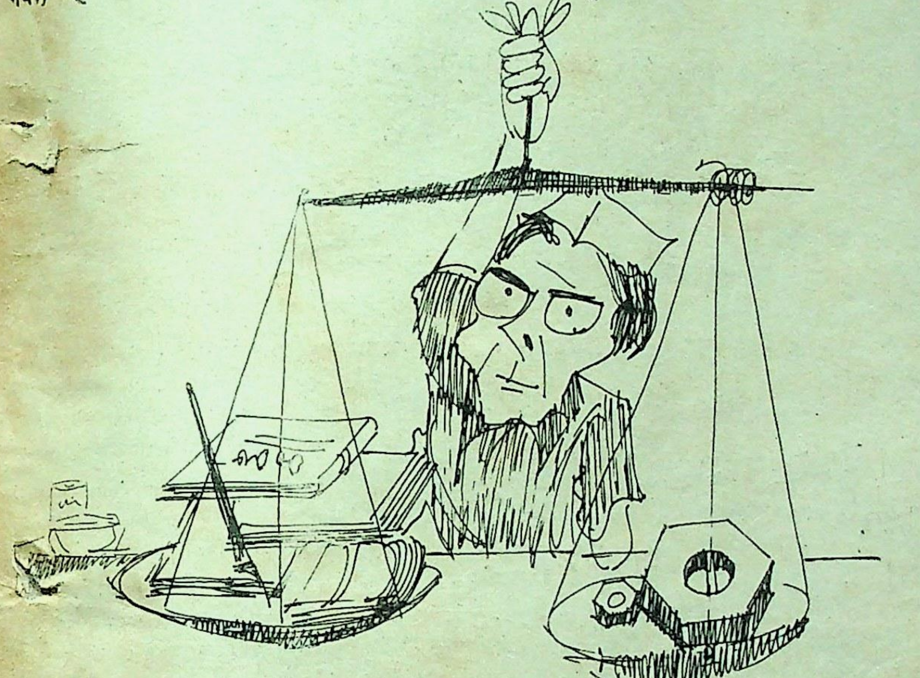

अर्थात अश्क की यह अकड़ पुरानी है कि वे बहुत अच्छे विक्रेता हैं और कोई जरूरी नहीं कि वे समय के साथ नरम पड़ें. उस दिन जब अखबार में खबर पढ़ी कि वे परचून की दूकान खोल बैठे हैं तो उनकी सेल्समैनशिप की मुद्राएं याद आयीं. सभी मित्रों के अपने अपने अनुमान थे. कुछ का खयाल था कि अश्क हिंदी में लेखक की स्थिति क्या है, इसे रेखांकित करना चाहते हैं. अपने मकान और जमीन पर कब्जा बनाए रखने की एक चाल है क्योंकि पिछले दिनों इसे लेकर वो मुसीबत में फंस गये हैं. वे परचून की दूकान खोल किसी भावी कृति के लिए सामग्री बटोर रहे हैं. अश्क अपने पर निर्भर परिवार के बढ़ते हुए खर्च के लिए एक साइड बिजनेस इस इरादे से खोल रहे हैं कि धीरे-धीरे इसे बढ़ाकर वे डिपार्टमेंट स्टोर बना लेंगे. वे अब लिख नहीं पा रहे हैं, उनका प्रकाशन ठप्प है अतः खाली न बैठ, वे कुछ कर रहे हैं. या कि महज स्टंट है, खबरों में आने का एक उपक्रम है. मुझे तो यह भी लगा कि इससे अश्कजी को जीवन की संपूर्णता का बोध रहा हो. प्रेम किये, शादियां कीं, शरणार्थी रहे, बीमार हुए, नौकरी की, फिल्में लिखीं, नाटक लिखे, कवि हुए, पढ़े, बोले, बहसों में फंसे, पुरस्कृत हुए, दुनिया घूमे प्रकाशक बने, कथाकार बने, उपन्यासकार बने, कुछ समकालीनों को पछाड़ा, सम्मानित हुए, ठहाके लगाये, रोये, बेटों की शादियां कीं, बहुएं लाये, अपने जन्मदिन मनाये, मतलब मानव शरीर से जो संभव था, बागवानी करने से प्रांतों में भटकने तक, सब किया. अब परचून की दूकान भी चला लें तो जनमपत्री में जो कुछ संभावित है, सब हो गया समझो. यह हो सकता है कि परचून की दूकान खोलने के मूल में न कोई परेशानी हो, न दर्शन—वे महज एक दूकान चलाने के मजे लेने के लिए ऐसा कर रहे हों.

जो भी हो, हिंदी तो वही करेगी जैसा उसका मिजाज है. कुछ गालियां देंगे अश्क को और कुछ का मन लेखक की दशा पर विचार कर करुणा से भर जायेगा. करुणा में गहराई न हो, गालियों में गहराई अवश्य होगी. सच मामला क्या है, पता ही नहीं चलेगा.

मुझे तो लगा अश्क का दूकान खोलना उचित है. सागर या विक्रम विश्वविद्यालय में मुक्तिबोध या प्रेमचंद के नाम पर बनी किसी पीठ पर बैठ फोकट के पैसे उठाने से तो यह अच्छा है कि आप कुछ ऐसा कर लें. भारत भवन को संस्कृति का मक्का-मदीना मान अशोक वाजपेयी को साहित्य का फरिश्ता संबोधित कर अपनी किताब का पूरा संस्करण सरकारी अलमारियों में रखा, पैसा मारने से बेहतर है, आप अपने मोहल्लेवालों पर भरोसा करो कि वे अपना आटा-दाल आपसे खरीद लेंगे. सरकारी कमेटियों में घुस लाभ कमाने या विश्वविद्यालयों में विजिटिंग प्रोफेसरी के नाम पर अपनी कौड़ी चित करने से यह बेहतर है जो अश्क ने किया. दूकान ही तो खोली. किसी फोकट की ह्विस्की पिलाने वाले की महफिल में चमचागिरी करने तो नहीं गये. आप अश्क को गाली दे दीजिए क्योंकि अश्क कोई नेता या अफसर तो नहीं, जिन्हें गाली देने में जोखम हो. पर आप यह नहीं कह सकते कि अश्क ने कुछ गलत किया. मेरी खुद की नजर पिछले दिनों एक दूकान पर थी. बंबई के पृथ्वी थिएटर पर एक किताबों की दूकान है. दूकान क्या, एक काउंटर-सा है. मैं सोचता हूं वहां रोज शाम खड़े हो किताबें बेची जायें. भले लोगों से मेल-मिलाप भी बना रहेगा और कुछ खर्च भी निकलेगा. 'उत्सव' का संवाद लेखक होने के नाते शशिकपूर से मेरे दुआसलाम के संबंध हैं. यदि मैं निवेदन करूंगा तो वे मान जायेंगे. सोचता हूं और फिर सोचकर रह जाता हूं. अभी कुछ दीगर करने को है, इसलिए दूकान चलाने की बात टल जाती है. पर अश्कजी की उम्र तक आते या उसके पहले ही, ताज्जुब नहीं मैं ऐसा कर बैठूं. आखिर मैं हिंदी का एक लेखक हूं. बुढ़ापा तो बेइज्जती और उपेक्षा से गुजरना ही है. तब हम क्यों लेखक रहें, या क्यों आत्म-हत्या करें. हम कोई भी ऐसा काम कर लेंगे जिससे जीविका चल जाये. किसी पाखंड का सहारा लेने या भ्रष्टाचार में हिस्सेदारी करने से तो वह बेहतर होगा. इसीलिए मुझे अश्कजी की बात ठीक लगती है. कितने लेखक हैं जो सीने पर हाथ रखकर कह सकते हैं कि उनके पास सुख से बुढ़ापा गुजारने का इंतजाम है. सबकी पत्नियों की पहचान इंदिरा परिवार से नहीं होती. सबके बेटे अमिताभ नहीं होते. कुछ के बेटे नीलाम भी होते हैं. वे लंबी यात्राएं कर सकते हैं, लंबी कविताएं भी लिख सकते हैं पर कोई जरूरी नहीं कि समझौतों भरे इस संसार में वे कवि लेखक के पुत्र न हों, प्रकाशक के पुत्र हों और पिता से बड़े प्रकाशक बनें. वे अपना जीवन अपने ढंग से बना सकते हैं. यह अधिकार अश्कजी को भी है. अश्क ने अपने सारे उपन्यास अपने जीवन से उठाये. अब अनुभव चुक गया, उपन्यास के कथ्य से भी चुक गये. एक लेखक क्यों नहीं नये सिरे से अनुभवों के दरिया में कूदे. अश्कजी ने परचून की दूकान खोली. उनके अगले उपन्यास का हीरो दूकानदार होगा. वही जो पार्टीशन के बाद इलाहाबाद आया. हमें तो उनकी लंबी उम्र की कामना करनी चाहिए. वे स्वस्थ रहें और नित नये स्टंट करें. जहां अधिकांश लेखक सरकारी संस्थाओं और दूतावासों के सामने दुम हिलाने में लगे हों, वहां एक लेखक है तो जो परचून की दूकान के सहारे जीकर इन सबको मुंह चिढ़ा सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामलीला चालू आहे

राकेश वत्स

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठों पर चल रहे साहित्यिक-शीतयुद्ध को देखकर अक्सर बचपन में स्कूल-मंच पर देखे रामलीला के वे अनोखे मनोरम दृश्य याद हो आते हैं, जिनमें न शस्त्र होते थे और न अस्त्र फिर भी राम-रावण युद्ध होता था और राक्षस मरते थे.

पिंडलियों तक सफेद जुराबें. पैरों में फ्लेक्स के बूट. महीन मलमल की धोती, जिसमें से कच्छा साफ नजर आये. बिना कालर का कुरता. नेहरू जाकेट और फौजियों जैसी अंग्रेजी हजामत. लगभग इसी पहरावे में होते थे बाल-पात्र. किसी-किसी के धोती की जगह छोटी मोहरी का पायजामा भी होता था. एक पात्र के कामरेडी किसम की दाढ़ी भी लगी होती थी और आंखों पर मोटे-मोटे शीशोंवाली ऐनक. सब के सब पात्र लगभग ऐसी ही घरेलू किसम की पोशाकों में होते थे. न किसी के पास तीर-कमान होता था और न तरकस, फिर भी सबके सब ठुमक-ठुमक कर धनुष तानते थे और चुटकी कानों तक लाकर तीर छोड़ते थे. मुट्ठियों की गदाएं घुमाकर पसीने के मारे बेहाल हो जाते थे.

मैं भी दर्शकों के साथ इस युद्ध को मुग्ध होकर देखता रहता, पर मेरी समझ में न आता कि रावण कौन है और राम कौन. जो थोड़ा ढीला या लुढ़कता हुआ नजर आता मेरे लिए वही रावण हो जाता और चुस्त-दुरुस्त तथा दम-खमवाला राम. बड़ा मनोरंजन करती थी वह रामलीला. बच्चों के पेट में हंसते-हंसते बल पड़ जाते थे. और आज भी यह साहित्यिक रामलीला पाठकों का खूब मनोरंजन कर रही है. सोचता हूं, महान साहित्यिक कृतियों का उद्देश्य क्या मात्र मनोरंजन करना भर है? आदमी के दुख-दर्द को हंसी की झाग के नीचे दाबा देना ही क्या साहित्य और उसकी समीक्षा की सार्थकता की अंतिम हद है? दुनियाभर की विधान सभाओं, लोक सभाओं और राज्य सभाओं में होती जूत-पतान की झलक इन युद्धों में साफ नजर आती है. सस्ते ढंग का नामचलाऊ प्रदर्शन भी. जो कुछ राजनीति में हो, उसका असर साहित्य पर न पड़े, यह कैसे संभव हो सकता है?

पति-पत्नी लेखक हों, तो पत्नी का जिक्र करते हुए पति को भी याद किया ही जायेगा . . . पर क्या यह भी संभव है कि पति-पत्नी अपने जाती रिश्ते के साथ-साथ लेखन में भी एक-दूसरे के पूरक हो जायें! मियां-बीवी के मामले में घुसने की सारी जिम्मेवारी स्तंभकार की है, संपादक को इससे बाहर ही मानें.

हाल ही में अपनी ताजा कहानी के साथ छपी खूबसूरत-सी फोटो के नीचे ममता कालिया ने घोषणा करवायी है कि वह एक नाटक और तीन वृहद उपन्यासों की रचना एक साथ कर रही हैं. कहानियों, समीक्षा-टिप्पणियों और साक्षात्कार-लेखों का जिक्र इस घोषणा में करना शायद इसलिए जरूरी नहीं समझा गया कि उनकी सही संख्या जानना ममताजी के लिए काफी टेढ़ी खीर है. छोटी रचनाएं अनुकूल मूड और एक बैठक की रचनाएं होती हैं. जब भी मूड बना बैठक लगा ली. और मूड का समय की मजबूरी के साथ क्या ताल्लुक! एक हफ्ते में एक बार भी बन सकता है और एक घंटे में चार बार भी. वैसे आजकल जिन छोटी रचनाओं की डिमांड है उनको गढ़ने के लिए तो मूड की भी जरूरत नहीं. पत्र-पत्रिकाएं भी घीया-तोरी की तरह बासी होने से पहले ही इन छोटी रचनाओं को मंडी भेजने की जरूरत समझती हैं. जब घोषणा पहुंचने से पहले रचना को ही बाजार में पहुंच जाना हो तो घोषणा लाभ की बजाय हानि पहुंचा सकती है. अलबत्ता नाटक और उपन्यास जैसी बड़ी विधाएं शराब और अचार जैसी लंबी अरसे में पकनेवाली चीजें हैं, जितनी पुरानी पड़ें उतना ही अच्छा. आज की घोषणा की ये रचनाएं अगर बीस वर्ष बाद भी प्रकाश में आयें तो लाभ ही लाभ है, नुकसान कुछ नहीं. वैसे भी घोषणा कर देने में क्या हर्ज है? लोग तो अपनी पुस्तक के फ्लैप पर 'प्रकाश्य' के अंतर्गत ऐसी रचनाओं की घो कर देते हैं जो वजूद में आती ही नहीं मुद्गल करते रहे हैं. लेकिन उनकी रचनाएं आज तक नजर नहीं आयीं!

इधर प्रतिभा संपन्न यारों ने इस घ में एक दूर की कौड़ी निकाली है. वह य पति-पत्नी दोनों सर्वतोमुखी प्रतिभा हों तो सबसे बडा लाभ यह होता है कि दो एक-दूसरे के रक हो सकते हैं. 'एक इं मुस्कान' की तरह.

'खुदा सहीसलामत है' के बृहद आकार से यार लोग उन अंशों को अलग करने के शोध-कार्य में जुटे हैं जिन पर पति और पत्नी के व्यक्तित्व की अलग-अलग छाप सादित की जा सके. चंद बरदाई के 'पृथ्वीराज र और बाणभट्ट की 'कादंबरी' की तरह एक मत होना संभव नहीं हो पा रहा जीजाबाई का भाषण ममता की प्रतिभ उपज है या रवींद्र की. फिर भी सोचना है, क्योंकि रवींद्र ने ही किसी समय अ 'इतिश्री' कालम में संपादक पति-प नी मुद्दा उठाकर साहित्य जगत में प वाद या गुगलीवाद के बारे में सोच प्रेरणा दी है. यह प्रेरणा लेखक और संपाद मित्रों के आपसी लेनदेन पर भी सोचने मजबूर करती है.

यह सब भी उसी रामलीला का एक मनोरंजक पहलू है जो मैंने बचपन में देखी थी. देखिये न! अब मैं भी इसे देखते-देखते इस का एक पात्र बन गया हूं. यह बहुत ही प्रभा शाली और अद्भुत रामलीला है. अस्थाना ने दूधनाथ सिंह को ललका पता नहीं किस पात्र का पार्ट अदा कि ए... वह लिखते हैं—" 'खुदा सही सलामत फ्लैट उपन्यासों में से नहीं हैं जिन्हें एक पढ़कर आप अपनी राय कायम कर तुलसीकृत रामायण का पूरा फल भी बार के पाठ और वह भी श्रद्धापूर्व से मिलता है. लगता है धीरेंद्र अस्थाना का एक बृहद उपन्यास के अच्छेपन और उस गुणवत्ता पर कम, उसके अखंड पाठ पर अधिक है . . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

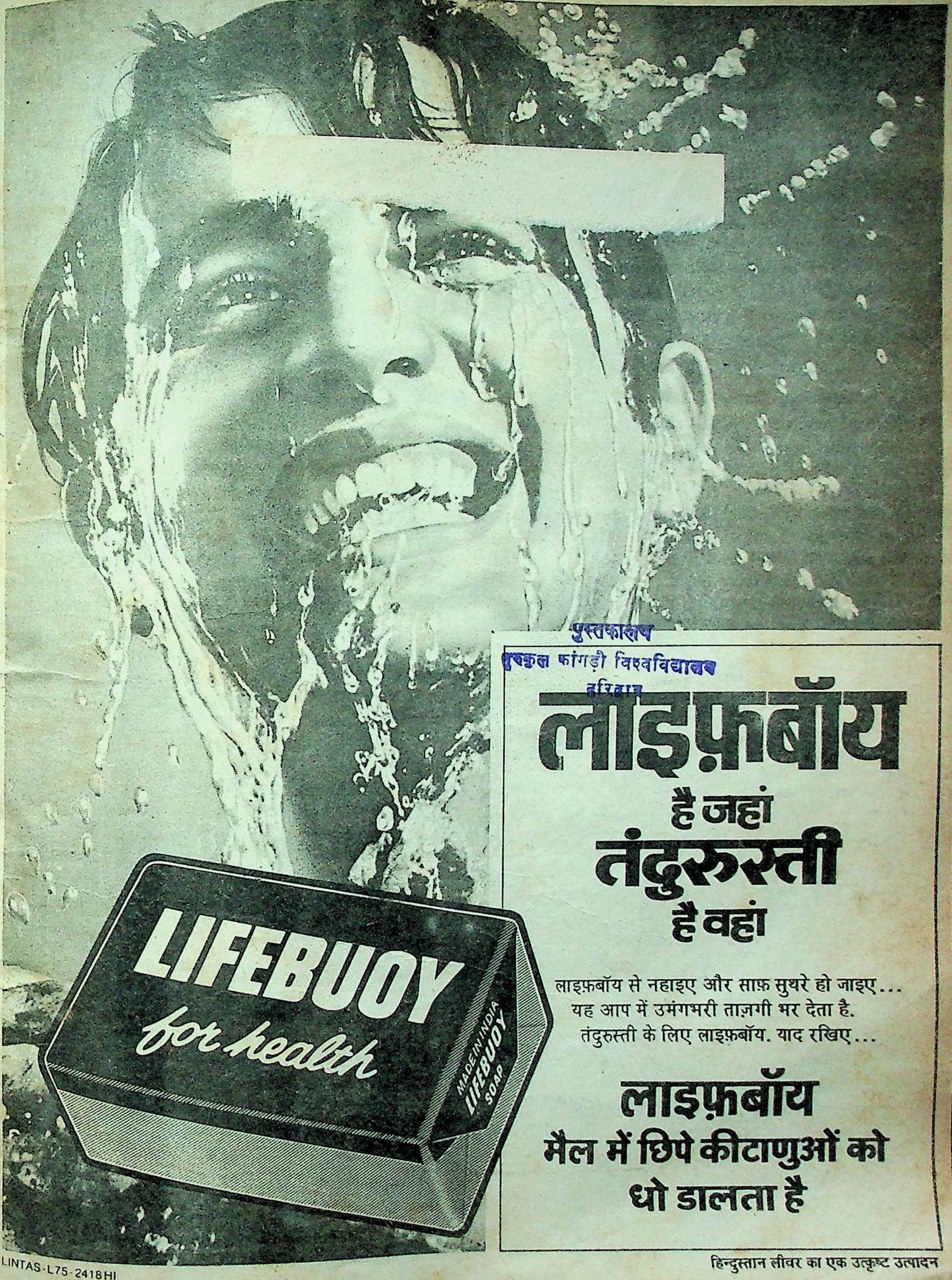

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की सुविधा एवं बचत के लिए

नये रूपाकार में सारिका का यह अंक आपके हाथों में है. इस रूपाकार में हम आपको 100 पृष्ठों से अधिक की सामग्री 76 पृष्ठों में ही दे रहे हैं जबकि मूल्य में वृद्धि केवल 50 पैसे की ही हुई है. यदि आप वार्षिक चंदा हमें सीधे भेजें तो वर्ष में आपको 6 रुपये की और भी बचत हो सकती है. आपको करना केवल इतना है कि अपने शुल्क का राशि हमें बैंक ड्राफ़्ट/मनी आर्डर/पोस्टल आर्डर सहित नीचे दिये गये कूपन के साथ तत्काल भेज दें.

शुल्क की रियायती दरें इस प्रकार हैं :

देश में (बंगलादेश, नेपाल सहित)

वार्षिक : 90 रुपये

छमाही : 47 रुपये

विदेश में सिर्फ समुद्री डाक से :

144 रुपये वार्षिक

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह मास के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता ....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें.

मुख्य प्रसार प्रबंधक
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

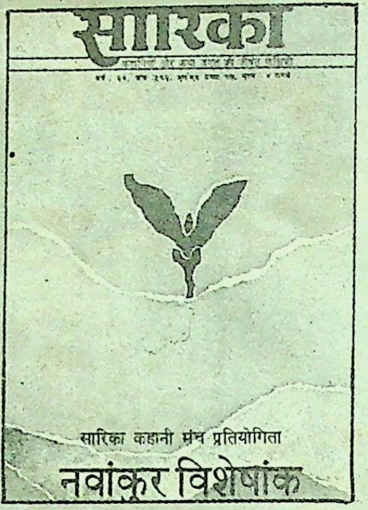

लोग हैरान हैं कि आखिर इन जवान आंखों में कौन से सपने बसे हैं. . . !

दस साल बाद कथा-जगत में चर्चित होनेवाले लोगों की एक पूरी जमात. . . यानी भविष्य की एक कथाकार-पीढ़ी से पहली बार 'सारिका' के माध्यम से सीधी मुलाकात यानी तेरह नये कथाकार.

'सारिका कहानी मंच प्रतियोगिता' के तहत

नवांकुर विशेषांक

और साथ में

- सन् 1968 में नये कथाकार के रूप में पहली बार प्रकाशित जितेंद्र भाटिया की
- पहली कहानी. . . . यानी 'आत्मावलोकन'.
- शरद जोशी का स्तंभ 'बतंगड़'
- राकेश वत्स की 'तीसरी नजर'
- पखवारे की पुस्तकें
- आपकी बात

अपनी बात और रोचक प्रसंगों का अनूठा उपहार

इस वर्ष 'सारिका' की ओर से हर बार एक नयी सौगात

सारिका

हर पखवारे जिंदगी से एक जरूरी मुलाकात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar